हिन्दी-भक्ति-काव्य
और
हरिहर



डॉ० क्षेत्रपाल गंगवार
एम० ए०, डी० फिल्०
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
कर्मक्षेत्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा

अक्षरपीठ प्रकाशन

प्रथम संस्करण : १९७८ ई०
मूल्य : पचास रुपए

वितरक

साहित्य निकेतन
श्रद्धानन्द पार्क, शिवाला रोड
कानपुर-२०८००१

—०

अभिनवभारती
४२, सम्मेलन मार्ग
इलाहाबाद-२११००३

—०

अक्षरपीठ प्रकाशन
सुन्दरी
बरेली-२६२४०६

स्वर्गीया माँ की स्मृति में

आमुख



मध्यकालीन धार्मिक चेतना तथा विविध साम्प्रदायिक साधना पद्धतियों के वास्तविक स्वरूप का बोध पूर्वापर सम्बन्धो की यथोचित सगति लगाते हुए एक व्यापक सन्दर्भ मे देखने से ही सम्भव होता है। समाज में रहते हुए कवि का सामाजिक परिवेश तथा परम्परा से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इसीलिए उसकी अन्तश्चेतना को जानने के लिए सामाजिक अध्ययन आवश्यक है। इसके अभाव में साहित्यिक अनुशीलन भी अधूरा तथा एकांगी रहेगा। यही कारण है कि तुलसी के हरिहर को समझने में कठिनाई होती रही है और ऐसे सन्दर्भों की व्याख्या में अनर्थ हुआ है।

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन होने पर भी उसमें धार्मिक समन्वय होने का तथ्य विस्मृत कर दिया गया है। शिल्प में अर्धनारीश्वर, हरिहरहिरण्यगर्भ, हरिहरपितामह, चद्रार्कपितामह, सूर्यनारायण, मार्तण्ड-भैरव, हरिहर-पितामहार्क, शिवलोकेश्वर, सूर्यलोकेश्वर आदि का शास्त्रीय विश्लेषण तथा मूर्ति-विधान मिलता है। परन्तु शिल्पशास्त्रीय तथा पुरातात्विक क्षेत्रों को मिलाकर साहित्यिक अध्ययन का हिन्दी में प्राय: अभाव ही है।

हरिहर की सयुक्त मूर्ति में शिव और विष्णु का समन्वय रहता है तथा तुलसी-साहित्य में हरिहर शब्द का व्यापक प्रयोग मिलता है। परन्तु हरिहर-उपासना की परम्परा से अनभिज्ञ होने के कारण अभी तक इसका अर्थ शिव और विष्णु होता रहा है। वस्तुत: कुषाणकाल से हरिहर के इस समन्वित स्वरूप के लक्षण मिलने लगते है और गुप्तकाल से तो उसकी परम्परा नितान्त व्यापक हो जाती है—शिल्पशास्त्र में मूर्ति-विधान है, तो लोक में हरिहर की मूर्तियाँ, मन्दिर तथा स्तुतियाँ। हरिहर की यह परम्परा सम्पूर्ण भारत ही नही पूर्वी द्वीप समूह तथा नेपाल तक व्याप्त मिलती है। अभी तक एतद्विषयक कुछ लेखों के अतिरिक्त किसी व्यवस्थित अध्ययन का पूर्ण अभाव था, फिर हिन्दी-काव्य में शैव-वैष्णव मतो के सघर्ष एव समन्वय की अन्तश्चेतना तथा छायाएँ-

प्रतिच्छाएँ किस रूप मे समाविष्ट है, इसके विश्लेषण का तो प्रश्न ही नहीं। 'हरिहर उपासना : उद्भव तथा विकास' में मैने हरिहर की परम्परा का उद्घाटन किया है और प्रस्तुत ग्रन्थ उसकी हिन्दी-साहित्य में परिणति का परिचायक है।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि हरिहर की जो परम्परा कुषाण-गुप्तकाल से प्रारम्भ हुई, वह आज तक अक्षुण्ण है। मध्यकाल मे चित्तौड के कुम्भस्वामी मन्दिर तथा कीर्तिस्तम्भ, एकलिंगजी के कुम्भश्याम मन्दिर, मदुराई के मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर और तंजौर के नागराजस्वामी शिव मन्दिरों, कुरनूल के गोल्लवारियम्मगुदि भग्नावशेष, चिंगलपुट के सुब्रह्मण्यम् मन्दिर की पाषाण मूर्तियाँ, तिरुणलवेलि की कांस्य मूर्ति, त्रिचनापल्ली की काष्ठ मूर्ति, पद्मनाभपुरम् और डोंगरा आर्ट गैलरी के भित्ति चित्र तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, पटना संग्रहालय, श्रीनगर संग्रहालय, भारतीय संग्रहालय, भारत कला भवन में संग्रहीत और 'कल्याण' मे प्रकाशित हरिहर के लघु चित्र इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आज भी बगाल में हरिहर अभिप्राय पटचित्र के रूप मे प्रयुक्त होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेकता में एकता स्थापित करने का दुराग्रह न होकर हरि-हर ऐक्य की प्रवृत्ति को उद्घाटित कर देना ही उद्दिष्ट रहा है। इस दृष्टि से उसके प्रथम अध्याय में कृष्ण-काव्य का विश्लेषण है। विद्यापति का सम्प्रदाय विवाद का प्रश्न रहा है, परन्तु उनके समय मिथिला में शिव, विष्णु तथा शक्ति—इन तीनों की पूजा प्रचलित थी। शिव और शक्ति के समन्वय से अर्धनारीश्वर विग्रह बनता है और शिव तथा विष्णु के सयोग से हरिहर का स्वरूप बनने के कारण उन्होंने इनका अलग-अलग ही नहीं समन्वित स्तवन भी किया है। उनकी गंगावाक्यावली के मगला-चरण में हरिहर की ही स्तुति है। इसी प्रकार हिन्दी के प्रमुख कृष्ण-भक्त कवि सूरदास प्रारम्भ मे शैव थे और उन्होने शिव अथवा शैव धर्म के प्रति प्रच्छन्न आस्था भी प्रकट की है। इसीलिए उनके काव्य में शैव-वैष्णव समन्वय की भी विविध स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। हलधरदास तथा मीराबाई के काव्य में भी इस समन्वय की ही प्रतिध्वनि है और रसखानि ने तो हरिहर के एकात्म स्वरूप का वर्णन ही किया है।

राम-भक्ति शाखा मे सेनापति ने एक ही छन्द में शिव और विष्णु के समन्वय की बात कही है। परन्तु शिव और विष्णु को लेकर जितनी स्थितियाँ तुलसी-काव्य मे उपलब्ध होती हैं, उतनी अन्य कही नही। इन सब की परिणति उनकी एकात्म सत्ता के अस्तित्व सम्बन्धी धारणा में होती है, जिसमें उन्होंने हरिहर का स्तवन तक किया है।

उपसंहार में हरिहर-परम्परा का सिंहावलोकन करते हुए उसकी अद्यावधि स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। परिशिष्टों मे निर्गुण काव्य-धारा में व्याप्त शैव-वैष्णव समन्वय की अन्तश्चेतना दिखाकर सन्दर्भ एव आकर ग्रन्थों की सूची दे दी गयी है।

ग्रन्थ मूलतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध के उत्तरार्ध का सशोधित रूप है। इसके प्रकाशन हेतु प्राप्त आर्थिक सहायता के लिए मैं उत्तरप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग तथा माननीय शिक्षा मन्त्री श्री कालीचरण जी का हार्दिक आभारी हूँ। आशा है ग्रन्थ से मध्यकालीन हिन्दी भक्ति-काव्य पर एक नया प्रकाश पड़ेगा और इस काल के कवियों को सही रूप में समझ पाने को ही मैं अपने श्रम का यथार्थ प्रतिफलन मानूँगा।

—लेखक

विषयानुक्रम

परिशिष्ट

सांकेतिक शब्द

अ० = अध्याय
ई० = ईसवी सन्
क० = कवितावली
क० ग्र० = कबीर ग्रन्थावली
कविता० = कवितावली
गी०, गीता० = गीतावली
जा० = जानकीमंगल
डॉ० = डॉक्टर
दो० = दोहावली
पा० = पार्वतीमंगल
पृ० = पृष्ठ
प्रो० = प्रोफेसर
ब०, ब० रा० = बरवैरामायण
म० = मंगल
मानस = रामचरितमानस
रा० = रामचरितमानस
रा० प्र० = रामाज्ञाप्रश्न
वि० = विक्रम संवत्, विनयपत्रिका
वै० = वैराग्यसंदीपनी
स० = संख्या
सो० = सोरठा
ह० = हरिगीतिका, हनुमानबाहुक
हनु० = हनुमानबाहुक

श्यामिम्ना धवलिम्ना च यमुनाजाह्नवीप्रभाम् ।
तीर्थराजवदव्यग्रां दधती कापि देवता ।।

हरिहर पय पकज सेविह तेन रह अवसाद ।।

हरिहरा भेद नाही । नका करूं वाद ।।
धरितां रे भेद । अधम तो जाणिजे ।।

१

कृष्ण-काव्य और हरिहर

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में कृष्ण-काव्य का अक्षुण्ण स्थान है। हिन्दू परम्परा में मान्य दशावतारों में राम के बाद कृष्ण ही आते है। यद्यपि कृष्ण का उल्लेख वैदिक साहित्य से मिलता है, तथापि उनमें देवत्व का आरोपण महाभारत से ही उपलब्ध होता है। गीता के कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार परब्रह्म है परन्तु कृष्ण के व्यक्तित्व का विकास हरिवशपुराण में हुआ है, जहाँ से उनके साथ गोवर्धन-पूजा, गोपालन आदि की विविध लीलाएँ सलग्न हो जाती है। वायु, विष्णु, अग्नि, पद्म आदि पुराणों में कृष्ण-चरित का वर्णन है, परन्तु हिन्दी के कवियो को आकर्षित करने वाला कृष्ण का स्वरूप भागवतपुराण में पाया जाता है। यह मध्यकाल का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें भगवान् कृष्ण के अन्य अवतारो के अतिरिक्त उनकी लौकिक-अलौकिक लीलाओ का वर्णन है। परन्तु यह स्मरणीय है कि भागवतकार की रुचि कृष्ण के बाल-जीवन मे ही अधिक है और उत्तर-जीवन का उसने संकेत जैसा कर दिया है। इसमें गोपियो का वर्णन तो है, परन्तु राधा का नहीं। कृष्ण के साथ एकान्त मे विचरण करने वाली किसी गोपी के विषय मे जानकर अन्य गोपियाँ कहती हैं कि उसने अदृश्य कृष्ण की आराधना की होगी तभी तो वह उनके साथ है। ऐसा समझा जाता है कि इस आराधना शब्द से ही राधा की व्युत्पत्ति हुई। राधा का उल्लेख सर्वप्रथम गोपालतापनी उपनिषद् में हुआ है। हरिवश तथा भागवतपुराण की विविध कृष्ण-लीलाएं तथा कृष्ण-चरित और 'राधा' ही आगे के कृष्ण-काव्य को प्रमुख आधारभूमि प्रदान करते हैं। अन्य पुराणो के समान इन दोनों पुराणों में भी शिव और विष्णु के पारस्परिक सम्बन्ध के विविध स्तर मिलते है। कृष्ण द्वारा शिव-पूजन अथवा शिव द्वारा विष्णु-भक्ति, रुद्र-गीत से विष्णु की प्राप्ति, शिव या विष्णु में किसी के भी पूजन से ससार की समस्त वस्तुओ की सुलभता, शिव तथा विष्णु मे एकात्म-स्थापन, हरिहर-स्तवन आदि कुछ ऐसी ही विशिष्ट स्थितियाँ हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टि से अष्टछापी कवियो और रसखानि का वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बन्ध था। सिद्धान्ततः वल्लभ सम्प्रदाय की भाँति विष्णुस्वामी सम्प्रदाय पर आधारित है, जिसे रुद्र सम्प्रदाय भी कहा जाता है। शैव-वैष्णव समन्वय की दृष्टि से इस वैष्णव सम्प्रदाय के आद्याचार्य रुद्र माने गये हैं, जिन्होंने इसका उपदेश सर्वप्रथम बालखिल्य ऋषियो को दिया था, जो कालान्तर मे विष्णुस्वामी को प्राप्त हुआ वल्लभ के अनुसार समस्त जगत् का उपादान कारण एकमात्र ब्रह्म है, जो सच्चिदानन्द-मय है। एकाकी अच्छा न लगने पर[1] वह अनेक होने की कामना करते हुये जीव, जड, जगत् तथा अन्तर्यामी आत्मा बन गया। तैत्तिरीयोपनिषद् की 'एकोऽहं बहु स्याम्' मान्यता के आधार पर वल्लभाचार्य ने त्रिदेव समन्वय को स्वीकार करते हुये कहा है कि वह शुद्ध रजोगुण युक्त ब्रह्मा रूप से सृष्टि का निर्माण, शुद्ध सत्व गुणयुक्त विष्णु रूप से पालन और शुद्ध तमोमय शिव रूप से उसका सहार करता है।[2] उन्होंने अपने बालबोध मे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को फलदायक देवता मानकर अन्त मे परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही सेव्य और आश्रय मानने का उपदेश दिया है।[3]

काव्य-भूमि की दृष्टि से विद्यापति मिथिला के है और अन्य अधिकाश कवियो का सम्बन्ध कृष्ण की क्रीडा-स्थली ब्रज से रहा है। सुदामाचरित्र के प्रणेता हलधर-दास का जन्म मुजफ्फरपुर (बिहार) मे हुआ था और मीरां राजस्थान की थीं। मथुरा मे समन्वय स्रोतस्विनी का प्रवाह कुषाणकाल से मिलता है। कनिष्क के तद्विषयक सिक्के पर शिव की देवाकृति को दक्षिण कर मे शक्ति या दण्ड धारण किए और वाम कर गदा पर रखे प्रदर्शित किया है।[4] वहीं के गिरधरपुल टीला तथा अर्जुनपुर मुहल्ले से प्राप्त हरिहर की कई गुप्तकालीन मूर्तियाँ सम्प्रति स्थानीय पुरातत्व सग्रहालय की निधि हैं।[5] राजस्थान जहाँ एक ओर घोसुण्डी अभिलेख (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी) के रूप में वैष्णव धर्म की प्राचीनता का प्रमाण प्रदान करता है, मध्यकाल में वहाँ वैष्णव के अतिरिक्त शैवों का नाथ सम्प्रदाय भी प्रबल था। इस समय यहाँ शैव और वैष्णव मन्दिर तथा उनमें हरिहर मूर्तियाँ प्रदर्शित करने के अतिरिक्त हरिहर के मन्दिरो का

१. स एकाकी न रमते।—बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।३
२. अनन्तमूर्ति ब्रह्म ह्यविक्ति विभक्तिवत्।
बहु स्याम् प्रजायेयेति लीला तस्य ह्यभूत् सती।—तत्वदीपनिर्णय, पृ० ८७
३. सूर और उनका साहित्य, पृ० २५६
४. जितेन्द्रनाथ बनर्जी, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रैफी, पृ० १२२
५ देखिए प्रदर्शन सख्या १३३१ १३३६ ४०१७ तथा २५१०

भी निर्माण हुआ । बिहार (सोनपुर) में हरिहरनाथ मन्दिर का अस्तित्व शैव-वैष्णव समन्वय का ज्वलन्त प्रमाण है ।

विद्यापति

विद्यापति किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे यह विषय विवादास्पद रहा है । जहाँ पदावली में राधा-कृष्ण का वर्णन होने के कारण उन्हें वैष्णव सिद्ध करने का प्रयास किया गया है वहीं उनके पिता तथा आश्रयदाताओं के आधार पर उन्हें शैव माना गया है । इनके अतिरिक्त उन्हे पचदेवोपासक (महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री), एकेश्वरवादी (प्रो० जनार्दन) अथवा शाक्त सिद्ध करने का भी प्रयास हुआ है । इन सभी मे उन्हे वैष्णव तथा शैव प्रमाणित करने के तर्क सर्वाधिक प्रबल होने के कारण उनका सिंहावलोकन आवश्यक है ।

विद्यापति की वैष्णवता का परिचय उनकी पदावली से मिलता है, जिसमे उन्होने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीलाओ को आधार बनाया है । चैतन्य महाप्रभु उनके पदो को गाते-गाते इतने भावविभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी"। महाप्रभु की शिष्य-परम्परा में विद्यापति के पद आज भी गाये जाते है । सहजिया सम्प्रदाय मे तो विद्यापति की गणना सात रसिक भक्तों में होती है । इसी कारण ग्रियर्सन ने उनके पदो को वैष्णव गीत या भजन कहा है तथा ब्रजनन्दनसहाय, प्रो० विमनबिहारी मजूमदार आदि ने विद्यापति को वैष्णव माना है । माधव को सम्बोधित करते हुये विद्यापति के कुछ पद तो नितान्त भक्तिपरक है, जो उनके हृदय के वास्तविक उद्गार लगते हैं ।[१] ऐसे पदों का कवि शृंगारी नही भक्त-हृदय है । इसके अतिरिक्त विद्यापति

---

१. तातल सैकत वारि-बिन्दु सम सुत-मित-रमनि समाजे ।
तोहे बिसरि मन ताहे समरपिनु अब मझु हव कौन काजे ।।
माधव हम परिनाम निरासा ।
भनइ विद्यापति सेष समन भय तुअ बिनु गति नहि आरा ।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब तारन भार तोहारा ।।
—मित्र तथा मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद ७६८

तथा—माधव बहुत मिनति कर तोय ।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु दया जनि छाडबि मोय ।।
भनइ विद्यापति अतिसय कातर तरइत इह भवसिंधु ।
तुअ पद-पल्लव करि अवलबन तिल एक देह दिन बधु ।।—वही, पद ७७१

ने श्रीमद्भागवतपुराण को भी मैथिली में लिपिबद्ध कर विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा तथा भक्ति का परिचय दिया है।

विद्यापति की शिव-भक्ति के परिचायक है उनके शैव पद, जिनमें उन्होंने उतनी ही निष्ठा से शिव का स्मरण किया है,[१] जितनी हृदयता से वैष्णव पदों में विष्णु का। यदि श्रृंगारपरक वैष्णव पदों को छोड दें तो शेष की अपेक्षा शैव पदों की संख्या अधिक ही सिद्ध होगी। एक पद में तो विद्यापति ने शिव-भक्ति का उद्‌घोष करते हुये अन्य देवों की उपासना को त्याग देने का विचार भी व्यक्त किया है।[२] सम्भवतः इसी कारण कहा गया है कि शिव उगना के रूप में विद्यापति के पास रहते थे और उस सान्निध्य के सम्मुख विद्यापति को त्रिलोक का राज्य तक तुच्छ था।[३] विद्यापति द्वारा रचित नचारी तथा महेशवाणी आज भी शिवरात्रि आदि शैव पर्वों पर मिथिला के मन्दिरों में गाई जाती हैं। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर तथा आश्रयदाताओं का शैव होना, विद्यापति की चिता के स्थान पर 'विद्यापतिनाथ' नामक शिवलिंग की स्थिति तथा आज भी उसका पूजन—यह सब तथ्य विद्यापति के शैव होने की पुष्टि करते हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी[४] का स्पष्ट कथन है कि ये शिव-भक्त थे। शिव की पूजा करते समय भावावेश में निज प्रणीत नचारी गाते-गाते ये नाचने तक लगते थे।[४]

विद्यापति की समकालीन धार्मिक स्थिति देखने से ज्ञात होता है कि उस समय समाज में विष्णु, शिव तथा शक्ति इन तीनों की पूजा प्रचलित थी।[५] डॉ० उमेश मिश्र ने इस विषय पर विस्तृत विवेचन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुतः विद्यापति इन तीनों देवों के उपासक थे।[६] उनका कहना है कि मैथिल लोग अनादि काल से शाक्त, वैष्णव और शैव तीनों होते आये हैं। यह लोग दशमहाविद्या-मन्त्र की दीक्षा लेते हैं और कुलदेवता के रूप में शक्ति को स्थापित करते हैं। इनकी

१. विद्यापति पदावली, भाग १, पद १२५ आदि,

२. इंद चाँद गन हरि कमलासन सबै परिहरि हमे देवा।
भगत बछल प्रभु बान महेसर इ जानि कइलि तुअ सेवा ॥
—मित्र-मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद ७७६

३ विद्यापति भन उगना सों काज, नहि हितकर मोर त्रिभुवन राज ॥
—वही, पद ७९२

४. विद्यापति की पदावली, पृ० ३२

५. प्रो० आनन्द मिश्र, विद्यापति, पृ० २-३

६ विद्यापति ठाकुर पृ० १७९ १८०

पूजा का एक अंग दुर्गासप्तशती तथा देवीभागवतपुराण का पाठ करना भी है। ललाट पर लाल वर्ण का तिलक तथा लाल ही वस्त्र धारण करना इनकी दृष्टि में शुभ है। इसी प्रकार सभी उपनीत ब्राह्मण शालग्राम की पूजा करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व विष्णु-पूजन आवश्यक होता है। यहाँ तक कि श्राद्धादि पितृकर्मों तक में शालग्राम शिला को साक्षी रूप मे अपने सम्मुख रखते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ तुलसी का पौधा लगाया तथा पूजा जाता है और सभी ब्राह्मण श्रीखण्ड से ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र बनाते तथा उसे हृदय एवं बाँहो पर लगाते है। दूसरी ओर परम ध्येय मोक्ष के प्रदायक शिव को मानते हुए प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ नित्य पार्थिव लिंग का पूजन होता है। शास्त्रज्ञ लोग प्रदोषकाल में प्रात: और सायं शिवलिंग का पूजन करते समय ललाट, बाहु आदि विभिन्न अंगों पर भस्म लगाते है। लोगो का विश्वास है कि किसी भी प्रकार की विपत्ति आने पर बहुत-से पार्थिव लिंगो का पूजन करने से कल्याण हो जायेगा।

अन्त में डॉ० मिश्र ने कहा है कि इस प्रकार शक्ति, विष्णु और शिव तीनो को एक ही अनादि परब्रह्म के भिन्न-भिन्न स्वरूप जानते हुए मिथिलावासियो ने इनमे अभेद बुद्धि प्राप्त कर ली है। एक प्रकार से इसमें परस्पर विरोध देख पड़ता है, किन्तु तत्वेक दृष्टि वालो के लिए इसमे कोई भी विरोध नहीं है। इसलिए मैथिल लोग इनका पूजन एक साथ करते आये हैं, उन्हे इसमें कोई विरोध नही मालूम पड़ता और उनके यहाँ संकुचित साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं है।

शिव और शक्ति के समन्वय का उद्घोष कालिदास बहुत पहले कर चुके है। यूनानी लेखक स्टोबास (५०० ई०) ने बर्डसेन्स लिखित एक अंश उद्धृत किया है, जिसमें ईसा पूर्व दूसरी शती में सीरिया गए एक भारतीय द्वारा अर्धनारीश्वर की मूर्ति का उल्लेख है।[1] भीटा की गुप्तकालीन मुहरो पर निरूपित अर्धनारीश्वर के पूर्व मथुरा से अर्धनारीश्वर की कुषाणकालीन मूर्तियाँ मिली हैं।[2]

शक्ति का सम्बन्ध विष्णु से न होकर शिव से ही माना गया है। अतएव मैथिलो की उपास्य त्रयी मे दो भाग शैव पक्षीय और एक भाग वैष्णव पक्षीय सिद्ध होता है। इससे स्पष्टत: यहाँ शैवोपासना की प्रधानता दिखाई देती है।

अर्धनारीश्वर मूर्ति में शिव और शक्ति का समन्वय होने के कारण उसे शैव और शाक्त समान रूप से पूजते हैं। परन्तु लक्षण ग्रन्थों में अर्धनारीश्वर को शैव स्वरूपो

---

१. जितेन्द्रनाथ बनर्जी, कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ३३५

२. राजकीय पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में संग्रहीत मूर्ति सं० १५ ८००.४

में सम्मिलित किया गया है तथा उसे शिव का ही एक रूप माना जाता है। पौराणिक आख्यानो मे भी शिव द्वारा शक्ति के ग्रहण की बात कही गई है। जब शिव-भक्त भृङ्गी ने परिक्रमा करते समय शिव और पार्वती मे से पार्वती को छोड दिया तो अपनी अभिन्नता दिखाने के लिए शिव ने पार्वती को अपने ही शरीर में स्थान दे दिया। इसी प्रकार हरिहर विष्णु और शिव का समन्वय होते हुए भी शैव परम्परा के अन्तर्गत शिव का एक स्वरूप समझा जाता है, जबकि हरिहर-उपासना को शैव-वैष्णव दोनों समान मान्यता देते हैं।

जहाँ तक विद्यापति का सम्बन्ध है, दुर्गाभक्तितरंगिणी तथा तन्त्रार्णव की रचना उनके शाक्त होने की परिचायक है। मिथिला के वैष्णवोचित सभी कार्यों के साथ पदावली में कृष्ण को आधार बनाना और श्रीमद्‌भागवतपुराण को मैथिली मे लिपिबद्ध करना उनकी वैष्णव भक्ति का द्योतक है। पदावली के कृष्ण सामान्य व्यक्ति न होकर चतुर्भुजी हैं, राधा और कृष्ण की केलि-क्रीडा के समय भी विद्यापति इसका ध्यान रखते हैं।[1] विद्यापति की शैव भक्ति के प्रमाण ऊपर दिए ही जा चुके है। शैव पदों में शिव एकाकी कम ही मिलते है, या तो शिव-पार्वती के विवाह का सन्दर्भ होगा जिसमें मैना 'जोगिया' को पार्वती देने से मना कर रही होगी या शिव और पार्वती के हास-विलास, मनोविनोद का चित्रण होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति के काव्य मे प्राथमिक महत्ता शक्ति को प्राप्त है क्योकि उन्होने एक स्थान पर शक्ति को शिव और विष्णु से अधिक महान् निरूपित किया है। शक्ति के अनन्तर शिव की विशेष महत्ता प्रदर्शित है, किन्तु वैष्णव धर्म का प्रभाव सद्य तथा विकासोन्मुख होने के कारण वैष्णव भक्ति का उन्मेष शैव और शाक्त भक्ति से अधिक प्रतीत होता है। परन्तु ऐसे पदो की संख्या भी कम नही है जिनमे शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप का वर्णन है। इसी प्रकार उन्होंने कई स्थानों पर शिव तथा विष्णु के सयुक्त स्वरूप हरिहर को मान्यता दी है। हरिहर के स्वरूप-वर्णन के अतिरिक्त उन्होने हरिहर की भक्ति का भी उद्‌बोधन किया है। जिस तन्मयता से उन्होने राधा-कृष्ण की शृङ्गार लीलाओ का वर्णन किया है, उसी भावविभोरता से उनके काव्य मे शिव-पार्वती के हास-विलास एव मनोविनोद का भी चित्रण हुआ है। राधा अथवा गोपी जैसे वैष्णव पात्र का वर्णन करते-करते उन्हें शिव का स्मरण हो आता है और उनके कुचो की उपमा 'कनक शभु' से देने लगते हैं। यह सब इस बात के प्रमाण है कि विद्यापति शिव और विष्णु को समान मानते हुए उन्हें एक ही सत्ता के दो भिन्न रूप मानते हैं। विद्यापति-काव्य मे शिव और विष्णु के इस समन्वय की निम्न स्थितियाँ मिलती है—

१ विद्यापति पदावली, भाग २, पृ० २६३ पद ४१

१ **विद्यापति द्वारा शैव तथा वैष्णव दोनो प्रकार के ग्रन्थों की रचना :** कवि ने पदावली मे राधा-कृष्ण की शृगार लीलाओ का वर्णन किया है तथा श्रीमद्भागवत-पुराण को मैथिली में लिपिबद्ध किया है। इसके सन्तुलन मे दूसरी ओर उन्होने 'शैवसर्वस्वसार' में शिव-पूजा सम्बन्धी विधि-विधान सन्निविष्ट किए है तथा 'शैव-सर्वस्वसार' के प्रमाणभूत पौराणिक वचनो का सग्रह 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत-पुराण-सग्रह' के नाम से किया है। यह भी सम्भावना की जाती है कि विद्यापति ने 'शैव-सर्वस्वसार' की रचना के पूर्व पुराणो में यत्र-तत्र बिखरे हुए शिवार्चनात्मक प्रमाणो का सग्रह किया हो।[1]

२. **वैष्णव कूट पद में शैव तत्व :** दूती कृष्ण को सकेतस्थल भेजना चाहती है, क्योंकि नायिका वहाँ जा चुकी है। दूती का कृष्ण को नायिका का परिचय देना आवश्यक है। परन्तु वह स्पष्ट न बताकर कहती है कि युवती के नाम में महादेव का वाहन वृषभ है, अर्थात् नायिका वृषभानुजा है।[2]

३. **वैष्णव पदावली में शैव उपमान :** विद्यापति हरि-हर में किसी को भी विस्मृत नहीं कर पाते। राधा अथवा कृष्ण की प्रेमिका के वर्णन मे भी वह शिव को ले ही आते है। जहाँ उन्होने नायिका के कुचों को मेरु, सुमेरु, प्रस्फुटित पद्म, चकवा, स्वर्ण, बिल्व आदि की उपमा दी है, वही वह उन्हे 'कनक सम्भु' भी कहते हैं। यदि नखक्षतमय पीन पयोधर चन्द्रमौलि[3] या भग्न शिव का आभास देते है,[4] तो कामपीडिता के (रोने के कारण) काजल से भीगे स्तन कस्तूरी से पूजित कनक महेश लगते हैं।[5] एक स्थान पर स्तनों को महादेव की अधोमुखी होकर समाधि से उपमा दी गई है,[6]

---

१. विद्यापति पदावली, भाग १, पृ० ८६-८७

२ हरि हरि अरि अरि पति तातक वाहन
 जुवति नामे से होइ।—वही, भाग १, पृ० २०५, पद १५४
 हरि = मेढक, हरि अरि = सर्प, हरि अरि अरि = गरुड, हरि "पति = विष्णु, तात = सखा, हरि "तात = विष्णु के सखा महादेव। विद्यापति का शिव को विष्णु का सखा बताना भी उनकी सहिष्णुता एव समन्वय बुद्धि का ही प्रमाण है।

३. वही, भाग १, पृ० १, पद १

४ वही, भाग १, पृ० २६७, पद १६७

५. वही, भाग १, पृ० २२३, पद १६६

६ वही, भाग १, पृ० १८३, पद १४०

तो दो स्थलों पर उन्हें मुक्तामाल रूपी गंगा से भूषित शिव माना गया है।[1] यदि नायक (कृष्ण) कामदेव से रक्षा के लिए नायिका के कुच युगल रूपी शिव की शरण चाहता है,[2] तो नायिका कामदेव को भस्म करने के लिए अपने स्तनों की शिव के समान पूजा करती है।[3]

४. वैष्णव पात्र की उपमा शिव से : कवि ने काम-विदग्ध राधा को शिव माना है। ऐसा होने पर हार रूपी सर्प मलयानिल को पी लेता है (अतः मलयानिल उसे विरहावस्था में कष्ट नहीं दे पाता) और भयभीत होकर कामदेव भी दूर रहता है।[4] दूसरी ओर कामदेव नायिका को शिव समझकर उस पर क्रुद्ध हो रहा है, क्योंकि उसके शरीर का चन्दन लेप भस्म, रेशमी वस्त्र व्याघ्र चर्म, वेणी जटाजूट, फूल-माल गंगा, ललाट का चन्दन-बिन्दु पूर्णचन्द्र, सिन्दूर तिलक तृतीय नेत्र, कण्ठ की कस्तूरी विष तथा मुक्ताहार वासुकि का आभास देते हैं।[5]

५ एक ही पात्र के लिए शैव और वैष्णव दोनों उपमान : विद्यापति ने आश्रयदाता राजा शिवसिंह को पदों की भनिता में शिव और विष्णु दोनों माना है। वह कृष्ण स्वरूप है,[6] भगवान् विष्णु के ग्यारहवें अवतार हैं[7] अथवा शिव के अवतार हैं।[8]

६. वैष्णव पदावली में शिव का स्मरण : पदावली की नायिका जब भी दुखी होती है, शिव की दुहाई देती है, विष्णु की नहीं। यह मनोवृत्ति कवि के शिव-भक्त व्यक्तित्व की देन प्रतीत होती है। नायिका कहती है 'सिव सिव कइसन होएब नीक नाम'[9] क्योंकि 'सिव सिव एहि जनम भेल ओल'[10] तथा 'सिव सिव जिबओ न जाए,

---

१. विद्यापति पदावली, भाग २, पृ० १३९, पद ७, मित्र तथा मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद ६२९
२. वही, भाग १, पृ० २८१, पद २०४
३. वही, भाग २, पृ० ४६२, पद २०९
४. वही, भाग १, पृ० ३१९, पद २२७
५. वही, भाग २, पृ० १५७, पद १८
६. वही, भाग २, पृ० ४१९, पद १७३
७. वही, भाग २, पृ० ४५८, पद २०६
८. वही, भाग २, पृ० ४२६, पद १८०
९. वही, भाग २, पृ० ४३, पद ३४
१० वही, भाग १, पृ० १०९, पद ७९

९. **विष्णु और शिव एक ही सत्ता के द्योतक अथवा हरिहर के एकात्म स्वरूप का अस्तित्व** : पुरुषपरीक्षा में विद्यापति [illegible] की एकात्मता प्रतिपादित की है और [illegible] । राजा पारावार के यह पूछने पर कि [illegible] देव मानते है, तो कोई विष्णु को । इनमें से [illegible] करना चाहिए ? मुनि उत्तर देते हैं कि कोई विष्णु को [illegible] कोई शिव को, परन्तु यह नाम से ही पृथक् है । [illegible] है ।[1] वस्तुतः प्रस्तुत आख्यान के माध्यम से विद्यापति [illegible] और विष्णु को एक ही प्रतिपादित करने का प्रयास किया है ।

कीर्तिलता में विद्यापति को हरिहर के [illegible] का भी स्मरण है, जिसमें आधा भाग हरिवत् रहता है और शेष हर के लक्षणों से [illegible] । [illegible] और मलिक असलान के युद्ध के समय इब्राहिमशाह की सेना के [illegible] का वर्णन है । सेना के प्रभाव और आतंक से सूर्य का तेज ढक गया, [illegible] हुआ । पृथ्वी पर धूलि के कारण अन्धकार छा गया । और उस समय [illegible] कारण विष्णु और शिव का शरीर मिलकर (हरिहरात्मक रूप) एक हो गया ।[2]

विद्यापति पदावली में कीर्तिलता की रचना के समय विद्यापति को प्रौढ़ माना गया है ।[3] जबकि डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार कीर्तिलता विद्यापति का सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसे उन्होंने बीस वर्ष की आयु में रचा था । यदि यह विद्यापति की पहली रचना है तो [illegible] । [illegible] में पहले से [illegible] और विष्णु [illegible] समझा जाता था ।

१० **शिव का एक स्वरूप हरिहर** : [illegible] मूर्तिशास्त्रीय ग्रन्थों में हरिहर के लक्षण [illegible] मूर्ति-विधान [illegible] से ज्ञात होता है कि हरिहर शैव परम्परा की देन है । [illegible] शिव का [illegible] स्वरूप [illegible] है । सम्भवतः इसीलिए ऐसी कुछ मूर्तियाँ बनीं, जो [illegible] होते हुए भी [illegible] लक्षणों से सम्पन्न रहती हैं

---

१ [illegible] विवेकवान् [illegible] तथा ।
[illegible] भेदः [illegible] ॥
—पुरुषपरीक्षा, [illegible] (२८-सात्विक कथा), श्लोक ७

२ [illegible] भर ।
हरि [illegible] ॥—कीर्तिलता, पल्लव ४

३. [illegible] भाग १, पृ० ७४

और इन्हें हरिहर-विग्रह माना जाता है। विद्यापति के शिव भी कुछ वैष्णव प्रतीक धारण करते हैं। कवि कहता है कि तपोवन में महेश्वर वास करते है और भयकर कष्ट सहन करते हैं। उनके कान में कुण्डल तथा हाथ मे चक्र है।[1] इसी प्रकार पार्वती-विवाह के सन्दर्भ मे शिव को मुक्तामालधारी बताया है।[2] चक्र विष्णु का अपना विशिष्ट आयुध है, जिसे दुर्गा और भैरव भी धारण करते है। प्रस्तुत सन्दर्भ में शिव के भैरव स्वरूप का अर्थ इसलिए नही हो सकता क्योंकि विप्रलम्भ शृगार का वर्णन चल रहा है और ऐसे में शिव के उग्र अथवा रौद्र रूप का वर्णन नही किया जायेगा। साथ ही यहाँ शिव को वनवासी बताया है, जबकि भैरव श्मशान मे रहते है। इससे ज्ञात होता है कि विद्यापति को शिव के उसी हरिहर रूप की अपेक्षा है जो त्रिशूल के साथ चक्र भी धारण करता है। अन्य स्थान पर शिव का मुक्तामालधारी होना भी वैष्णव प्रभाव का द्योतक है। मुक्तामाल विष्णु धारण करते है। यहाँ भी विद्यापति हरिहर के समन्वित रूप को विस्मृत नहीं कर सके हैं और शिव के साथ विष्णु का एक लक्षण—मुक्तामाल—सलग्न करके उस स्वरूप की रक्षा की है।

११. एक ही सत्ता कालक्रम से हरि और हर रूप धारी : विद्यापति की दृष्टि मे हरिहर एक ही शक्ति अथवा सत्ता है, जो कालक्रम से विष्णु और शिव का स्वरूप धारण कर लेती है। कभी पीताम्बर धारण कर लेती है, कभी बाघम्बर। कभी पचानन स्वरूप होता है, तो कभी चतुर्भुजी। एक ही स्वरूप कृष्ण (विष्णु) रूप मे गोकुल मे गाय चराता है और फिर डमरू बजाते हुए भीख माँगता है। उसीने वामनावतार मे पृथ्वी को दान में लिया था और वही भस्म धारण करता है। एक ही शरीर—स्वरूप—नारायण और शूलपाणि के रूप में बैकुण्ठ मे और तुरन्त ही कैलास पर वास करता है।[3] इस पद में शैव और वैष्णव लक्षण समान क्रम से नहीं मिलते हैं। यह क्रम कुछ इस प्रकार है—

पंक्ति	स्वरूप	
	प्रथम	पश्चात्
१.	शिव (हर)	विष्णु (हरि)
२.	विष्णु (पीताम्बरधारी)	शिव (बाघम्बरधारी)

१. मित्र-मजूमदार द्वारा सम्पादित विद्यापति, पद ६०६
२. वही, पद ६०७
३. वही, पद ७७३

३.	शिव (पञ्चानन)	विष्णु (चतुर्भुज)
४.	शिव (शङ्कर)	विष्णु (मुरारि)
५-६	विष्णु (गोपाल कृष्ण)	शिव (भिक्षाटन मूर्ति)
७-८.	विष्णु (वामन	शिव (योगी)
१०.	विष्णु (वैकुण्ठवासी)	शिव (कैलासवासी)
१२.	विष्णु (नारायण)	शिव (शूलपाणि)

जहाँ हरिहर मूर्ति मे आधा-आधा भाग शिव और विष्णु को मिलता है, विद्यापति ने ऐसा कोई भेद न रखते हुए दोनो को नीर-क्षीरवत् मिलाने का प्रयास किया है। कुछ मूर्तियों मे भी शिव-पार्श्व में वैष्णव लक्षण और वैष्णव पार्श्व में शैव लक्षण मिले रहते हैं।

१२. **मंगलाचरण में हरिहर स्तवन :** युग की तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल विद्यापति ने कई ग्रन्थो के मगलाचरणों में शिव के समन्वयकारी अर्धनारीश्वर स्वरूप का स्तवन किया है।[1] इसी प्रकार गगावाक्यावली के मगलाचरण मे हरिहर का स्मरण करते हुए कहा है कि चन्द्रमौलि आपका कल्याण करें जो विष्णु के साथ सयुक्त हैं।[2]

१३. **हरिहर-भक्ति का उद्बोधन :** विद्यापति ने भणिता में मालति को सम्बोधित करते हुए हरिहर-भक्ति का उद्घोष किया है। इस पद की रचना जिस दैन्यावस्था मे हुई है, वह कवि की अपनी लगती है। यौवन भर केलिक्रीडा करने के बाद वृद्धावस्था मे केश श्वेत हो गए, आँख और कान ने अपना कार्य छोड दिया है। ऐसे में स्वयं को प्रताड़ना देते हुए कवि कहता है कि शैशव के समय में माँ का मधुर दूध पिया। उसके बाद कोमल कच्चे शरीर को कितना दधि-दूध भी खिलाया है चोरी करके चन्दन चबाकर अपनी तथा अन्य की स्त्री के साथ मिलन कैसा समझा (चन्दन घसने से सुगन्ध प्राप्त होती है, परन्तु उसे चबाया अर्थात् काम-गन्धहीन प्रेम से सन्तुष्ट न रहकर भोग से उन्मत्त हुए)। निर्लज्ज होने के कारण भ्रमर के समान फूल छूते और छोड़ते लज्जा नहीं हुई। (हे मन !) वयस छोड़कर कहाँ गए ? तुम्हारी ही सेवा करते जीवन काटा, तब भी अपने न हुए। कांचन, कपूर, ताम्बूल प्रभृति योग्य द्रव्य खोजते-खोजते जीवन की कई दशाएँ नष्ट हो गई। कोमल-कामिनी के श्रीफलो की छाया में अपने को भुलाया। जिसमें रस और स्वाद नहीं, उसीमें समय खोया। मेरा प्रमाद घटा, वातास ने पीछे लगकर कामाग्नि को जलाया। आज केश कैसे सादा

---

१. देखिए—कीर्तिलता, गोरक्षविजय, मणिमजरी के मगलाचरण;
२. विद्यापति-गीत-सग्रह, पृ० ६३, पादटिप्पणी;

यह मत्र मोहि गुरुन बतायो स्याम धाम की पूजा,
यह वासना घटे नही कबहूँ देव न देखहुँ दूजा ।[1]

और शैवो की उपेक्षा करते हुए उन्होंने कृष्ण-विमुख लोगों को ब्रजभूमि त्यागकर काशी जाने के लिए कहा है ।[2] इसी प्रकार नन्ददास ने अपने जन्मस्थान रामपुर गाँव का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था ।[3] परन्तु इस प्रकार की असहिष्णुता इनमें गहरे तक नही है । ऐसा समझा जाता है कि नन्ददास तो प्रारम्भ में राम के भक्त थे[4] और उन्होंने राम तथा हनुमान पर रचना भी की है ।[5] उनका एक छन्द गगा-स्तवन पर भी है—

जै जै जह्नुनदिनि, त्रैताप दुख निकंदिनि,
जै पद सरोज वदनि, कलि कलुष दोष हारिका ।
भगीरथ सोक सोख, पावन जस तिहूँ लोक,
सगर-सुवन-कोक हेत किरन कारिका ।
जमपुर को पथ रोकि, पतितन कोऊ सक न टोकि,
सुरपुर बिच करिहि ओक, सुकृत सारिका ।
जै सिर धार्मिनि पुरारि, वेद विदित जस पुकारि,
वदत सुर मुनि मुरारि विमल वारिका ।
जै हरनि दोष दारिद, कीरति सुजस विस्तारिद,
अघ ओघ तरु कुठारिद, जै जह्नु की कुमारिका ।
दासन दै निकट वास, दीजै मति को प्रकास,
वदत जस नन्ददास पीत धवल धारिका ।।[6]

अन्य कवियो में कृष्णदास ने गगा-स्तवन (पद ११०८), परमानन्ददास ने वामन (पद २०१-२०४), रामनवमी (पद ३३७-३४३), नृसिंह चतुर्दशी (पद ३४५-३५०)

---

१. परमानन्दसागर, पद ६०३
२. वही, पद ८३६
३. सुकवि सरोज, भाग २, पृ० ६ के आधार पर डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५४८
४. अष्टछाप परिचय, पृ० १६५
५. नन्ददास, पदावली ६०-१०१, परिशिष्ट (ग), पदावली, स० २३-२४
६. गोसाईंचरित, काशी खड, पडित सवाद प्रसग, नन्ददास कृत विष्णुपद;

तथा गंगा (पद ५८४-५८८) और गोविन्दस्वामी ने वामन जयन्ती (पद ४८-४९) तथा रामनवमी (पद १५१-१५४) पर भी रचना की है।

सूरदास

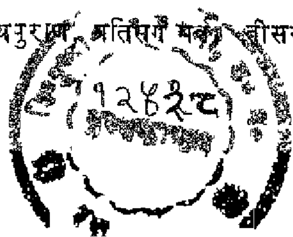
वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप का प्रत्येक पुष्प अपना विशिष्ट महत्व रखता है, परन्तु हिन्दी के काव्य-कानन को सूर की वाणी ने जितना सुवासित किया है उतना अन्य कोई कृष्ण-भक्त कवि नहीं कर सका है। जागरूक कवि अपने युग की परिस्थितियों से विमुख होकर नहीं चल सकता और सम्प्रदाय-विशेष मे दीक्षा के पूर्व की मान्यताओ तथा विचारधाराओ से उसका पूर्णतया असंस्पृष्ट हो जाना भी दुष्कर है। सूर साहित्य को लेकर भी ऐसा ही विवाद चल रहा है। जहाँ डॉ० व्रजेश्वर वर्मा का मत है कि सूर ने कृष्णेतर समस्त देवी-देवताओ का बहिष्कार किया है, वहीं डॉ० हरवंशलाल सूर को स्मार्त पथ का विरोधी न मानकर 'तत्कालीन प्रचलित वैष्णवेतर सम्प्रदायों के सूर साहित्य में उचित प्रतिनिधित्व' को स्वीकार करते हुए लिखते है कि सूर की रचना में नाथ-योगियों के सिद्धान्तो का इतना उल्लेख है कि कभी-कभी तो यह धारणा होने लगती है कि सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले सूर का नाथ-सम्प्रदाय से विशेष सम्पर्क रहा होगा।[1] प्रस्तुत धारणा को अधिक सम्भाव्य मानते हुए डॉ० शर्मा ने पहले तो सूर पर शिव-भक्ति का प्रभाव 'स्वीकार किया है[2] और फिर दीक्षा के पूर्व उनकी शिव-भक्ति में निष्ठा का विश्वास कर लिया है।[3]

भविष्यपुराण मे सूर विषयक जो उल्लेख मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि वे चन्द्रभट्ट कुल मे उत्पन्न हुए थे और प्रारम्भ में शम्भु अर्थात् शैव धर्मावलम्बी थे, जबकि बाद मे हरिप्रिय अर्थात् भगवत् भक्त बन गये।[4]

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर सूर के कतिपय पदो (—सूरसागर, पद १०६, ७८८, ७८९) को दृष्टि में रखते हुए डॉ० मुशीराम शर्मा का अभिमत है कि सूर एक

---

१. सूर और उनका साहित्य, परिशिष्ट १, पृ० १-२
२. वही, पृ० ८०
३. "सूर के समय में नाथ-सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रभाव था और सूर का इस सम्प्रदाय से घनिष्ट परिचय था। उनके शिव विषयक पद इस बात के भी परिचायक हैं कि उनकी शैव भक्ति में निष्ठा थी।"—वही, परिशिष्ट १, पृ० ६
४. सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीला करः कविः।
शम्भुर्वैचन्द्रभट्टस्यकुले जातो हरिप्रिय ।।—भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, तीसरा भाग, अध्याय २२, श्लोक ३०, चतुर्थ खंड,



संस्कृत कुल में उत्पन्न हुए थे और उत्तराखण्ड के अन्य ब्राह्मणों की भाँति इनका वंश, भी शैव सम्प्रदाय का अनुगामी था। सम्भवतः अपनी प्रारम्भिक आयु में सूर भी शैव थे, क्योंकि सूरसारावली के छन्द सं० १००२ में इन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को शैव सम्प्रदाय के विधानों के अनुकूल तप करने वाला कहा है।[१]

यह सच है कि सूर को दीक्षा-पूर्व स्थिति पर खेद और क्षोभ है, परन्तु सूरसारावली के—

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ।।१००२।।

छन्द से उनके शैव होने में सन्देह नहीं रह जाता है। डॉ० मनमोहन गौतम 'शिव-विधान' पाठ के अर्थ की संगति ही नहीं लगा पाते हैं और उन्होंने यहाँ पर 'शिव-विधात' पाठ रखकर अर्थ किया है—'शिव और विधाता दोनों ने तपस्या की।' उनके अनुसार सूर की शिव-साधना प्रमाणित नहीं है। डॉ० मुंशीराम शर्मा ने कल्पित करके ऐसी धारणा बनाई है। परन्तु लगता है डॉ० गौतम सूरसागर को भलीभाँति नहीं देख पाये हैं, जहाँ सूर ने कृष्णेतर उपासना को स्वीकार किया है—

क. अपनी भक्ति देहु भगवान।
जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, **स्वकर काटत सीस**।
देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस।।
कामना करि कोटि कबहूँ किये बहु **पसु-घात**।—सूरसागर १०६

ख कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल-बिमल जस गाइ।
प्रेम सहित पग बाँधि घूँघरू, सक्यौ न अंग नचाइ।।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहु रुचि उपजाइ।
आनि भक्ति करि, हरि-भक्तिनि के कबहुँ न धोए पाइ।।—वही १५५

ग. भक्ति बिना जौ कृपा न करते तौ हौं आस न करतौ।

× × ×

औघड़-असत-कुचीलनि सौं मिलि, माया-जल मैं तरतौ।।—वही २०३

घ. जैमत-पिता जगदीस-सरन बिनु सुख तीनौं पुर नाहीं।
और सकल मैं देखे ढूंढ़े, बादर की सी छाहीं।।—वही ३२३

---

१. **सूरसौरभ, पृ० ३८-३९**

पहले उदाहरण में पशु-हिंसा की बात कही गई है जो शाक्त अथवा शैव धर्म में ही होती है। सूर-काव्य से उनके शाक्त आचारों का विशेष परिचय नही मिलता है। दूसरे तथा चौथे उदाहरणो से वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा के पूर्व उनका अवैष्णव होना निश्चित है। तीसरे पद में उन्होंने औघडो के साथ रहने की बात कही है। औघड़ शैव होते है। इनका साथ सूर को रुचिकर अवश्य नही लगा, परन्तु शिव या शैव धर्म को वे विस्मृत नही कर सके। सूरसागर की रचना भागवत के आधार पर हुई है और दोनो की तुलना के आधार पर हम नीचे कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे सूर की शिव अथवा शैव धर्म के प्रति प्रच्छन्न आस्था-निष्ठा प्रकट होती है।

१. शिव की अपेक्षा विष्णु-महिमा के आधिक्य-प्रतिपादन का त्याग : भागवत के सप्तम स्कन्ध में एतद्विषयक जो उपदेश दिया गया है, उसे सूर ने ग्रहण नही किया है।[1]

२. शिव-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति प्रतिपादक आख्यान का संक्षेपीकरण : भागवत में बाण-वध तथा उषा-अनिरुद्ध विवाह के आख्यान द्वारा शिव-भक्ति से कृष्ण-भक्ति को अधिक महत्वपूर्ण दिखाया है। सूर ने इसे केवल दो पदों में कहा है।[2]

३. शैव आख्यान को किंचित् विस्तार : भागवत के सप्तम स्कन्ध में नृसिंह अवतार, त्रिपुर-वध तथा नारद-उत्पत्ति की कथाएँ मात्र दृष्टान्त के रूप मे दी गई है। सूर ने त्रिपुर-वध का वर्णन पच्चीस पंक्तियो के लम्बे वर्णनात्मक शैली के एक पद मे किया है।[3]

४. शैवों के पतन-वर्णन का त्याग : भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति तथा ब्राह्मणों की हीन अवस्था के साथ शैवों के पतन का भी चित्रण है। सूर ने इसे छोड दिया है।

५ पति-प्राप्ति के लिए कात्यायनी तथा भद्रकाली-पूजन के स्थान पर शिव-पूजन कराना : भागवतकार ने चीर-हरण लीला के सन्दर्भ में वर्षा और शरद् के वर्णन, नग्न-स्नान के औचित्य-अनौचित्य की विवेचना आदि के साथ गोपियों से एक मास तक भद्रकाली तथा कात्यायनी का पूजन कराया है। कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए सूर की गोपियाँ यमुना-स्नान करके नित्य नियमपूर्वक सूर्य तथा शिव की उपासना करती हैं। यहाँ पूजन की अवधि भी एक मास के स्थान पर एक वर्ष है।

---

१. सूरदास, पृ० ६०

२. वही, पृ० ७७

३. सूरसागर, पद ४२६

६. शैव कथानक की नवीन सृष्टि : सूर ने चतुर्थ स्कन्ध का प्रारम्भ दत्तात्रेय तथा यज्ञ-पुरुष अवतार की कथाओं से किया है, जो भागवत के अनुसार हैं, परन्तु यहीं पर एक पद में शिव-आहुति का प्रसङ्ग कवि-कल्पना से अनुस्यूत है।

यद्यपि सूर ने एक स्थल (सूरसागर, पद ७५) पर अन्य देवों की भक्ति को कष्टदायक समझकर राधा-कृष्ण के प्रति एकान्त अनन्यता प्रकट की है—

श्री राधिका स्याम की प्यारी कृपा बास ब्रज पाऊँ।
आन देव सपनेहुँ न जानौ, दंपति कौ सिर नाऊँ॥—सूरसागर, पद १७६२

तथापि उन्होंने कहीं पर अन्य देवों का बहिष्कार नहीं किया है, क्योंकि वे भी कुछ न कुछ फलदायक अवश्य हैं (सूरसागर, पद १६८)। जिस प्रकार पतिव्रता पति को त्यागकर उसके इष्ट-मित्रों तथा सुहृदों तक की सेवा को तत्पर नहीं होगी, उसी प्रकार सूर को कृष्ण-बलराम के स्थान पर अन्य देव स्वीकार्य नहीं। हाँ, उनके साथ मे तो उन्हें अन्यों के भी पूजन में आपत्ति नहीं।[१] नन्द-यशोदा द्वारा पुत्र-प्राप्ति, गोपियो द्वारा इच्छित वर-प्राप्ति तथा निर्हेतुक रूप मे भी शिव-पार्वती और सूर्य की उपासना[२] के मूल में सूर की यह धार्मिक सहिष्णुता तथा समन्वयात्मक भावना ही अन्तर्निहित है। रुक्मिणी विष्णुप्रिया कमला का अवतार होकर[३] भी कृष्ण को प्राप्त करने के लिए अम्बिका-पूजन करती हैं।[४]

सूरदास के इष्ट श्रीकृष्ण सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अज और अनन्त परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। उनके विराट् स्वरूप में समस्त सृष्टि समाहित है—

रह्यौ घट-घट ब्यापि सोई, जोति-रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर-चन्द्र-नक्षत्र-पावक, सर्व तासु प्रकास॥—सूरसागर, पद ३७०

सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र वही थे और निर्माण, पालन तथा संहारकर्त्री ब्रह्मा-विष्णु-शिव नामक तीन शक्तियाँ ही नहीं समस्त स्वरूप उन्होंने धारण किये

१. स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ।
—सूरसागर, पद १६७
स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, सपनहूँ मैं नहीं सीस नाऊँ।—वही, पद ४८२८

२. सूरसागर, पद ६६८, १३८२, १३८४, १३८५, १४००, १४१६, १४१७, १८४१, ४६७६, ४८००, ४८०७; १८०२; १३२०, १३८६ आदि;

३. सूरसारावली, छन्द ६२३

४. वही, छन्द ६३०-६३३

है ।[१] सृष्टि के साथ संहार भी करने के कारण वेद स्वकृत स्तुति में उन्हे शैव अभिधान ईश भी प्रदान करते हैं ।[२] उषा-अनिरुद्ध विवाह के प्रसंग में त्रिदेव समन्वय की स्थापना करते हुए कृष्ण रुद्र से कहते हैं कि विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा तीनो मेरे ही रूप हैं और तुम्हारी भक्ति मेरी ही भक्ति है । जो तुम्हारी भक्ति करता है, मैं उससे भी प्रसन्न होता हूं ।[३] जब अखिल विश्व में एकमात्र वही परिव्याप्त है तो किसी भी प्रकार और किसी भी रूप में किया गया भक्ति-भाव उसीको प्राप्त होकर इष्ट की सिद्धि होती है—

सूर भजै हरि जो जिहि भाऊ । मिलत ताहि प्रभु तेहि सुभाऊ ।।
—सूरसागर १५२१

भजे जिहि भाव जो, मिलैं हरि ताहि त्यौ भेद-भेदा नही पुरुष नारी ।
—वही १६२७

झूठी बात कहा मैं जानौं ।
जो मोकौं जैसेहि भजै री, ताकौं तैसेहि मानौं ।।—वही २१८१

शिव और कृष्ण अथवा विष्णु के इस एकात्म भाव को लेकर सूर-साहित्य मे जो स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हे इन निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. **शिव रामकथा के व्याख्याता :** शिव के लिए राम का चरित आनन्ददायक है, इसलिए वे उसका ध्यान करते-करते समाधिलीन हो जाते हैं । समाधि भग होने पर सती उस रामकथा को सुनने का औत्सुक्य प्रकट करती हैं । रामकथा का प्रकाशन सर्वप्रथम यहाँ शिव द्वारा सती के ही सम्मुख होता है ।[४]

२. **शिव कृष्ण-भक्ति के उपदेशक :** शिव और पार्वती के अनुसार अश्वमेध यज्ञ गया, बनारस व केदार को तीर्थ-यात्रा, त्रिवेणी-स्नान, चन्द्रायन व्रत आदि कुछ भी राम-नाम सदृश नही है, इसलिए मानव जीवन प्राप्त करके कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए ।[५]

---

१ सूरसागर, पद ३८१, ३९९, १५३३, ४९२१
२. वही, छन्द ४९२०
३. बिहँसि जगदीस कह्यो रुद्र जो तुहि भजै,
तहाँ मैं जाउँ यह प्रन हमारैं ।
करै जो सेव तुम्हरी सु मम सेव है,
विष्नु सिव ब्रह्म मम रूप सारे ।।—वही ४८१७
४. महादेव तब थिर करिकै यह चरित कियो विस्तार ।—सूरसारावली १५२
५. सूरसागर ३४६

३. विष्णु शिव के सहायक : ब्रह्मा से वर पाकर असुरों ने त्रिपुर नामक ऐसे कोट का निर्माण किया, जिसमें बैठकर वे देवों के लिए अजेय हो गये। उन्होंने देवों से जब अमृत का भी अपहरण कर लिया तो देवताओं ने शिव-साहाय्य प्राप्त की। परन्तु जब शिव किसी असुर को मारते थे, तो उसे अमृत-पान से जीवित कर लिया जाता था। ऐसे समय असुरों को अमृत से वंचित करके विष्णु ने त्रिपुर-विजय में शिव को सहायता प्रदान की।[१]

४. वैष्णव उत्सवों से शिव को प्रसन्नता : प्रिय के आनन्द में उत्साह की सम्प्राप्ति स्वाभाविक है। कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार में शिव न्यौछावर करते हैं[२] और राम के सिंहासनारूढ होते समय भी उपस्थित होकर आनन्दित होते हैं।[३]

५. विष्णु और शिव की अन्योन्याश्रित भक्ति : परस्पर समान स्तर होने पर जहाँ निःसकोच भाव होता है, वहीं दूसरी ओर आदर-भाव भी। प्रत्येक दूसरे को अपने से अभिन्न मानते हुए भी सम्मान प्रदान करता है। यही कारण है कि विष्णु शिव के भक्त हैं और शिव विष्णु के उपासक। अन्ततः दोनों में लघुता किसकी? किसी की नहीं, दोनों महान् हैं। इसलिए कि दूसरा महान् समझता है और इसलिए भी कि समान होने पर भी वह स्वय दूसरे के प्रति श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि शिव का विष्णु के प्रति उपास्य भाव है। उन्हें कृष्ण के चरण तक प्रिय होने के कारण वे उन (विष्णु) के चरणोदक रूप गगा को सिर पर धारण करते हैं।[४] कृष्ण का नाम उनका धन है[५] और वे राम तथा गोविन्द का ही ध्यान करते हैं।[६] शिव के विभूति तथा समाधि धारण करने का कारण कृष्ण ही है।[७] दक्ष के आगमन पर स्वागत न कर सकने के मूल में शिव का विष्णु के ध्यान में मग्न होना ही है।[८] वल्लभ सम्प्रदाय में शिव का स्थान भगवान् के प्रमुख भक्तों में माना गया है।[९]

---

१. सूरसागर ४२६
२. वही ३७१३
३. सूरसारावली ३०४
४. वही ६८५; सूरसागर १५, ४२०, ११८८
५. वही ११४
६. वही १६०२, ४९२५; १७८२, २२१६, २६३४ आदि;
७. वही ७४६, ३७८५, ४४१६; सूरसारावली १४८-१५०
८. सूरसागर ३६६
९. नन्ददास भूमिका पृ० २८

दूसरी ओर कवि ने शिव-नगरी वाराणसी को मुक्ति-क्षेत्र बताते हुए[1] प्रिया का मान भंग कराते समय कृष्ण द्वारा अपने प्रिय शिव की सौगन्ध दिलाई है।[2] सीता त्रिजटा से कहती हैं कि वह दिन कब आयेगा, जब राम रावण-वध के पश्चात् उसके सिर शिव को अर्पित करेंगे[3] और युद्ध-भूमि में राम प्रतिज्ञा करते हैं कि मैंने शिव का पूजन जिस रूप में किया है उसे आज प्रत्यक्ष करते हुए दसशीश-माल्य शिव को अर्पित करूँगा।[4] कृष्ण के ब्रह्मत्व में जब नारद को सन्देह होता है तो वे कृष्ण के सम्मुख उपस्थित होते हैं। उस समय कृष्ण अपने विराट् और सर्वव्यापकत्व को प्रदर्शित करते हैं, जिसमें नारद कृष्ण को शिव-पूजन करते दिखाई पड़ते हैं।[5]

६. **कृष्ण पर शिव का आरोपण :** कला मे कुछ मूर्तियाँ ऐसी उपलब्ध होती हैं जिनमें शैव या वैष्णव प्रकृति प्रधान है और समन्वयात्मक भाव लाने के लिए उनमे अन्य के लक्षणो को आरोपित कर दिया गया है। पण्ढरपुर की विट्ठलमूर्ति में कृष्ण के मस्तक पर शिवलिंग की रचना इसी उद्देश्य से हुई है।

सूर शिव को विस्मृत नही कर पाते हैं, इसीलिए कृष्ण को देखकर उन्हे शिव का ही आभास होता है—

बरनौं बाल-बेष मुरारि।
थकित जित-तित अमर मुनि-गन, नन्दलाल निहारि।
केस सिर बिन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु-रूप कियो त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरि-बिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन रह्यो जनु रिपु जारि।
कठ कठुला नील मनि, अभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहि भाइ भए मदनारि।
कुटिल हरि-नख हिएँ हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यो भाल हैं जु उतारि।

१. सूरसागर २४०
२. वही ३३५०
३. वही ५२५
४ वही ६०१
५. सूरसारावली ६७८

सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहि अनुहारि।
मनहुँ अग विभूति राजति संभु सो मधुहारि।
त्रिदस-पति-पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि।
सूरदास बिरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि ।।—सूरसागर ७८७

२. सखि री नन्दनन्दन देखु।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु।
नील पाट पिरोइ मनि गन, फनिग धोखैं जाइ।
झुनझुना कर हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाइ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ।
मुण्ड-माला मनौ हर-गर, ऐसी सोभा पाइ।
स्वाति-सुत-माला विराजत स्याम तन इहि भाइ।
मनौ गंगा गौरि-डर हर लई कंठ लगाइ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि।
बाल-ससि मनु भाल तें लै उर धर्यो त्रिपुरारि।
देखि अंग अनग झझक्यो, नन्द-सुत हर जान।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याम-सिव को ध्यान ।।—वही ७८८

पहले पद मे कृष्ण के बाल-रूप को देखकर शिव का आभास हो रहा है। यहाँ वैष्णव और शैव प्रतीक इस प्रकार हैं—

वैष्णव प्रतीक (कृष्ण)	शैव प्रतीक
उन्मुक्त केश	जटाजूट
ललाट पर केशर-तिलक	तृतीय नेत्र
ग्रीवा में नीलमणियुक्त कठुला	विषपान से नीलवर्ण ग्रीवा
पद्म-माल	कपाल-माल
हृदय पर केहरि नख	चन्द्रमा
धूलि	विभूति

दूसरे पद के वैष्णव तथा शैव प्रतीक हैं—

वैष्णव प्रतीक	शैव प्रतीक
नील सूत्र में संलग्न मणियाँ	नाग
झुनझुना	डमरू
पद्म-माल	मुण्ड-माल
मुक्तामाल	गगा की ग्रीवा में स्थिति
व्याघ्र नख	चन्द्रमा

डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा का अभिमत है कि यहाँ पर सूर ने शैवों को कृष्ण की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है।[1] परन्तु सूर की कामना तो श्याम-शिव के समन्वित स्वरूप को धारण करने की है। जिस प्रकार रसखानि ने हरिहर में शिव और कृष्ण का समन्वय रखा है उसी प्रकार सूर ने भी हरि रूप में कृष्ण को ग्रहण किया है। 'कल्याण'[2] एस० पी० एस० सग्रहालय श्रीनगर[3] तथा बसोली शैली वाले राष्ट्रीय सग्रहालय[4] के चित्रो में शिव के साथ कृष्ण का ही समन्वय है। सूर के अभिधेय की पुष्टि अगले पद की हरिहर-स्तुति से हो जाती है, जहाँ उन्होंने कहा है—

> हरिहर संकर नमो नमो।
> अहिसायी, अहि अग विभूषन, अमित-दान, बल-बिष-हारी।
> नीलकठ, बर नील कलेबर, प्रेम-परस्पर, कृतहारी।
> चन्द्रचूड, सिखि-चन्द्र-सरोरुह, जमुना-प्रिय, गंगाधारी।
> सुरभि-रेनु-तन, भस्म बिभूषित, बृष-बाहन, बन-बृष चारी।
> अज-अनीह-अविरुद्ध एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
> सूरदास सम रूप-नाम-गुन अतर अनुचर-अनुसारी ।।—सूरसागर ७८६

यहाँ कवि श्वेत-श्यामवर्णी हरिहर में कोई अन्तर नही देख पा रहा है, हरि शेषशायी हैं तो हर नागधारी। हर का कण्ठ नीलवर्ण है तो हरि का समस्त वपु। एक चन्द्रमा को साक्षात् धारण करते हैं तो दूसरो के मोर-मुकुट मे चन्द्रमा है। एक को यमुना प्रिय है तो अन्य को गगा। पयस्विनी तो दोनो ही हैं। एक के शरीर पर गो-चारण की धूलि है तो दूसरा भी उसके ससर्ग में है—चराने के निमित्त। फिर असीम-दानी, अजन्मा, निरीह, मुक्त एव एकरस तो हैं ही। हरिहर के विग्रहो में शैव और वैष्णव लक्षणोंयुक्त दोनों अर्धांश प्रायः स्पष्ट रहते हैं। परन्तु कुछ ऐसी मूर्तियाँ भी मिलती हैं जिनमें शैव-वैष्णव अभिधान तिल-तण्डुलवत् मिश्रित प्राप्त होते हैं। यहाँ कवि दोनो अंशो को स्पष्ट देखते हुए भी उनके विशेषणो में कोई क्रम न रखकर मिला देता है। इससे सूर की उस भावना को बल मिलता है कि हरिहर में शैव और वैष्णव अंश को भी अलग-अलग देखने की आवश्यकता नहीं। कला में इस

---

१. सूरदास, पृ० १३३
२. वर्ष २५, अक २, फरवरी १६५१ ई० तथा वर्ष ४७, अक १, जनवरी १६७३ ई०
३. प्रदर्शन स० २३३४, २४४८
४. स० ६०।१६७३

प्रकार की कोई कृति उपलब्ध न होने से यह सूर की मौलिक कल्पना का परिचायक स्तवन है।

सूरसागर एक वैष्णव रचना है, जिसमें विष्णु के कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन है। इसके कूट पदों में शिव तत्व,[१] शैव उपमानों[२] तथा शैव आख्यानों[३] को अन्तर्निहित कर कवि ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। इसी प्रकार कृष्ण की दानशीलता और सहनशीलता,[४] राम के जटाजूद[५] आदि की उपमा शिव से देना, हनुमान की राम तथा शिव दोनों के प्रति आस्था[६] अथवा कृष्ण और शिव दोनों के द्वारा अर्जुन की सहायता करना[७] आदि भी सूर की समन्वयात्मक प्रवृत्ति के प्रमाण है। डॉ० हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में "सूरदास जी का सूरसागर शताब्दियों से चली आती हुई धार्मिक परम्पराओं का आश्रय स्थल कहा जा सकता है। ...ऐसा प्रतीत होता है कि सभी साम्प्रदायिक विरोधी भावनाएं यहाँ आकर समन्वित हो गई हैं।"[८]

सूरेतर अष्टछापी कवि

इन कवियों ने कृष्णेतर देवी-देवताओं को अधिक महत्व नहीं दिया है तथापि इनकी रचनाओं में शैव वैष्णव सम्बन्ध की विविध कोटियाँ मिल जाती हैं। पहली स्थिति में शिव को कृष्ण से हीन दिखाया गया है, क्योंकि वे कृष्ण के अधीन हैं।[९] वे

१ सूरसागर १२५३, १२७१, १३०६, २४८६, २७०४, ३३६६, ३६०२ तथा सूर-सारावली ६३८, ६५४, ६५८ आदि,

२. सूरसागर १६६४, २५५६, २७३२, २७३६, ३०८४, ३२१८, ३२८७, ३४५०, ३८५३, ४०२५, ४७३४, ४७४१ आदि। वक्ष पर माला, गुलाल, नख चिह्न, कंचुकी अथवा अश्रुधार देखकर कवि को तत्काल शिव-सिर पर गंगा, तपस्यालीन शिव, शिव-सिर पर चन्द्र रेख, पर्णकुटी में शिव, शिव पर जलापंथ तथा चन्द्रमा के भय से पद्म द्वारा शिव को मुक्ता अर्पित करने की स्मृति हो आती है।

३. वही ३८८, ३६८, ४०१, ४३७; सूरसारावली ४८, ४६ आदि;

४. सूरसागर ३६६४

५. वही ५०२

६. वही ५५२

७. वही २८७

८. सूर और उनका साहित्य, पृ० १६१

९. कृष्णदास, पद ८४२; छीतस्वामी, पद १४४

कृष्ण की चरण-रज सिर पर[१] अथवा कृष्ण के चरणो को हृदय में धारण करते हैं ।[२] उनका महत्व अहिल्या ने समझा था, जिनके स्पर्श से वह प्रस्तर से नारी हो गई थी या शिव जानते हैं, जो कृष्ण रूप विष्णु के पादागुष्ठ मे निःसृत गंगा को सिर पर धारण किए रहते हैं ।[३] निगमो के लिए अत्यन्त अगम्य उन कृष्ण हेतु शिव समाधि धारण करते हैं[४] तथा निगमों और वेदो द्वारा नेति-नेति कहलाये जाने वाले मुख के दर्शन करना चाहते हैं ।[५] कृष्ण उनकी सम्पत्ति और सर्वस्व हैं ।[६] कस्तूरी का तिलक, कण्ठ में कठुला, लटो में गजमुक्ता तथा पीताम्बरधारी कृष्ण के बाल-स्वरूप पर शिव मोहित हैं ।[७] इसलिए वे उन्हे ढूँढते घूमते हैं और उनसे मिलने के अभिलाषी हैं ।[८] राम-जन्म के समय सुर-बालाओ का नृत्य, बधाइयाँ तथा दान-वितरण हो रहा है जिसे देखकर शिव भी आनन्दित हैं ।[९] यही नही कृष्ण के हिंडोले को देखकर शिव ताण्डवलीन हो जाते हैं ।[१०] परमानन्ददास ने कृष्णावतार का कारण भुविभार-मोचन तो माना ही है, पर वह शिव आदि की विनय से हुआ है ।[११] कृष्ण भी 'बलराम सहित विनोद लीला सेस सकर हेत' करते है ।[१२]

अन्य स्थिति में कृष्णदास ने चार पदो (४६७, ५३०, ६१२ और ७०३) मे शिव का उल्लेख काम-दहन के सन्दर्भ में किया है । नारी-वक्षों के लिए शिव उपमान रूढ होते हुए भी उसका प्रयोग कवि की सहिष्णुता का द्योतक तो है ही क्योंकि यदि वह असहिष्णु होता तो अन्य बहुत-से उपमानों का प्रयोग कर सकता था । कृष्णदास ने हरित चोली तथा मुक्ताहार धारण करने पर कुचो को कमलाच्छादित गंगाधारी शिव

---

१ नन्ददास, सिद्धान्त पचाध्यायी १६५
२ परमानन्दसागर, पद १, ४७
३ वही, पद १३४१
४ नन्ददास, रूपमजरी १७६, मानमंजरी नाममाला २७३
५ परमानन्दसागर, पद ८२
६ नन्ददास, परिशिष्ट (ग), पदावली, पद १०९, दशम अध्याय, एकादश अध्याय, २६
७ परमानन्दसागर, पद ६०
८ वही, पद २१४, ४३
९ वही, पद ३४२; गोविन्दस्वामी, पद १५४
१० परमानन्दसागर, पद ७६०
११ वही, पद ७
१२ वही, पद ५७

माना है (पद स० ९७९), तो परमानन्ददास को वे स्वेद बिन्दुयुक्त होने पर मोतियों से पूजित शिव लगते हैं।[१] एक पद मे तो कृष्ण ही नखचन्द्रयुक्त शिव बन जाते हैं। खण्डिता का सन्दर्भ है और कृष्ण के हृदय पर नख-चिह्न विद्यमान हैं—

कर नख उर राजत हैं मानों अरध ससि धरे ।।—परमानन्दसागर, पद ७१६

कृष्ण के जन्म तथा अन्नप्राशन के समय कुल-देवी का पूजन तो परमानन्ददास ने भी कराया है (पद ३८, ५०), परन्तु गोविन्दस्वामी और नन्ददास ने अभीप्सित वर की प्राप्ति के लिए पार्वती के साथ शिव की पूजा कराई है।[२] परमानन्ददास ने एक पद में शिव तथा विष्णु को समकक्ष रखा है—

तीन मुख्य देवता ब्रह्मा, विष्नु अरु महादेवा ।—पद ८७६

तथा कुम्भनदास ने एक छन्द में एकेश्वरवाद की स्थापना करते हुए कृष्ण से कहलाया है कि मै ही ब्रह्मा रूप से उत्पत्ति, विष्णु रूप से पालन तथा रुद्र रूप से सहार करता हूँ—

ब्रह्म रूप उतपति करौं, रुद्र रूप सहार ।
विष्णु रूप रक्षा करौं, सो मैं हौं नन्दकुमार ।।
कहत नन्द लाडिलो ।।२३।२२।।

हलधरदास

इन्होंने सुदामाचरित्र के अतिरिक्त शिवस्तोत्र तथा श्रीमद्भागवतभाषा का प्रणयन किया था।[३] जैसाकि स्पष्ट है शिवस्तोत्र में शिव का स्तवन तथा अन्य ग्रन्थ में श्रीमद्भागवतपुराण का भाषा अनुवाद होगा। सुदामाचरित्र में इन्होंने सुदामा की दैन्य दशा, पत्नी की प्रेरणा से मित्र कृष्ण के पास जाने, कृष्ण कृत सुदामा-सत्कार, कृष्ण द्वारा सुदामा को अज्ञात रूप में वैभव-प्रदान, सुदामा के प्रत्यागमन, भव्य अट्टालिकाओं युक्त अपने परिवर्तित गाँव के अभिज्ञान में असमर्थ होने और पत्नी द्वारा स्वत्व प्रमाणित करने पर वहाँ निवास करने का वर्णन किया है। यद्यपि कथानक में नरोत्तमदास के सुदामाचरित्र से कोई विशेष अन्तर नहीं है, तथापि प्रस्तुत कवि की रचना-प्रेरणा का परिचय महत्वपूर्ण है।

---

१. परमानन्दसागर, पद २१६ तथा १४०; नन्ददास, रूपमजरी १४०; रसमजरी ६६
२. गोविन्दस्वामी, पद ३७५; नन्ददास, रुक्मिनीमगल १६५-२११, दशम स्कन्ध, द्वाविंश अध्याय ५-६; परमानन्दसागर, पद ७२३
३. सुदामाचरित्र, भूमिका, पृ० ८५

जब यह जगन्नाथ की यात्रा पर थे तो मार्ग में इन्हे कृष्ण ने स्वप्न मे दर्शन दिए । कृष्ण ने हलधरदास को शिव-भक्त कहते हुए आदेश दिया—

औचक ही प्रभु सपन में, टेरि सुनायौ बेनु ।
जागु जागु रे हलधरा, चन्द्रचूड पदरेनु ।।
चन्द्रचूड पद जपन करु, जग सपने को ऐन ।
और कछुक तू काल धरु, सुधा सरिस मो बेन ।।
तू चरित्र मो मित्र को, करु प्रसिद्ध ससार ।
जासु बाहुरी प्रेम ते हम कीन्ही आहार ।।[१]

यहाँ कवि को शिव-भक्त कहा गया है । परन्तु यह सम्बोधन कवि ने नहीं कृष्ण ने प्रयुक्त किया है । जहाँ तक कवि की प्रकृति का प्रश्न है उसने तीन छन्दों में शिव का पूर्ण मनोयोग से वर्णन किया है,[२] जिनसे उसकी शिव के प्रति उन्मुखता पूर्ण स्पष्ट हो जाती है । कृष्ण भी उसे शिव-भक्ति का उद्‌बोधन देते है । दूसरी ओर वह कृष्ण के ही आदेश से उनके मित्र का चरित-गान कर रहा है । इससे प्रकट होता है कि कृष्ण अपने तथा शिव के भक्त में कोई अन्तर नहीं समझते हैं । किसी की भी भक्ति से उनका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है । सुदामा को कृष्ण के पास जाने के लिए प्रेरित करती हुई उनकी पत्नी कहती है कि वे तुम्हें उसी प्रकार अक में भर लेगे जिस प्रकार वे शिव का आदर करते हैं—

वे मुरारि प्रेमायतन गहि भिखारि अकम भरे ।
वे न मित्र भेंटैं विमुख सिव समान आदर करे ।।५६।।

परन्तु इसीसे हलधर को शिव का भक्त नही मान लिया जा सकता, क्योंकि वे कृष्ण तथा उनके मित्र सुदामा का वर्णन कर रहे हैं और कृष्ण के भोजन करते समय रामचरितमानस के तापस या सूरसागर के ढाढ़ी के समान पीकदान लेकर उपस्थित होते हैं ।[३] इस सम्बन्ध में डॉ० सियाराम तिवारी का यह मत ही उद्‌धृत करना उपयुक्त है कि हलधरदास की सर्वोच्च भक्त्यात्मक उपलब्धि यह है कि उन्होंने वैष्णव-शैव समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया था । जिस कार्य के लिए गोस्वामी तुलसीदास को

---

१. सुदामाचरित्र, छन्द १-२, ४

२. वही ३०३-३०५

३. प्रथम दई बीरी दुजहिं तब कृपाल जू पै दई ।
पीक पिअन कौं हलधरा सीस पीकदानी लई ।।—वही २१५

अत्यधिक श्रेय मिला है उसका मार्ग दिखाने वाले अद्यावधि ज्ञात थोड़े कवियों में हल-धरदास प्रमुख हैं ।[१]

एक छन्द में कवि ने कृष्ण कृत आतिथ्य-सत्कार का वर्णन किया है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियों का मुद्रित पाठ निम्न है—

दीन-चरन हरि आदरे हरि-प्रिय भोजन को गह्यौ ।
जो नर निज आदर चहौ तौ निसि-बासर हरि-हरि कह्यौ ।।१९७।।

खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित सुदामाचरित्र में हरि हरि के स्थान पर हरि-हर पाठ उपलब्ध होता है । यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) तथा बिहार संस्कृत शिक्षा समिति (पटना) के सहायक शिक्षा निदेशक श्री रामपदार्थ शर्मा की पाण्डुलिपियों पर आधारित है ।[२] पाठ-निर्धारण की दृष्टि से सम्पादक ने समस्त उपलब्ध प्रतियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है ।[३] खड्गविलास प्रेस की प्रति इनमें से तृतीय वर्ग में रखी गई है । सभी प्रतियों में से प्रथम शाखा की तेइसवीं प्रति प्राचीनतम तथा पाठ की दृष्टि से सर्वाधिक शुद्ध मानी गई है और पाठ-शोध के लिए इसी प्रति को आधार तथा पाठान्तरों के लिए इसी शाखा की प्राचीनतम मुद्रित प्रति इक्कीसवीं को ग्रहण किया गया है ।

सभी शाखाओं की प्रतियों को समग्रतः देखकर सम्पादक ने इनमें सामान्यतः दो वर्ग पाये है—मुद्रित और हस्तलिखित । पाठचयन के लिए उसने हस्तलिखित प्रतियों का ही आश्रय लिया है । इस कारण सम्भव है कि एक पूर्वाग्रहवश उसके द्वारा मुद्रित प्रतियों का जो पाठ छोड़ा गया है, वही वैज्ञानिक हो रहा हो । इस प्रकार सम्भव है कि यहाँ १९७वें छन्द में हरि-हरि के स्थान पर मूलतः हरिहर पाठ ही रहा हो । कवि की प्रवृत्ति समन्वयात्मक है ही, दूसरी ओर उसने हरिहरात्मक शैली पर दो छन्दों में कृष्ण तथा शिव को यथाक्रम स्मरण किया है—

जिन्हैं कृष्न को सरन सुभ जिन्ह कृष्न मनायो ।
जिन्ह रीते सिव-चरन उग्र जिन्ह सिव जस गायो ।
जिन्हैं कृष्न अनुराग-प्रेम, जिन्ह कृष्न भजे हैं ।
जिन्हैं सदासिव-नेम, जिन्हैं सिव-रस उपजे हैं ।
तिन्हक भाल नहिं दुख लिखै जौ विधि लिखैं तौ मिटि परैं ।
ते सब कत न सपनेहु विधि-रेखा गनना करैं ।।७६।।

१. सुदामाचरित्र, भूमिका, पृ० ८४-८५
२. वही, भूमिका, पृ० ६
३. वही, भूमिका, शाखा-निर्धारण, पृ० १८-२०

कृष्नराय के तनै कहौ किमि कुष्ठ बदन हैं।
सिवकुमार किमि गज भया न मुख एक रदन हैं।।
गरुरासन प्रिय गरुर सो किमि विषधर निगलत हैं।
सिव-ग्रिव बसि किमि स्यान-पुञ्ज फनि विष उगिलत हैं।।
जो प्रिय कृष्न-महेस के सो किमि दूषन बस परैं।
भाल-अंक जे विधि रच्यौ बिना भोग कैसे टरैं।।७७।।

तुलसीदास,[1] रसखानि[2] आदि ने हरिशंकरी छन्दों में इसी प्रकार क्रमानुसार वर्णन किया है। इसलिए इन छन्दों को भी हरिहरात्मक कहना ही अधिक उपयुक्त एवं न्यायसंगत है। कवि की एतद्विषयक मूल प्रवृत्ति समग्र रचना से स्पष्ट ही है।

मीरांबाई

दरद दीवानी मीरा अपने गिरधर नागर के लिए पैरों में घुंघरू बाँधकर राजस्थान के मन्दिरों में नाचती घूमती थी। प्रेम की प्रगाढ़ता को देखकर जनसामान्य ने उन्हें उन मन्दिरों से इतना सनिविष्ट कर दिया कि वे मीरा-मन्दिर ही कहलाये जाने लगे, जबकि वास्तव में उनमें से कुछ तो मीरा-पूर्व की रचना है।[3] ऐसी तन्मय मीरां के इष्ट का जो स्वरूप प्रकट होता है, उसे दो वर्गों मे रख सकते है—हरि अविनाशी तथा अन्तर्यामी[4] और कृष्ण-विष्णु रूप। विष्णु रूप में वे अजामिल-गणिका आदि अधमों के उद्धारक और भव-तारक हैं। उन्होंने हिरण्याकश्यप का संहार कर प्रह्लाद, ग्राह का नाशकर गज और चीर बढाकर द्रौपदी की लज्जा का रक्षण किया। वे भक्तों के कल्याण तथा लीलावश विविध अवतार धारण करते हैं। कृष्ण-रूप में यमुना तट पर गायें चराते, वंशी बजाते और ब्रज-बालाओं को मुग्ध करते हैं। कटि में पीताम्बर, हृदय पर वैजयन्ती और हाथों में वंशीधारी को मीरां ने गोपाल, मुरारी, मुरलीधारी, नन्दकुमार, श्याम, गिरधर नागर आदि अभिधेयों से सम्बोधित किया है।

यहाँ पर उनका योगी रूप विशेष द्रष्टव्य है। इस रूप मे वे शरीर पर भस्म, गले में मृगछाला तथा सेली धारण किए रहस्योद्घाटन करते घर-घर घूम रहे हैं।

१. विनयपत्रिका, पद ४६
२ रसखानि ग्रन्थावली, सुजान रसखानि, छन्द २१०
३. देखिए—लेखक कृत 'इनके नाम मीरा मन्दिर क्यो ?' साप्ताहिक भारत, ७ मई, १९६७ ई०
४. मीरां पदावली, पद ६५, ८२, ८४, ९२, ९८, १०१ आदि,

मीरां ऐसे योगी-मुनि की दर्शनाभिलाषी हैं और उपालम्भ देती हैं कि वह एक बार तो हँसकर बोल दे।[१] उनकी कामना है—

म्हारे घर रमतो ही जोगिया तू आव।
कानाँ बिच कुंडल, गले बिच सेली, अंग भभूत रमाय॥
तुम देख्या विण कल न पड़त है, ग्रिह अंगणो न सुहाय।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो ण मोकूँ आय॥

—मीरां पदावली, पद ६८

जब वे योगी को जाने से रोकती हैं तो निवेदन करती हैं कि वह आकर ज्योति से ज्योति मिला दे (—ब्रह्म में आत्मा को लीन कर ले!)।[२] परन्तु वह न तो रुकता है और न वापिस आता है। वह तो 'आसण माड़ अडिग होय बैठा' है तो मीरां स्वयं भी योगिनी बन जाना चाहती हैं[३] और सन्देश भेजती हैं—

जोगिया ने कहज्यो जी आदेस।
माला मुदरा मेखला रे बाला खप्पर लूंगी हाथ॥
जोगणि होइ जग ढूंढसूं रे, म्हारा रावलियारी साथ॥

—मीरां पदावली, पद ११७

प्रो० शम्भूप्रसाद बहुगुणा की धारणा है कि भक्त योगियों और दार्शनिकों की चेतना तथा शब्दावली मीरां के प्राण स्वरों के कम्पन में विद्यमान है। मीरां ने जिस परमपद को अपने जीव का लक्ष्य बनाया है वह गौरव के अगम अगोचर गगन शिखर-ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाले बालक से भिन्न नहीं है। उसकी प्राप्ति के लिए वे सब कुछ करती हैं। शरीर और मन से योगिनी बनती हैं। सतगुरु से ज्ञान की गुटकी प्राप्त करती हैं और अपने मन जोगी को विषय-वासनाओं से हटाकर उसीके ध्यान में लगाती हैं। उसको अपनाने के लिए गगा इडा, यमुना पिंगला के तीर सुषुम्ना में पहुँचकर मध्य रात्रि में प्रेम नदी के तीर ज्योति के दर्शन की अभिलाषा करती हैं।[४]

परन्तु डॉ० प्रभात जोगी वाले कतिपय पदों को प्रणामी सम्प्रदाय की मीरांबाई तथा अन्य सन्तों का मानते हैं।[५] उनका कहना है कि ब्रज और द्वारका का निवास,

१. मीरां पदावली, पद ५८
२. वही, पद ४६
३. वही, पद ४९, ६४
४. मीरां स्मृति ग्रन्थ, पृ० ३०-३१
५. मीराबाई पृ० ३६३

रणछोड़जी, चतुर्भुजाजी तथा कुम्भश्याम के मन्दिरों की पूजा, जीवगोस्वामी, हितहरिवंश आदि के सम्पर्क मीरा के योग मत से प्रभावित होने का समर्थन नहीं, विरोध करते हैं। मीरां के समय में उत्तर के कृष्णोपासक प्रेमी भक्तों में नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव तनिक भी नही रहा था। अतः मीरा पर उसके प्रभाव की कल्पना निराधार है।[१] यदि मीरां के 'कतिपय पदों' को प्रक्षिप्त भी मान लें तो शेष के विषय में क्या धारणा बनाई जाये, इसका समाधान डॉ० प्रभात ने नही किया है। जहाँ तक वैष्णव मन्दिरों से मीरा के सम्पर्क का प्रश्न है, मीरां के वैष्णवत्व को नकारा नहीं जा सकता। देखना यही है कि क्या उन पर नाथ मत का प्रभाव है अथवा नही। क्योंकि वैष्णव होते हुए ऐसा सम्भव होना डॉ० प्रभात स्वयं स्वीकार करते हैं।[२] जहाँ तक तीसरे आक्षेप की बात है डॉ० प्रभात ने मीरा पर नाथमत के प्रभाव को स्वयं स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मीरां का सम्बन्ध चित्तौड़गढ़ के राज-मन्दिर के पुजारी देवाजी से दिखाया है जो कृष्णदेव पयहारी के शिष्य थे।[३] कृष्णदेव पयहारी तथा रामानन्द पर शैव प्रभाव स्पष्ट है। फिर मीरा पर उस प्रभाव की सम्भावना स्वीकार करने में कोई दुराग्रह क्यों ? डॉ० प्रभात ने यह भी स्वीकार किया है कि शैव सम्प्रदायों में 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' छाप के पदो मे टेक के रूप में 'भोलानाथ दिगम्बर हे दुख मोरा टारो रे' जैसी पंक्तियाँ जोड़ दी गई है।[४] उनके अनुसार तलवले मठ की प्रतियाँ ऐसी ही हैं। यदि मीरा कट्टर वैष्णव होती तो ऐसा होना अवश्य ही कठिन था। हम नही जानते कि तुलसी की गीतावली और विनयपत्रिका अथवा सूरदास के सूरसागर के पदो को किसी शैव सम्प्रदाय में इस प्रकार से ग्रहण किया गया हो, जबकि इनमें धार्मिक सहिष्णुता ही नही समन्वयात्मक प्रवृत्ति भी है। साम्प्रदायिक परिवर्तन तभी सम्भव है जब उस रचना में सम्प्रदाय विशेष का प्रभाव विद्यमान हो।

मीरां का परिवार भी धार्मिक रूप से सहिष्णु ही रहा है और उसमें शैव-वैष्णव दोनों प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। पति-कुल एकलिंगजी का भक्त था, परन्तु राणा कुम्भा ने कुम्भश्याम मन्दिर का निर्माण कराया और गीतगोविन्द की टीका रची थी। यह दोनों ही तथ्य उनके वैष्णवत्व को सिद्ध करते हैं। दूसरी ओर पितृ-कुल में जोधपुर

---

१. मीराबाई, पृ० ३६३, ३६४
२. वही, पृ० ३६३
३. वही, पृ० १६५-१६६
४ वही, पृ० २८३

के राष्ट्रकूटो में विजयसिंह परम वैष्णव और मानसिंह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[१] इस धार्मिक समन्वय का प्रभाव मीरां पर भी अवश्य होना चाहिए।

मीरां के समय राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव था। राजस्थानी इतिहास के मर्मज्ञ रामवल्लभ सोमानी लिखते हैं कि नाथ, सिद्ध और वीरों की उपासना यहाँ लम्बे समय से चल रही है। मध्यकाल तक नाथों का बड़ा जोर था। राजस्थान में गोरखनाथ को बहुत मान्यता दी गई है। संगीतराज में देव-पूजनार्थ अन्य देवताओं के साथ गोरखनाथ, मीननाथ, सिद्धनाथ आदि का उल्लेख है। अतएव पता चलता है कि महाराणा कुम्भा के शासनकाल में इनकी पूजा का अत्यधिक प्रचार था। मीरां चित्तौड़ में ही हुई थीं। उस पर इन सन्तों का बड़ा प्रभाव था।[२]

रसखानि

ऐसा समझा जाता है कि जब यह मक्का जा रहे थे, तो मार्ग में वृन्दावन के सौन्दर्य से इतने अभिभूत हुए कि वहीं विरम गये। वृन्दावन-निवास की परिणति विट्ठलनाथ का शिष्य हो जाने में हुई। दो सौ चौरासी वैष्णवन की वार्ता से भी उनका वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होना प्रमाणित होता है। परन्तु अन्य कृष्ण भक्तों की अपेक्षा इनमें समन्वयात्मक प्रवृत्ति अधिक है। रसखानि का अपने इष्ट के प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि वे कामना करते हैं—

जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुञ्ज-कुटीरन देहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका-अंक सँवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिंदी-कूल कदंब की डारन।।

कहते हैं इनके कृष्ण-भक्त हो जाने पर राजा से इन पर अभियोग चलाने के लिए कहा गया। उस समय इन्होंने अपने उपास्य पर उत्कट विश्वास प्रकट करते हुए उद्घोषित किया[३]—

कहा करै रसखानि को कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है माखन-चाखनहार।।

यद्यपि रसखानि ग्रन्थावली की भूमिका में डॉ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने यही लिखा है कि यह दोहा न प्रेमवाटिका में मिलता है, न इनके काव्य-संग्रह सुजान-रस-

---

१. मीरांबाई, पृ० १८१
२. वीरभूमि चित्तौड़, पृ० १५०-१५१
३. रसखानि ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ३०

खानि में, पर है प्रख्यात । इसमे यह स्पष्ट संकेत है कि किसी लबार या चुगलखोर ने इनकी कुछ चुगली अवश्य खाई थी (पृ० ३०), परन्तु आगे सुजान-रसखानि में इसे १९वें छन्द के रूप में दिया भी है ।

कृष्ण के ऐसे प्रगाढ़ भक्त रसखानि ने जहाँ 'रसखानि गुबिंदहि यो भजिये जिमि नागरि को चित गागर मैं'[1] कहकर कृष्ण-भक्ति का उद्बोधन करते हुए अन्य देवो के प्रति उदासीनता भी प्रकट की है[2] और कृष्ण को शिव के लिए अगम्य अथवा उनका भक्त बताया है,[3] वही बडे मनोयोग से शिव का स्तवन भी किया है—

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सौ धूलि लगावत हैं ।
चहुँ ओर जटा अँटकै लटकै फनि सो कफनी फहरावत है ।
रसखानि जेई चितवैं चित दै तिनके दुख दंद भजावत है ।
गजखाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं ।।

—सुजान रसखानि २११

हरिहर के एकात्म स्वरूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—एक ओर किरीट मुकुट सुशोभित है तो दूसरी ओर नाग । एक ओर से मुरली की ध्वनि आ रही है तो दूसरी ओर से नाद की । एक कन्धे पर पीताम्बर है तो दूसरे पर बाघम्बर । उनका श्याम तथा श्वेत वर्ण ऐसा लगता है मानो वे यमुना और गंगा के संगम में डुबकी लगाकर निकले हो ।[4] रसखानि के उपास्य कृष्ण है, इसलिए उन्होने शिव के साथ कृष्ण का ही समन्वय देखा है । यद्यपि शैव के साथ वैष्णव भाग में कृष्ण को समन्वित करके अपराजितपृच्छा (२१३।२८-२९) में कृष्णशकर के लक्षण दिए गए हैं परन्तु वहाँ शैव भाग में जटाभार, कर्ण में कुण्डल तथा हाथो में अक्षमाल व त्रिशूल और वैष्णव भाग में मुकुट, कर्ण मे मकर-कुण्डल तथा हाथों में चक्र व शंख बनाने का विधान है । जहाँ तक तक्षण अथवा आलेख्य-कला का प्रश्न है कोई भी ऐसी मूर्ति या चित्र अद्यावधि अज्ञात है जिसमे रस-

---

१. रसखानि ग्रन्थावली, सुजान रसखानि ८
२. वही, सुजान रसखानि ५
३. वही, सुजान रसखानि १२, १४; प्रकीर्णक १६
४ इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नाद से बाजत री ।
रसखानि पितबर एक कँधा पर एक बघबर राजत री ।
कोउ देखउ सगम लै बुड़की निकसे यहि भेख सों छाजत री ।।

—सुजान रसखानि २१०

खानि या अपराजितपृच्छावत् सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों। मूर्तियों की प्राचीनता के कारण उनमें वर्ण-भेद तो मिल नहीं पाता, हाँ अन्य लक्षण पृथक्-पृथक् मिल जाते हैं। चित्रों में श्याम तथा श्वेत का वर्ण-भेद अवश्य प्रदर्शित मिलता है, परन्तु अन्य समस्त लक्षण उनमें भी प्राप्त नहीं होते। सभी उदाहरणों के परखने से इतना अवश्य उपलब्ध होता है कि शिव तथा विष्णु के विविध स्वरूपों का समन्वय होते हुए भी वैष्णव भाग में कृष्ण का निरूपण अत्यन्त विरल है। एक अठारहवीं[1] तथा तीन प्रस्तुत शताब्दी के अत्याधुनिक चित्रों में शिव के साथ कृष्ण का समन्वय उपलब्ध होता है। प्रथम चित्र में वैष्णव भाग में मोरमुकुट निर्मित होने से उसे कृष्ण का स्वरूप कहा जा सकता है। प्रस्तुत दक्षिणार्ध में सिर पर मयूर-पुच्छ के अतिरिक्त कमल-कलिका, हाथों में वलयाकार चक्र व शङ्ख तथा ग्रीवा में अन्य आभूषणों के साथ वनमाल प्रदर्शित है। इसी प्रकार वामार्ध में जटामुकुट, चन्द्रकला, त्रिनेत्र, नाग, कपालमाल तथा हाथों में कपाल व डमरूयुक्त त्रिशूल है। दक्षिणार्ध में श्याम वर्ण तथा पीताम्बर और वामार्ध में श्वेत वर्ण तथा बाघम्बर स्पष्ट है। निरूपण की विशेषता यह है कि ग्रीवा से ऊपर का भाग संयुक्त होते हुए भी पृथक् है, क्योंकि आंशिक वामाभिमुख शिव का एक कान, दोनों नेत्र, नाक तथा मुख और दक्षिण पार्श्विक कृष्ण का एक कान, एक आँख, नाक तथा मुख प्रदर्शित है। अन्य तीन चित्रों में से एक श्रीनगर के एस० पी० एस० संग्रहालय में है और शेष दो 'कल्याण' में प्रकाशित हुए हैं।[2] इन तीनों में वैष्णव प्रतीक चक्र सुदर्शन होने के कारण उस अंश में कृष्ण का समन्वय सिद्ध होता है। डी० डी० कोसाम्बी ने सुदर्शनधारी एक ऐसे हरिहर चित्र को प्रकाशित किया है, जिसे बंगाल में कपड़ों पर छापा जाता है।[3] सम्भवतः यही कुछ ऐसे चित्र हैं, जिनके वैष्णव अंश में कृष्ण के लक्षण हैं। परन्तु समग्र रूपांकन की दृष्टि से वे भी रसखानि के वर्णन से साम्य नहीं रखते। इस प्रकार रसखानि की हरिहरात्मक कल्पना उनकी मौलिक कल्पना से अनुस्यूत है।

नरोत्तमदास, प्रिथीराज आदि अन्य भक्त कवियों के कृष्ण-काव्य में भी समन्वय ही परिलक्षित होता है। वैष्णव रचनाओं में शैव उपमानों का अभिग्रहण,[4] श्रीकृष्ण की

---

१. राष्ट्रीय संग्रहालय (दिल्ली), स० ६०. १६७३; १४७३-६३

२. कल्याण, वर्ष २५, अंक २ (फरवरी, १६५१) तथा वर्ष ४७, अंक १ (जनवरी, १६७३)

३. दि कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आफ ऐन्शियेन्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, पृ० २०५, चित्र १६

४. वेलि क्रिसन रुकमिणी री, छन्द ८४, ८७, ६० आदि

वर रूप में प्राप्त करने के लिए शिव-पार्वती की आराधना[1] तथा यशोदा को कृष्ण की प्राप्ति के मूल में शिव को सनिहित बताना[2] शैव-वैष्णव विद्वेष को हटाकर सौहार्द भाव लाने के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

इस प्रकार हम देखते है कि धार्मिक दृष्टि से कृष्ण-काव्य का स्वर विद्वेषात्मक न होकर समन्वयात्मक ही है। वैष्णव कवि होकर भी उन्होने शैव उपमानों तथा अत्याख्यानो का अधिग्रहण ही नहीं शिव का स्तवन तक किया है। समन्वय की अन्यतम स्थितियाँ वे हैं जहाँ शिव तथा विष्णु की अन्योन्याश्रित भक्ति, एक की उपासना से अन्य की प्राप्ति और हरिहर के एकात्म स्वरूप का स्तवन है।

● ●

१. वेलि क्रिसन रुकमिणी री, छन्द २६; सुदामाचरित, छन्द ६०
२. श्रीकृष्णगीतावली, पद १६

२

राम-भक्ति-काव्य और हरिहर

वैदिक साहित्य मे राम का नाम मिलते हुए भी उनका रामकथा के राम से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता है। प्राप्त रामकथाओं में वाल्मीकि की रामायण ही आदि-रचना है, जिसके आधार पर राम-काव्यो का विकास हुआ। इसके सभी काण्डो में राम को विष्णु का अवतार निरूपित किया गया है। वैदिक साहित्य में अवतारवाद शतपथ ब्राह्मण से मिलता है, जहाँ ब्रह्मा के मत्स्य, कूर्म और वाराह अवतारों का उल्लेख है। परन्तु डॉ० बुल्के ने वाल्मीकि रामायण के उन सभी अंशों का प्रक्षिप्त माना है, जिनमें राम का अवतरण स्वीकृत है।[१] शतपथ ब्राह्मण मे जो अवतार ब्रह्मा ने धारण किए वे आगे चलकर विष्णु पर आरोपित हो गए। अवतरण की इस भावना तथा राम के महामानवत्व का विकास होने के साथ वायु, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश आदि प्रारम्भिक पुराणो और महाभारत में दाशरथि राम भी अवतारों की सूची में सम्मिलित हो गए। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में अवतारो की सूची मे वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गव राम, दाशरथि राम तथा वासुदेव कृष्ण के नाम मिलते हैं। आगे चलकर राम की भक्ति-भावना को लेकर रामपूर्वतापनीय, रामउत्तरतापनीय आदि उपनिषदों की भी रचना हुई और अध्यात्मरामायण में राम का देवत्व चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। राम के इसी अवतार रूप को लेकर हिन्दी में विविध काव्यों की रचना हुई।

तुलसीदास

राम से विविध सम्बन्ध स्थापित करते हुए तुलसी ने उन्हे माता, पिता, गुरु, स्वामी, बन्धु और सखा के अतिरिक्त पुत्र तक मान लिया है। इसका कारण यही है कि तुलसी अपने को राम के प्रति ही विविध भावो से अर्पित दिखाना चाहते हैं। राम

---

१ रामकथा, पृ० १२२ १२२

उनके लिए स्वाति का जल हैं । तुलसी के नेत्रो मे राम का स्वरूप, कानो में रामकथा, मुख मे राम का नाम तथा हृदय में राम का साक्षात् निवास है । उन्हें जगत् मे जीवन का फल यही लगता है कि राम में ही मन रमण करता रहे । दोहावली, कवितावली आदि के कितने ही छन्दों में उन्होंने राम के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट की है । विनय-पत्रिका तो समग्र रूप से राम की सेवा में ही प्रस्तुत करने के लिए रची गई है । इसमे संसार की असारता का उद्घोष करते हुए उन्होने अपनी दयनीयता के कारण राम की भक्ति और शरण चाही है । प्रारम्भिक स्तुतियों में तो वे गणेश, सूर्य, शिव, देवी तथा गगा तक से राम-भक्ति की याचना कर रहे हैं । उन्होने माता-पिता, गुरु, शारदा, शुक, नारद तथा सन्तो से ही नहीं राम से भी राम की भक्ति ही माँगी है ।[1] कारण है राम का भक्त-प्रिय होना[2] अर्थात् राम का भक्त होने का अर्थ है राम का प्रिय हो जाना । इसीलिए तुलसीदास राम की भक्ति से रहित मनुष्य का जीवन व्यर्थ समझते हैं ।[3] ऐसा मनुष्य सीग-पूँछहीन पशु अथवा शव के समान है । उसका तो गर्भ मे ही नष्ट हो जाना अच्छा होता ।[4] राम के प्रति इस निष्ठा के कारण तुलसी को राम-बोला तक कहा जाने लगा था[5] और 'रा' पद के श्रवण मात्र से उनका शरीर रोमांचित हो उठता था ।[6] राम को स्मरण दिलाने के लिए वे सीता से कहते हैं कि मुझे मन, वचन तथा कर्म से स्वप्न में भी किसी अन्य का आश्रय नही है ।[7]

---

१. मातु-पिता-गुरु, गनपति, सारद । सिवा-समेत संभु सुक नारद ॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद-नेह-निबाहू ॥—विनयपत्रिका, पद ३६
सन्त सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बालबिनय सुनि कृपा करि राम चरन रति देहु ॥—मानस १।३ ख
यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
हेतु रहित अनुराग रामपद बाढै अनुदिन अधिकाई ॥—विनयपत्रिका, पद १०३

२. रामचरितमानस ७।८५ ख तथा ८६।८-१०

३. कवितावली ७।३८

४. वही ७।४० तथा मानस ६।३१।३-४, ७।७८ क

५. राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम ।—विनयपत्रिका, पद ७६

६. 'रा' पद मात्रसश्रवणतोऽप्युद्भूतरोमांकुर ।—रामू कृत प्रेमरामायण से उद्धृत, गोसाइँ तुलसीदास, पृ० ११८

७ तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की ।
—विनयपत्रिका, पद ४२

तुलसी ने अपने इष्टदेव राम को कई रूपों में प्रस्तुत किया है। सामान्य दृष्टि से वे दशरथ तथा कौशल्या के पुत्र है जो पिता के आदेश से वनवास को जाते है। पत्नी का हरण होने तथा भाई को शक्ति लगने पर वे दुखित होते हैं और युद्ध के समय नाग-पाश में आबद्ध हो जाते है। परन्तु यह राम का लौकिक स्वरूप है। उनके अन्य कई रूप निम्न प्रकार है :—

१ **उपेन्द्र** : शचीपति प्रियानुज (रा० ३।४।६)।

२. **विष्णु** (वि० ५४।३) : इस रूप मे वे इन्दिरापति (रा० ३।४।६), रमा-रमन (रा० ७।१४।१), वैकुण्ठ तथा क्षीर सागरवासी रा० १।१८५।२) और शेषशायी (वि० ५४।६) है। नारायण (वि० ६०।१; रा० ४।१।१०), माधव (वि० ९२।१, ११३।१), गोविन्द (क० ७।१३२), केशव (वि० ४६।५, १११। , ११२।१), मुरारी (गी० २।४।५', हरि (गी० ५।४४।८, ७।१९।५; वि० ११८।१, ११९।१) आदि उन्हीं के नाम हैं। वही राम के रूप में अवतरित हुए है (रा० १।५१।१, १।१२१।२; ब० रा० २७) और कौशल्या राम के इसी रूप की स्तुति करती हैं (रा० १।१९२। छन्द १-४)।

राम का विष्णुत्व भी दो रूप में मिलता है—

क. देवत्रयी के घटक : जब उन्हे ब्रह्मा तथा शिव के साथ जगत्-पालक के रूप में ग्रहण किया गया है।

ख. महाविष्णु : शिव और ब्रह्मा के साथ विष्णु का उल्लेख न करके उनके इसी रूप की महत्ता प्रकट की गई है (गी० १।७।३, ५।२२।२, रा० १। ३५५।५, ३।६।५)।

३. **निर्गुण** : राम अव्यक्त (वि० ५३।३; रा० ३।३२। छन्द २), अरूप (रा० १।२२।१, १।१४१।१), अलख (रा० १।३४१।६, २।९३।७), निरंजन (रा० १।१९८; वि० ५६।५), निराकार (रा० ७।७२।६), अखण्ड (रा० १।१४४।४, ३।१३।१२, ६।६१।१८, ६।१११।१५), अविनाशी (रा० १। १२०।६, ३।३०।१७, गी० ७।३८।१), निर्गुण (रा० १।२०५; वि० ५०।८) आदि हैं।

४. **सगुण** : इस रूप में राम दीनदयालु (रा० ६।७।१; वि० १३९।१; गी० ५।३८।५; क० ७।७), दीनबन्धु (रा० १।२११; वि० ८१।१; गी० १। ९२।२; क० ७।२१; दो० १७९), भक्तवत्सल (रा० १।१४६।८, ३।४। छन्द १) पतितपावन (वि० ७७।२, १६० १, २१० १ २५२ ३ गी०

३।१७।२, ५।४३।३), देव-मुनि-सन्त-गो-ब्राह्मण आदि के पालक-रक्षक-निस्तारक और आनन्द-मंगलदायक (रा० १।१८६।छन्द १, १।२८५।१-२), व्यापक रूप से सर्वरक्षक, सर्वोपकारी, कल्याणकारी, मंगलमूर्ति (रा० २।१२५।५; वि० ५३।६, ५५।३, १३५।३) आदि हैं।

५ **संसार विटप रूप** : रामचरितमानस (७।१३। छन्द ५) में वेदो ने राम की स्तुति इसी रूप मे की है।

६. **विराट् स्वरूप** : यह दो प्रकार से वर्णित है—

क विश्व रूप : इसका निरूपण मन्दोदरी ने रावण के प्रति किया है (रा० ६।१४ से १५)।

ख. राम मे समस्त ब्रह्माण्ड का समाहार : काकभुशुण्डि को राम के इसी रूप का दर्शन होता है (रा० ७।८०।३ से ७।८१ तथा वि० ५४।२-४)।

७ **ब्रह्म रूप** : (रा० १।५१। छन्द, १।१०८।५, १।११६।८, १।१२०।६, १।१६८, २।९३।७, २।१०६।८, २।१२३।२, ३।७।३, ३।३२। छन्द ३; ४।२८।७; वि० ४३।१, ५०।८, ५२।७, ५६।३, ७९।३; गी० १।२५।१, १।६१।४, ७।३८।१; दो० ३१ आदि)।

तुलसी ने जहाँ एक ओर राम के प्रति एकान्त अनन्यता प्रकट की है, वही को भी परम हितैषी, गुरु तथा पिता माना है।[१] उन्होंने कितने ही स्थलो पर की महत्ता, कृपालुता तथा शरणागतवत्सलता का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। -भक्ति का प्रबोधन ही नही उन्होंने काशी-वास तथा कल्याण के लिए शिव से कामना ी है।[२] तुलसी रामकथा का वर्णन शिव-पार्वती के स्मरण और उनसे प्रसाद र कर रहे है—

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ।।

—मानस १।१५।८

रामचरितमानस में कथा-वर्णन के तत्काल पूर्व और भूमिका के नितान्त अन्त की ख्याति का वर्णन करने के पूर्व तथा मानस-रूपक की परिसमाप्ति पर कथा

रामचरितमानस १।१५।३-४
तथा—मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानियै। - कवितावली ७।१६८

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
संकर निज पुर राखियै, चितै सुलोचन कोर।।—दोहावली २३९

तथा—कवितावली ७।१५७, १६६, १६७, १६८ आदि; विनयपत्रिका १०, १[…] आदि,

आरम्भ करने के समय उन्होंने बार-बार शिव-पार्वती का स्मरण किया है।[1] वे शिव-पार्वती की भक्ति को राम और सीता की भक्ति के समकक्ष ही रखते हैं—

सेये सीता-राम नहिं भजे न संकर गौरि।
जनम गँवायो बादिही परत पराई पौरि ।।—दोहावली ९६

दक्ष-यज्ञ में शिव का भाग न देखकर सती कहती है—

सन्त सभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा।
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ।।

- मानस १।६४।३-५

तुलसी के राम-काव्य में शिव का आगमन आकस्मिक या अनायास रूप से न होकर सोद्देश्य एवं सप्रयास है। शैव प्रभाव की उस परिव्याप्ति को कई वर्गों मे रख कर देखा जा सकता है।

तुलसी-साहित्य पर शैव प्रभाव

१. शैव-वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन

जिस प्रकार कट्टर शिव-भक्त से शैव ग्रन्थों की अपेक्षा की जाती है, उसी प्रकार कट्टर विष्णु-भक्त से वैष्णव ग्रन्थों के ही प्रणयन की सम्भावना की जा सकती है। परन्तु तुलसीदास ने जानकीमंगल के साथ पार्वतीमगल की रचना करके अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया है।[2] पार्वतीमंगल एक खण्डकाव्य है जिसमें हिमवान के यहाँ पार्वती के जन्म से लेकर शिव से उनके परिणय तक की कथा है। यद्यपि तुलसीदास शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन पहले ही रामचरितमानस मे कर चुके थे, परन्तु किसी स्वतन्त्र शैव रचना का अभाव उन्हे खटक रहा था। जानकीमंगल की रचना वे पहले ही स्वतन्त्र रूप से कर चुके थे, अब उसके समानान्तर पार्वतीमंगल का आख्यान उन्हें उपयुक्त लगा। पार्वतीमगल मे उन्होने तपस्यारत पार्वती की परीक्षा स्वयं शिव से कराई है, जो बटु वेष मे आते है। मानस में परीक्षा के लिए सप्तर्षि गए हैं। पार्वतीमगल में कवि को यह प्रेरणा कुमारसम्भव से मिली होगी, जहाँ, शिव स्वयं वृद्ध रूप में जाते हैं। पार्वती के प्रेम की परीक्षा स्वय न करके अन्य से कराना अधिक

---

१. रामचरितमानस १।३४।३; १।३५, १।४३

२. नागरी प्रचारिणी सभा की १९०९-१०-११ की खोज रिपोर्ट में एक मगल-रामायण का भी उल्लेख है जिसके १९० छन्दों में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है। डॉ० रामकुमार वर्मा (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३६८) आदि ने इसे पार्वतीमगल से भिन्न माना है।

उपयुक्त भी नहीं लगता । प्रेमी की परीक्षा प्रेमी को ही लेनी चाहिए । मानस में पार्वती सप्तर्षियों से खुलकर वार्तालाप करती हैं, जबकि यहाँ उन्होंने सखी के माध्यम से उत्तर दिया है । वटुक रूप शिव का कथन समाप्त होने पर पार्वती कहती हैं—

बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तन थर थर ।
आलि बिदा करु बटुहि बेगि बड बरबर ।।—६२
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहिं ।
बकि जनि उठहिं बहोरि कुजुगुति सँवारहिं ।।—६६

फिर पार्वती के—

जनि कहहि कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की ।
सिब साधु निंदकु मद अति जोउ सुनै सोउ बड पातकी ।।—८

कहने पर शिव साक्षात् प्रकट हो जाते है । पार्वती को और क्या चाहिए, उनका मनोरथ सफल हो गया । शरीर में उत्साह तथा हर्ष के सचार को देखकर शिव कहते है—

हमहिं आजु लगि कनउड काहुँ न कीन्हेउ ।
पारबती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ।।—७२

मानस में शिव अमंगल स्वरूप में ही पार्वती का वरण करने जाते है, जहाँ उन्हें देखकर बच्चे भयभीत होते हैं । परन्तु पार्वतीमगल में उन्होंने गणों के साथ सुन्दर मगलमय वेष धारण किया है—

लखि लौकिक गति सभु जानि बड़ सोहर ।
भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर ।।—१११
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन ।
रोम रोम नर उदित रूपमय पूषन ।।—११२
गन भये मंगल वेष मदनमन मोहन ।
सुनत चले हियँ हरषि नारि नर जोहन ।।—११३
सभु सरद राकेस नखत गन सुर गन ।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन ।।—११४

मानस में शिव की कुरूपता के कारण नारद को आना पड़ता है जो पार्वती के माता-पिता को शिव की यथार्थता बताते है कि वे परमेश्वर हैं और पार्वती के पूर्व-जन्म में भी वही उनके पति थे । इस प्रकार नारद से प्रबोधित होने पर शिव-पार्वती का विवाह होता है । पार्वतीमंगल में नारद के आगमन की कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाज और माता-पिता की कन्या सम्बन्धी चिन्ताओं तथा विवाहित कन्या की विदाई आदि का वर्णन इसमें जिस सहृदयतापूर्वक हुआ है, उससे कवि की रचना-विषयक निष्ठा एवं मौलिकता का ही परिचय मिलता है।

तुलसी-दल के लेखक इसकी रचना का उद्देश्य शैव-वैष्णव समन्वय न मानकर कहते है कि ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणो मे वर्णित शिव तथा उमा की कथा से गोस्वामी जी विशेष रूप से प्रभावित थे। यही कारण है कि पार्वतीमगल तथा रामँ-चरितमानस दोनो में स्वतन्त्र रूप से गोस्वामी जी ने इस कथा का सुन्दर चित्रण किया है।[1] परन्तु डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सद्गुरुशरण अवस्थी,[2] डॉ० विमलकुमार जैन[3] आदि इसकी रचना में शैव-वैष्णव समन्वय की भावना को भी निहित मानते हैं।

२. शैव स्तुतियाँ तथा मंगलाचरण

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण रखने की परम्परा है; जिसमें अपने इष्टदेव को स्मरण कर उनसे कल्याण-कामना की जाती है। तुलसी साहित्य मे मंगलाचरण तथा स्तुतियो का निम्न रूप उपलब्ध होता है—

१. रामललानहछू

शारदा तथा गणेश के साथ गौरी से विनती।[4]

२. जानकीमंगल

गणेश तथा शिव पार्वती से करबद्ध प्रार्थना।[5]

---

१. देखिए—पृ० ३७-३८

२. तुलसी के चार दल, पृ० १६७, २०२

३. तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० १५१-१५२

४. आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो॥—१

५. गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकवि श्रुति सन्त सरल मति॥
हाथ जोरि करि विनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर विवाहु जथामति गावौं॥—१-२

३. पार्वतीमंगल

यह एक शैव रचना है, परन्तु तुलसीदास ने इसके प्रारम्भ में सीता तथा धनुर्धारी राम का स्मरण किया है।[१]

४. रामाज्ञाप्रश्न

इसके प्रारम्भ में सरस्वती तथा गणेश के साथ सूर्य, शिव, पार्वती और लक्ष्मी-नारायण का स्मरण करने के अतिरिक्त[२] ग्रन्थ के मध्य तीन स्थलों पर शिव-पार्वती के स्मरण को मंगलदायक कहा है—

गिरा गौरि गुरु, गनप हर मंगल मंगल मूल ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल ।।—१।१।३
रमा रमापति गौरि हर सीता राम सनेहु ।
दंपति हित संपति सकल, सगुन सुमंगल गेहु ।।—७।४।५
तथा—गुरु गनेस हर गौरि सिय रामलखन हनुमान ।
तुलसी सादर सुमिरि सब सगुन बिचार बिधान ।।—७।७।४

५. दोहावली

छन्दों के प्राप्त क्रम-विधान के अन्तर्गत इसके प्रारम्भ में तो नहीं परन्तु मध्य में एक स्थल पर राम और सीता के साथ शिव और पार्वती की भक्ति का भी प्रबोधन है।[३] एक सोरठे में काशी-निवास का महत्व[४] तथा एक सोरठे और दो दोहों में शिव से प्रार्थना की गई है।[५]

---

१. बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि ।
हृदय आनि सिय-राम धरे धनु भाथहि ।।—१

२. बानि बिनायकु अंब रवि गुरु हर रमा रमेस ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देस बिदेस ।।—१।१।१

३. सेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरि ।
जनम गँवायो बादिहीं परत पराई पौरि ।।—६६

४. मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।।—२३७

५. जरत सकल सुर बृन्द विषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मन्द को कृपालु संकर सरिस ।।—२३८
बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिये, चितै सुलोचन कोर ।।—२३९
अपनी बीसीं आपुहीं पुरिहिं लगाये हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ।।—२४०

६. कवितावली

इसका प्रारम्भ तो राम के बाल स्वरूप की झाँकी से होता है, परन्तु उत्तर-काण्ड सम्पूर्ण रूप में स्तुतियों तथा आत्मपरिचय से युक्त है। इस काण्ड के प्रारम्भ में राम की कृपालुता, राम और राम-भक्ति की महत्ता, राम के प्रति निवेदन, राम-नाम की महत्ता तथा नाम मे विश्वास, राम-प्रेम की प्रधानता, राम-भक्ति की याचना, कवि-वर्णन आदि के साथ सीता वट, चित्रकूट, प्रयाग तथा गंगा का वर्णन है। १४९वें छन्द से आगे चौबीस छन्दो में शिव के स्वरूप, उनकी कृपालुता, आशुतोष प्रकृति तथा महानता का गुणगान करने के अनन्तर उनसे कल्याण-कामना की गई है। चार कवित्तों में काशी की महामारी की भीषणता दिखाते हुए शिव से और फिर दो कवित्तो मे जगज्जननी पार्वती से उसके शमन हेतु प्रार्थना है। सम्भवतः कलि-कुचाल तथा काशी की महामारी के कारण यहाँ कवि को शिव का विकराल रूप ही प्रिय है। उनके अर्धनारीश्वर स्वरूप का स्मरण करते हुए कहा गया है—

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुअंगवर।
मुण्डमाल, विधु बाल भाल, डमरू, कपालु कर।
विबुध वृन्द नवकुमुद चन्द, सुखकन्द सूलधर।
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, विष भोजन, भव भयहरन।
कह तुलसीदासु सेवतु सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥—१४९

शिव आशुतोष ऐसे हैं कि जाने या अनजाने मे भी बेल और धतूरे के दो पत्ते अथवा आक के दो फूल मात्र से प्रसन्न होकर 'सुरेसहू की सम्पदा सुभाय सौं' दे देते हैं। ब्रह्मा इससे तंग आकर पार्वती से कहते हैं—

बिषु पावकु ब्याल कराल गरे, सरनागत तो तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बेताल सखा, भव नामु, दले पल में भव के भय गाढ़े।
तुलसी सुदरिद्र सिरोमनि, सो सुमिरे दुख दारिद होंहि न ठाढ़े।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन नागे के आगे हैं मागने बाढ़े ॥—१५४
नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू, जनि मागिये थोरो।
राँकनि नाकम रीझि करै तुलसी जग जो जुरें जाचक जोरो।

उन्हें कठिनाई यह है कि—

नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकहि नेकु निहोरो।

इसलिए हे गिरिजा! अपने पति को समझा लो, यह बड़ा बावला तथा भोला दानी है (—कवित्त १५३)।

ऐसे अमितदानी से क्या वस्तु दुर्लभ है और फिर जब उनसे कोई सम्बन्ध भी हो तब अति उत्तमता । इसीलिए तुलसी का कहना है—

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
अपनो समाज सिव आपु नीकें जानिये ।
नाना वेष, बाहन, विभूषन, बसन, बास,
खानु-पान, बलि-पूजा बिधि को बखानिये ।
राम के गुलामनि की रीति, प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह, सबही को सनमानिये ।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये ।।—१६८

फिर ऐसे आशुतोष और कृपालु महामारी से रक्षा क्यो नही करेंगे । कवि उद्विग्न होकर कह उठता है—

गौरीनाथ भोरानाथ, भवत भवानीनाथ !
विस्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की ।
सकर-से नर, गिरिजा-सी नारी कासीवासी,
वेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की ।
छमुख-गनेस तें महेस के पियारे लोग
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की ।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघार डीठि भाल की ।।—१६९

इस प्रकार कवितावली के शिव-स्तवन में किसी प्रकार की कृत्रिमता न होकर पूर्ण आत्मीयता है । वह कलिकाल से ग्रसित एक भक्त जन का हृदयोद्गार है जो अपने याचना सलिल से इष्टदेव को द्रवित कर देने के लिए पर्याप्त है ।

७. विनयपत्रिका

यह कवि के दैन्य एव राम के प्रति निवेदन का विवरण है जिसे कवि ने एक पत्रिका के रूप में अपने इष्टदेव के पास भेजा है । प्राचीनकाल मे राजा के पास सन्देश भेजने के पूर्व दरबारियों को प्रसन्न करना आवश्यक होता था । उसी रूप में तुलसी ने राम के पास अपनी विनयपत्रिका पहुँचाने के लिए प्रारम्भ में विविध देवों का स्तवन किया है । स्तुति के इन तिरसठ पदों में पहले तो स्मार्त देवों में से गणेश, सूर्य, शिव और देवी की स्तुति है और फिर क्रमशः गगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान

लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, राम, श्रीरंग, नर-नारायण तथा बिन्दुमाधव का वर्णन तथा उनका स्तवन है। गणेश, सूर्य तथा देवी की प्रत्येक और गंगा की दो स्तुतियों में उनसे राम-भक्ति की याचना है। गणेश तथा सूर्य के लिए एक-एक पद की रचना कर तुलसी ने बारह शैव पदों का प्रणयन किया है। संख्या की दृष्टि से इतने पद केवल हनुमान (पदांक २५ से ३६) को मिले हैं, जिन्हें तुलसी ने रुद्रावतार ही माना है और राम के लिए पूरी विनयपत्रिका होते हुए भी यहाँ पर केवल चौदह (पदांक ४३ से ५६) पद ही रखे हैं। इनमें से एक (४९वाँ) पद तो शिव और विष्णु के समन्वित हरिहरात्मक स्वरूप का स्तवन है, जिसे हरिशंकरी पद कहा जाता है। प्रस्तुत अध्याय के अन्त में इसका विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। इस प्रकार रामपरक स्तोत्रों की संख्या भी तेरह ही रह जाती है अर्थात् शिवपरक स्तोत्रों से केवल एक अधिक।

कवितावली के समान यहाँ भी कवि को शिव का रौद्र स्वरूप ही रुचिकर है। यद्यपि कई स्तोत्रों में शिव की आशुतोष प्रकृति का वर्णन है, परन्तु उनके कामारि, त्रिपुरारि, श्मशानवासी, नाग और मुण्डमालधारी स्वरूप को कवि विस्मृत नहीं कर पाता है। यही कारण है कि एक स्तोत्र में तो शिव के भैरव रूप का स्तवन है (पदांक ११)। पञ्चायतन के अन्य घटक गणेश, सूर्य तथा देवी के समान छः पदों में तो शिव से भी राम-भक्ति की कामना है,[१] पर शेष में तुलसी ने उनके अवढरदान को विशेष महत्व दिया है। 'दानी कहुँ संकर सम नाहीं' न होने के कारण 'को जाँचिये संभु तजि आन' तथा 'जाँचिये गिरिजापति कासी, जासु भवन अनिमादिक दासी।' दान में वे विष्णु से भी महान् हैं—

> जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
> वेद-विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं॥—४-३

इसीलिए विवश होकर ब्रह्मा को जगज्जननी भवानी से निवेदन करना पड़ता है कि—

---

१. देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥-३।४
तुलसिदास जाचक जस गावै। बिमल भगति रघुपति की पावै ॥-६।५
देहु कामि-रिपु राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति ॥-७।५
तुलसिदास हरिचरन-कमल बर, देहु भगति अविनासी ॥-८।५
देहि कामारि! श्रीराम-पद-पंकजे भक्ति अनवरत गत भेद माया ॥-१०।९
करि कृपा हरिय भ्रम-फंदकाम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥-१४।९

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बडो दिन देत दये बिनु, वेद बडाई भानी ।
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन रकन कौ नाक सँवारत, हौ आयो नकबानी ।
दुख-दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौपिये औरहिं, भीख भली मै जानी ॥—पद ५

एक स्तोत्र मे कवि ने शिव-भक्ति के लिए उद्बोधित किया है और अन्य मे वह शिव के शरणागत है—

शकर शप्रद, सज्जनानन्दद, शैल-कन्या-वर, परमरम्यं ।
काम-मद-मोचन, तामरस-लोचन, वामदेव भजे भावगम्यं ।
तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घट-सम्भव, सर्वग, सर्वसौभाग्यमूल ।
प्रचुर-भव-भजन, प्रणत-जन-रजन, दास तुलसी शरण सानुकूल ॥
—१२।१।५

तुलसी द्वारा शैव-वैष्णव समन्वय का प्रयास करने से काशी के शैव उनसे असन्तुष्ट होकर उनका विरोध करने लगे थे । शैवो की इस यातना से रक्षा के लिए तुलसी शिव से ही प्रार्थना करते हैं (पद ८) ।

प्रस्तुत शैव स्तोत्रों में शिव को अवढरदानी के अतिरिक्त काशीपति (६।१, ९।५), देवाधिदेव (९।४), राम-भक्ति प्रदायक (९।२), अघोर के साथ परम रम्य (१२।१) तथा विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्द (१२।२) कहा गया है । इतना ही नहीं उनकी भक्ति से ससार के समस्त पदार्थ सुलभ हो जाते है (६।३) ।

ग्यारहवीं स्तुति में शिव को 'भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र' कहा जाना महत्वपूर्ण है । इसका अर्थ है तुलसी भैरव और राम में कोई अन्तर नहीं समझ रहे हैं । इस सम्बन्ध मे देवपाणि (नौगॉव, असम) से प्राप्त नवी शताब्दी तथा विरूपाक्ष मन्दिर (पट्टडकल) की आठवीं शताब्दी की दो हरिहर मूर्तियों की ओर अनायास ध्यान आकर्षित हो जाता है । दोनों मूर्तियाँ स्थानक हैं जिनमें से प्रथम के वाम पार्श्व में गरुड़ तथा पद्म और दक्षिण पार्श्व में वृषभ स्पष्ट है । मुखाकृति पूर्णतया अघोर एव विकराल है (गौहाटी सग्रहालय, स० २४५४) । दूसरी मूर्ति के एक बाएँ हाथ में गदा तथा एक दाएँ हाथ में त्रिशूल के साथ कटिहस्त और त्रिभंगी मुद्रा प्रदर्शित है । मुख

पर स्मित भाव होते हुए भी एक दाएँ हाथ मे मुण्ड का होना विशिष्ट लक्षण है । दोनों ही मूर्तियाँ हरिहरात्मक है । राम-रूपी रुद्र से तुलसी का बन्धु, गुरु, जनक, जननी, विधाता के विविध सम्बन्ध स्थापित करना भी महत्वपूर्ण है ।

८ रामचरितमानस

तुलसी की सर्वप्रमुख कृति यही है । काण्डों में विभाजित होने के कारण कवि को प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण का अवसर प्राप्त हो गया है । प्रत्येक काण्ड में शैव-वैष्णव स्तुति की स्थिति निम्न प्रकार है—

क. बालकाण्ड : एक श्लोक में वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती तथा विघ्न-विनाशक गणेश का स्तवन करके अगले श्लोक मे श्रद्धा विश्वास रूपी भवानी-शकर की वन्दना है । फिर तीन श्लोको में क्रमशः शकर रूप गुरु, वाल्मीकि तथा हनुमान और रामवल्लभा सीता के बाद अखिल ब्रह्माण्ड नायक राम की वन्दना है ।

संस्कृत स्तोत्रावली के बाद पुनः भाषा के सोरठों म प्रार्थना है जिनमें से तीसरे सोरठे में क्षीरशायी भगवान् विष्णु से हृदय में निवास की कामना करके शिव से अनुकम्पा की याचना है—

कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन, करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा ! मर्दन मयन ।।—१।४

कृपा वही कर सकता है जो शक्तिसम्पन्न हो, सो शिव कामदेव का नाश करने वाले हैं । साथ ही वे कृपालु हैं और दोनों पर उनका स्नेह है, फिर कृपा-कटाक्ष प्राप्त हो ही जाएगा ।

ख. अयोध्याकाण्ड : यहाँ वशस्थ तथा इन्द्रवज्रा दो श्लोकों के पूर्व प्रारम्भ में एक शार्दूलविक्रीडित वृत्त में पार्श्व में पार्वती, मस्तक पर गंगा, ललाट पर चन्द्रमा, कण्ठ में विष, हृदय पर नागधारी भस्म विभूषित तथा चन्द्रवत् शुक्ल वर्ण, सर्वेश, सर्वान्तर्यामी, महादेव शिव शकर से रक्षा की प्रार्थना है । आकार की दृष्टि से शैव और वैष्णव स्तुतियाँ चार-चार पंक्तियो मे ही हैं और क्रम-विधान की दृष्टि से शैव स्तुति पहले रखना महत्वपूर्ण है ।

ग. अरण्यकाण्ड : यहाँ भी राम के पूर्व धर्म रूप वृक्ष के मूल, विवेक रूप समुद्र को आनन्ददायक पूर्ण चन्द्र, वैराग्य रूप कमल को प्रस्फुटित करने हेतु सूर्य, पाप रूप घोर अन्धकार के नाशक, मोह रूप मेघसमूह को विच्छिन्न करने हेतु पवन सदृश,

त्रितापहारी, कल्याणकारी, ब्रह्मकुल-कलक-नाशक, रामचन्द्र के प्रिय, भगवान् शकर का स्तवन है । यहाँ उन्हें 'श्रीरामभूपप्रिय' कहना उल्लेख्य है । राम राजा है और उन्हे शिव प्रिय हैं । आकार की दृष्टि से शैव और वैष्णव दोनों ही स्तुतियाँ एक-एक शार्दूलविक्रीडित छन्द मे हैं ।

घ. किष्किन्धाकाण्ड : यहाँ संस्कृत के दो छन्दो में केवल राम-लक्ष्मण की स्तुति करके शैव स्तुति भाषा के दो सोरठों में हैं । पहले सोरठे में मोक्षदायक, ज्ञान-खानि तथा पाप-विनाशक काशी में रहने के लिए प्रबोधन है, जहाँ शिव और पार्वती निवास करते हैं और दूसरे सोरठे में तुलसी ने अत्यन्त दीनतापूर्वक स्वय को फटकारा है कि—

जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल सकर सरिस ।।

यह द्रष्टव्य है कि किसी भी वैष्णव स्तुति में कोई कामना न करके पहली मे राम-लक्ष्मण को भक्तिप्रदायक तथा दूसरी मे राम-नाम के प्रेमियो को महान् कहा है । इस प्रकार शैव स्तुति का महत्व अधिक है जहाँ स्वयं को काशी-वास तथा शिव-भक्ति के लिए प्रबोधन है ।

ङ. लङ्काकाण्ड . स्रग्धरा वृत्त की पहली वैष्णव स्तुति में राम की वन्दना के अनन्तर शार्दूलविक्रीडित छन्द में काशी के अधिपति, गुणसागर, जगतवन्द्य, पार्वती के पति, काम-विनाशक भगवान् शिव को नमन किया गया है जो शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वर्ण हैं और बाघम्बर तथा काल-कराल सर्पों के भूषण धारण किए हैं । साथ ही जिन्हे गगा और चन्द्रमा प्रिय हैं । अगले छन्द में प्रार्थना है कि—

यो ददाति सता शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु माम् ।।

अर्थात् सज्जनो को दुर्लभ कैवल्य तथा खलों को दण्ड देने वाले भगवान् शकर मेरे कल्याण का विस्तार करें ।

च. उत्तरकाण्ड : प्रथम स्रग्धरा वृत्त में राम को नमन करके तृतीय वृत्त में शिव का स्तवन है जो कुन्द, इन्दु तथा शङ्ख के समान गौर वर्ण, जगज्जननी पार्वती के पति, अभीष्ट सिद्धिदायक, काम-नाशक, कमलनेत्र तथा कारुणीक हैं ।

मानस-मंगलाचरण की इन शैव-वैष्णव स्तुतियो को एक तालिका के रूप मे निम्न प्रकार रखा जा सकता है—

स्थिति	भाषा	बालकाण्ड	अयोध्या	अरण्य	किष्किन्धा	लंका	उत्तर	निष्कर्ष
प्रथम	संस्कृत	शिव-पार्वती	शिव	शिव	लक्ष्मण युक्त राम	राम	राम	३ शैव ३ वैष्णव
	हिन्दी	राम	×	×	×	×	×	१ वैष्णव
द्वितीय	संस्कृत	राम	राम	सीता तथा लक्ष्मण युक्त राम	×	शिव	शिव	२ शैव ३ वैष्णव
	हिन्दी	शिव	×	×	शिव	×	×	२ शैव

तालिका १ : रामचरितमानस के शैव-वैष्णव स्तुतियुक्त काण्डों में स्तुतियों का स्थिति-क्रम ।

इसी प्रकार की एक तालिका शैव-वैष्णव स्तुतियों के छन्दों तथा पंक्तियों की संख्या के विषय में भी निम्न रूप में बनाई जा सकती है—

			बालकाण्ड	अयोध्या	अरण्य	किष्किन्धा	लंका	उत्तर	कुल
संस्कृत की स्तुति	छन्द संख्या	शैव	१	१	१	×	२	१	६ — ३
		वैष्णव	१	२	१	२	१	२	९ + ३
	पंक्ति संख्या	शैव	२	४	४	×	६	२	१८ — १२
		वैष्णव	४	४	४	८	४	६	३० + १२

		बालकाण्ड	अयोध्या	अरण्य	किष्किन्धा	लंका	उत्तर	कुल
	शैव	१	×	×	२	×	×	३+१
ा	वैष्णव	१	×	×	×	१	×	२−१
	शैव	२	×	×	४	×	×	६+२
ा	वैष्णव	२	×	×	×	२	×	४−२

ा २ : रामचरितमानस के जिन काण्डों के प्रारम्भ मे शैव-वैष्णव मंगलाचरण एक साथ हैं, उनके छन्दों तथा पक्तियो की संख्या ।

ली तालिका से ज्ञात होता है कि अरण्यकाण्ड तक सस्कृत में पहले शैव र फिर वैष्णव, परन्तु किष्किन्धाकाण्ड से इस क्रम मे विपर्यय हो जाता है आगे निरन्तर वैष्णव स्तुति प्रथम तथा शैव स्तुति द्वितीय स्थान पर मिलती तथ्य यह है कि सुन्दरकाण्ड में शिव-स्तवन का नितान्त अभाव है और वहाँ ः हनुमान की स्तुति है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि मानस का होने के कारण प्रारम्भिक काण्डो मे शैव स्तुति पहले है, परन्तु किष्किन्धा ावतार हनुमान के सेवक भाव से आ जाने के कारण शैव स्तुतियो को द्वितीय गया है। सुन्दरकाण्ड मे शिव के स्थान पर हनुमान की स्तुति का भी यही ।' वहाँ पर हनुमत् स्तवन मे कहा है—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

ाँ हनुमान के लिए जिन विशेषणो का प्रयोग हुआ है, वे सब शिव की भी हैं। हनुमान वानराधीश हैं तो शिव पशुपति। हनुमान को रुद्रावतार पिछले मान लिया गया है। समुद्र-लघन के समय अगद हनुमान से कहते है— लगि तव अवतारा।' जिसे सुनते ही हनुमान को अपने यथार्थ स्वरूप का ना है। सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान हैं ही, इसलिए यहाँ पर तुलसी ने शैव-स्तुति के स्थानापन्न रूप में ही रखी है। क्रम-विधान की एक सम्भावना

पीयूष, किष्किन्धाकाण्ड, पृ० ६

यह भी है कि शैव-वैष्णव समन्वय की दृष्टि से तीन स्थानों पर शैव स्तुति पहले दे दी (बाल, अयोध्या और अरण्य काण्ड) तथा तीन स्थानों पर वैष्णव स्तुति को प्रथम स्थान दे दिया (किष्किन्धा, लका, उत्तर)।

मानस के मगलाचरणो की शैव स्तुतियो की महत्ता के विषय मे स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती की धारणा है कि शिव का स्तवन बालकाण्ड मे विश्वास रूप तथा गुरु रूप मे, अयोध्याकाण्ड मे विश्वास रूप मे और अरण्यकाण्ड मे गुरु रूप से किया गया है। किष्किन्धाकाण्ड मे सस्कृत श्लोको मे उनका मगल नही किया गया पर राम नाम से मुक्तिदायक होने के कारण मगलाचरण के दूसरे सोरठे मे काशी के सम्बन्ध मे उनका मगल किया और सुन्दरकाण्ड मे उनके अवतार रूप की वन्दना है। इस तरह सातो काण्डो मे उनका मगल करके बताया है कि राम-भक्ति के इच्छुक को शिव-भक्ति करना आवश्यक है।[१]

काण्डो की मध्यवर्ती वैष्णव स्तुतियो के समान उत्तरकाण्ड की एक शैव स्तुति विशेष महत्व रखती है। पूर्व-जन्म मे भुशुण्डि कट्टर शैव होकर वैष्णवो से ईर्ष्या भाव रखते थे। एक बार जब उनके सहिष्णु गुरु ने शिव को राम-भक्त बताया तो भुशुण्डि का हृदय क्रोधाग्नि से दग्ध हो गया। एक दिन शिव मन्दिर में नाम-जाप करते हुए गुरु के आने पर भुशुण्डि ने उनका सत्कार नही किया। गुरु की इस अवमानना के कारण शिव ने आकाशवाणी से भुशुण्डि को शाप दे दिया। दारुण शाप को सुनकर गुरु ने एक अष्टक मे शिव का स्तवन किया। इसके दो छन्दो मे शिव के निर्गुण, दो छन्दो मे सगुण तथा दो छन्दों मे निर्गुण-सगुण मिश्रित स्वरूप एव चरित्र का वर्णन करने के अनन्तर दो छन्दो मे प्रसन्न होने, दुख हरने एव रक्षा की प्रार्थना है—

न यावदुमानाथ-पादारविन्द । भजतीह लोके परे वा नराणाम् ।
न तावत्सुख शान्ति सन्तापनाश । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम् ।।
न जानामि योग जप नैव पूजा । नतोऽह सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ।
जरा जन्म दु खौघतातप्यमान । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ।।

—उत्तरकाण्ड १०८।७-८

अर्थात् हे उमापति ! जब तक मनुष्य आपके चरण कमलों को नही भजते तब तक उन्हें इस लोक तथा परलोक मे सुख और शान्ति प्राप्त नही होती और न उनके सन्तापों का नाश होता है। अत समस्त जीवों के हृदयवासी भगवन् प्रसन्न हो जाइए। मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता हूँ। हे शम्भु ! मैं सदा-सर्वदा आपको

१ मानस पीयूष, उत्तरकाण्ड, पृ० ९-१०

ही नमस्कार करता रहता हूँ। हे प्रभु ! हे ईश्वर ! हे शम्भु ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, वृद्धावस्था तथा पुनर्जन्म के दुखों से दग्ध इस दुखी को बचा लीजिए।

इस अष्टक में अपने कल्याण तथा मोक्ष की कामना है। कहीं पर भी भुशुण्डि को कल्याण-कामना न होने से स्पष्ट है कि यह एक स्वतन्त्र स्तुति है, जिसे तुलसी ने भुशुण्डि के गुरु की ओर से आरोपित करके रख दिया है। स्वतन्त्र अस्तित्व का एक प्रमाण उसकी फलश्रुति भी है, जिसके अनुसार—

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥

(—शिव को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण द्वारा कहे गए इस रुद्राष्टक का भक्तिपूर्वक पाठ करने से भगवान् शिव सदैव प्रसन्न हो जाते हैं।)

मानस की किसी वैष्णव स्तुति में इस प्रकार की फलश्रुति नहीं है। साथ ही यह एकमात्र शैव स्तुति है जिसे कथा के मध्य में रखा गया है। यदि यही कह दिया जाता कि ब्राह्मण द्वारा विविध प्रकार से शिव की स्तुति करने पर शिव प्रसन्न हो गए तो भी कथाक्रम मे व्याघात न आता और न कोई अभाव ही लगता। परन्तु तुलसीदास यहाँ पर प्रसंगवश एक शैव स्तुति अवश्य लाना चाहते हैं जो उनकी शैव प्रवृत्ति की परिचायक है। यहाँ पर स्तुति मे औपचारिकता का निर्वाह न होकर पूर्ण आत्मीयता और भक्त-हृदय से निःसृत नितान्त दैन्य का प्रदर्शन है।

इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे वैष्णव ग्रन्थ में वैष्णव के साथ शैव स्तुतियाँ रखकर शिव के प्रति अपनी श्रद्धा तथा धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय भाव का ही परिचय दिया है।

३ पात्रों का शैवत्व-वैष्णवत्व

समग्र राम-साहित्य के पात्र दो वर्गों मे विभाजित दिखाई देते है—रामपक्षीय और रावणपक्षीय। रावण पक्ष वाले राक्षस हैं तो राम पक्ष वालों को मानव कहा जा सकता है, यद्यपि राम की सेना में वानर-भालू आदि भी सम्मिलित हैं। इसलिए इन्हे आर्य और अनार्य की संज्ञा से अभिहित करना अनुपयुक्त नहीं होगा। राम पक्ष के आर्य हैं और रावण पक्ष के अनार्य।

अवध में अपने तथा मिथिला में सीता के अवतरण से राम का सम्बन्ध दोनों स्थानों से है। इस दृष्टि से राम पक्ष के प्रमुख पात्र अवध एवं मिथिला के निवासी हैं। दूसरी ओर राक्षसों का सम्बन्ध लंका से है। राम पक्ष के मिथिला तथा अवध के प्रायः सभी प्रमुख पात्र राम के अवतरण से परिचित हैं। कौशल्या तो उनका विराट् स्वरूप

देख चुकी हैं। राम के अवतार का एक कारण मनु-शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न हो विष्णु का उनके पुत्र रूप में जन्म लेने का वर भी था। इस प्रकार इन सबको वैष्णव अथवा विष्णु-भक्त होना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे वैष्णव हैं। राम का जन्म होते ही कौशल्या—

कह दुइ कर जोरी, 'अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकन्ता।'

—बालकाण्ड १९२।५-८

कहकर राम की स्तुति करती हैं। दशरथ 'राम चरन चितु लाइ' (मानस १।३५५) सोने को जाते हैं। परन्तु इन सबकी शिव के प्रति पूर्ण आस्था एवं निष्ठा है। प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व गणेश अथवा पार्वती के साथ शिव का पूजन किया जाता है, मांगलिक एवं महान् कार्यों में शिव की अनुकम्पा समझी जाती है तथा कल्याण-कामना हेतु शिव से प्रार्थना की जाती है। प्रमुख पात्रों के शैवत्व के प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

दशरथ

सगुन सगुन सुनि राउ कह कुलगुरु आसिरबाद।
पूजिहि सब मन कामना, संकर गौरि प्रसाद॥—रामाज्ञाप्रश्न ४।१।५

× × ×

बाजत अवध गहागहे अनन्द बधाये।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाये॥
गनप गौरि हर पूजिकै गोवृन्द दुहाये।
घर घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाये॥—गीतावली १।६।१,४
नृप कर जोरि कह्यो गुर पाहीं।
तुम्हरी कृपा असीस नाथ! मेरी सबै महेस निबाहीं॥—गीतावली १।१६

× × ×

जाइ कहेउ प्रभु धारिय मुनि अवधेसहि।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि॥—जानकीमंगल १२८

× × ×

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥—मानस १।३०१

× × ×

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा । पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा ।।
सुमिरि सम्भु गिरिजा गनराजा । मुदित महीपति सहित समाजा ।।
—मानस १।३४७।७-८

× × ×

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाही । यह लालसा एक मन माही ।।—मानस २।४।४

× × ×

प्रिया ! बचन कस कहसि कुभाँती । भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ।।
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।।
—वही २।३१।५-६

× × ×

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ।।
—वही २।४४।७-८

कौशल्या आदि राम की माताएँ

मातु सकल कुलगुरु बधू, प्रिय सखी सुहाई ।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई ।।
—गीतावली १।१५।१

× × ×

दिये दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि ।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पादरथ चारि ।।—मानस १।३४५

× × ×

रूप सील बय बस गुन, सम बिबाह भये चारि ।
मुदित राउ रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि ।।
बिधि हरि हर अनुकूल अति, दशरथ राजहि आजु ।
देखि सराहत सिद्ध सुर, सपति समय समाजु ।।—रामाज्ञाप्रश्न १।७।५-६

भरत

बिप्र जेवाइँ देहिं दिन दाना । सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ।।
—मानस २।१५७।७

× × ×

पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि ।
बिहरत हृदउ न हहरि हर, पबि ते कठिन बिसेषि ।।—मानस २।१६६
× × ×
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । सकरु साखि रहेउ एहि घाएँ ।।
—वही २।२६२।

वसिष्ठ

मोरे जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ।।
—वही २।२५८।

अवधवासी

असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढहु विषाद ।
नृपसुत चारि चार चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ।।—गीतावली १।२।१।
× × ×
बिप्रवधू सनमानि सुआसिनि, जन-पुरजन पहिराइ ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस-रमेस मनाइ ।।—वही १।२।२२

राम के जन्मोत्सव पर दशरथ ने विप्रबन्धुओ तथा सुवासिनियो का सम्मानकर अपने आश्रित और पुरवासियो को वस्त्र आदि दिए । उस समय उन्होंने शिव तथा विष्णु दोनो को एक साथ मनाते हुए राम को आशीर्वाद दिया :

× ×
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक-जन भए दानी ।
यो प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होउ महेस-भवानी ।।—गीतावली १।४।६
× × ×
नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि ।
चारु फल त्रिपुरारि तोको दिए कर नृप-घरनि ।।—वही १।२८।१
× × ×
ईस मनाइ असीसहि जय जसु पावहु ।
न्हात खसै जनि बार गहरु जनि लावहु ।।—जानकीमंगल २६
× × ×
सब के उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु ।
आप अछत जुबराज पद, रामहि देउ नरेसु ।।—मानस २।१

गुर-हर-पद-नेहु, गेह बसि भो बिदेह ।—गीतावली १।८८।२

जनक-पत्नी

सेवक राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ।।
—मानस २।२८५।४

मिथिलावासी

जग जनमि लोयन लाहु पाए सकल सिवहि मनावहीं ।
बरु मिलो सीतहि साँवरो हम हरषि मंगल गावही ।।
—जानकीमंगल, हरिगीतिका ७

× × ×

सीय राम हित पूजहिं गौरि गनेसहि ।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ।।—वही ११४

× × ×

सुकृत सँभारि, मनाइ पितर-सुर, सीस ईस पद नाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो-सो हितु चितु लाइ कै ।।
—गीतावली १।७०।४

× × ×

प्रेम-बिबस माँगत महेस सों, देखत ही रहिये नित ए, री ।—वही १।७८।२

× × ×

अनुकूल नृपहि सूलपानि हैं ।
नीलकण्ठ कारुण्यसिन्धु हर दीनबन्धु दिनदानि हैं ।।—वही १।८०।१

× × ×

मन में मञ्जु मनोरथ हो, री !
सो हर-गौरि प्रसाद एक ते कौसिक कृपा चौगुनो भो, री !—वही १।१०४।१

× × ×

नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी ।—वही १।१०५।६

× × ×

कहहिं परस्पर नारि बारि-बिलोचन पुलक तन ।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ।।—मानस १।३११

राम-वन-गमन के समय मार्गवासी

सखी ! भूखे-प्यासे, पै चलत चित चाय हैं ।
इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं ।।—गीतावली २।२८।२

तुलसी के स्वयं चरित नायक राम शिव के उपासक ही नहीं, शिव-भक्ति के उद्घोषक भी हैं। उनके विषय में आगे अलग से देखा जाएगा।

जिस प्रकार राम-पक्ष के लोग वैष्णव होते हुए शिव के प्रति श्रद्धालु अथवा शिव के उपासक हैं, उसी प्रकार रावणपक्षीय राक्षस मूलतः शैव होकर राम के प्रति भक्तिभाव रखते हैं। राम स्वयं जानते हैं कि 'बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर' (मानस ६।४५।४)। लंकादहन के समय रावण मन्त्रियों से कहता है कि शिव मेरे स्वामी हैं (कवितावली ५।२१)। अंगद भी रावण को शिव-भक्त मानते हैं (मानस ६।२०।३) और अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए रावण अंगद से कहता है—

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर-सुमन चढाई ॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
—मानस ६।२५।१-३

यही रावण नाक-कानविहीन शूर्पणखा के आने पर सोचता है—

खर दूषन मोहि सम बलवन्ता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता ॥
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥
—वही ३।२३।२-४

तथा सीता-हरण के समय—

मन महुँ चरन बन्दि सुख माना ॥—वही ३।२८।१६

रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरि राम रूप ब्रह्म को नमन करती है (मानस ६।१०४ के पूर्व छन्द) और मृत्यु के समय मेघनाद समस्त कपट त्यागकर—

रामानुज कहँ रामु कहँ, अस कहि छाँड़ेसि प्रान ॥—मानस ७।७६

कुम्भकर्ण राम-भक्ति के लिए रावण को प्रबोधित करता है—

अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना ॥—वही ६।६३।२

और राम के दर्शनों की सम्भावना से स्वयं को कृतार्थ समझता है—

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई ॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप-त्रय-मोचन ॥
राम रूप गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक ।
—वही ६।६३ तथा अर्द्धालियाँ

मारीच राम के द्वारा मृत्यु को श्रेयस्कर मानते हुए सोचता है—

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं ।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ।।
निर्बानदायक क्रोध जाकर, भगति अबसहि बसकरी ।
निज पानि सर सधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ।।

—मानस ३।२६ के ऊपर छन्द

और राम का बाण लगने पर मन में राम का स्मरण अवश्य करता है ।

हनुमान द्वारा मारे जाने पर कालनेमि भी राम-राम कहकर ही प्राण त्यागता है (मानस ६।५८।६) ।

राक्षसो में विभीषण का व्यक्तित्व विशिष्ट स्थान रखता है । वह राम का स्मरण करके सोकर उठता है (मानस ५।६।३) और हनुमान से कहता है—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ।।

—मानस ५।७।२

वही विभीषण कुबेर के यहाँ शिव से राम की शरण मे जाने का निर्देश पाकर—

चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै ।
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै ।
कृपासिन्धु सनमानि, जानि जन दीन लियो अपनाइकै ।।—गीतावली ५।२८।५

आगे अपने भविष्य की प्रसन्नता के कथन से ज्ञात होता है कि शिव विभीषण के गुरु हैं और राम स्वामी । यद्यपि यहाँ विभीषण को कुबेर के यहाँ शिव अनायास मिल जाते हैं, परन्तु वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय (५।८९।४) तथा पश्चिमोत्तरीय (५।६९।४-६२) पाठों और माधवकन्दली (५।४०), कृत्तिवास रामायण (५।३९), रंगनाथ रामायण (६।१४), एकनाथ रामायण (५।३७) तथा तोरवे रामायण (६।२) में उसे कैलास पर वैश्रवण तथा शिव से मिलने के लिए जाते दिखाया है ।[1] संस्कृत साहित्य में दशरथ तथा जनक का शैवत्व भी वाल्मीकि,[2] आनन्द,[3] भावार्थ,[3] कृत्तिवास,[4]

---

१. रामकथा, पृ० ५३५ की पहली पादटिप्पणी;
२. वही, पृ० ३०७, ३४४
३. वही, पृ० ३४६
४. वही, पृ० ३४५

काश्मीरी[1] आदि कई रामायणों, पद्म,[2] स्कन्द[3] आदि पुराणों तथा भट्टिकाव्य, बृहत्कोशलखण्ड,[4] सत्योपाख्यान[5] आदि कई ग्रन्थों में मिलता है।

४. शैव उपमान

जिस प्रकार काव्य का प्रतिपाद्य भाव पक्ष कवि की अभिरुचि तथा वातावरण का प्रतिफलन होता है, उसी प्रकार कला पक्ष भी इन्हीं से व्यवस्थित होता है। जुलाहा होने के कारण ही कबीर के काव्य में कपडा बुनने से सम्बन्धित उपमान प्रायः मिल जाते हैं। परन्तु संकीर्ण मनोवृत्ति वाले परम्परावादी भी हो सकते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि रस, अलङ्कार आदि के सम्बन्ध में शैवों का एक नियत दृष्टिकोण रहा है। उनकी मान्यता रही है कि शिव से सम्बन्धित जिन-जिन उपमानों और रसों का विनियोग होता आ रहा है उन्हींकी परम्परा बनी रहे।[6]

हठधर्मिता के आधार पर तुलसी के राम-साहित्य में केवल वैष्णव उपमान होने चाहिए थे, परन्तु यहाँ पर कतिपय प्रमुख शैव उपमान द्रष्टव्य हैं—

हिमवान की पत्नी मयना

जनक वाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना।।

—मानस १।३२४।५

कालिका

महामोह महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला।।—वही १।४७।६

कैलास

जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू।।

—वही २।२५३।६

पार्वती का मन

पारबती मन सरिस अचल धनु चालक।—जानकीमंगल ६३

पार्वती

गग गौरि सम सब सनमानी।—मानस २।२४५।२
साधु बिबुध कुल हित गिरिनन्दिनि।—वही १।३१।६

१. रामकथा, पृ० ३४५
२. वही, पृ० १५६
३. वही, पृ० १८७
४. वही, पृ० ३४५, ३५५
५. वही, पृ० ३४५
६. डॉ० कमला भंडारी, मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, भूमिका, पृ० ८

काशी

जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।।—मानस १।३१।११

हिमवान-गिरिजा-शिव

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व फल कीरति नई ।

—वही १।३२४ के ऊपर छन्द ४

× × ×

संकल्पि सिय रामहि समरपी सील सुख सोभामई ।
जिमि सकरहि गिरिराज गिरिजा हरिहि श्री सागर दई ।

—जानकीमंगल, हरिगीतिका १८

शिव की विभूति

मुकुति संभु तन विमल बिभूती ।—मानस १।१।२

× × ×

भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ।।

—वही १।१० के ऊपर छन्द

शिव का जटाजूट

मन्दाकिनि मञ्जुल महेस जटाजूट सो ।—कवितावली ७।१४१

शिव

मरकतबरन, परन, फल मानिक से
लसै जटाजूट जनु रूख वेष हरु है ।—वही ७।१३६

× × ×

जातरूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर जन-सुखदाई ।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ।।

—विनयपत्रिका ६२।४

ए कौन कहाँ ते आये ?
किधौं रबि-सुवन, मदन-ऋतुपति, किधौ हरि-हरवेष बनाये ।

—गीतावली १।६५।१,३

× × ×

कोउ कह नर नारायन हरि हर कोउ ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ ।।—बरवैरामायण २।२२

× × ×

नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट, बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।
—गीतावली १।४।३

उपमानों के प्रयोग का एक उद्देश्य भावों का उत्कर्ष भी होता है। इसीलिए उपमान वही लिए जाते हैं जो महत्वपूर्ण हों। उनकी महत्ता में विश्वास तथा उनका अधिग्रहण कवि की प्रवृत्यात्मक अन्तश्चेतना का परिचायक है।

५. शैव अन्तर्कथाएँ

अन्तर्कथाओं का सन्निवेश काव्य-रचयिता की प्रवृत्ति का प्रतीक है। भक्त तथा भगवान् के उदाहरण भक्त अथवा धार्मिक प्रवृत्ति वाले कवि के काव्य में ही सम्भाव्य हैं। इन कथाओं के अध्ययन से उस कवि की साम्प्रदायिकता का परिचय भी सहज ही पाया जा सकता है। कट्टर वैष्णव के काव्य में शैव आख्यान का अभाव अस्वाभाविक नहीं है। पहले तो वह उनसे अनभिज्ञ ही होगा और फिर शिव की महिमा-परक घटनाओं का प्रचारक वह क्यों बनेगा। शरभेश, विष्ण्वानुग्रह या चक्रदान, लिंगोद्भव जैसे आख्यानों की तो उसके काव्य में कल्पना तक नहीं की जा सकती। परन्तु तुलसीदास ने अपने काव्य में जटायु, भुशुण्डि, अहल्या, द्रौपदी, नारद, वाल्मीकि, अजामिल, गणिका आदि के कितने ही वैष्णव आख्यानों के अतिरिक्त मदन-दहन, त्रिपुर-अन्धक-जलन्धर-वृक आदि के वध, विषपान, कर्णघण्ट, गुणनिधि आदि शैव आख्यानों को सन्दर्भित किया है। शिव के कामान्तक तथा त्रिपुरान्तक स्वरूप से तो तुलसी इतने प्रभावित हैं कि कई स्थलों पर उन्हें कामारि तथा त्रिपुरारि नामों से अभिहित किया है। सम्प्रति तुलसी-साहित्य में प्राप्त कतिपय प्रमुख शैव अन्तर्कथाओं का विवरण दिया जा रहा है।

क. मदन-दहन (मानस १।४, १।५०।३, १।३१५।२, १।३२४। प्रथम छन्द, ३।४ स्तुति, ६।प्रथम श्लोक, ७।५१।२, ७।५५।२; विनयपत्रिका २१८।३; गीतावली ७।६।३, ७।७।३, ७।१६।७; दोहावली ४२५; कवितावली १।१० आदि)

एक समय असुरों का अत्याचार इतना बढ़ गया कि देवता भयभीत हो गए। मालूम हुआ कि शिव के पुत्र को सेनापति बनाकर युद्ध करने से ही असुरों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। उस समय सती-दाह के पश्चात् शिव अखण्ड समाधिलीन थे और सती ने हिमवान् के यहाँ पार्वती-रूप में जन्म ले लिया था तथा नारद से प्रेरित हो शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वे भी तपस्यारत थीं। प्रश्न था शिव की समाधि [illegible] भंग हो और वे पार्वती से विवाह कर देवसेनानी पुत्र उत्पन्न करें। उद्देश्य-पूर्ति [illegible] काम को सहमत किया कि वह शिव की तपस्या भंग कर

उनमें शृंगार-भाव उत्पन्न करे। जब काम ने पुष्पबाण से शिव को लक्षित किया तो शिव समाधि से जाग्रत हो गए। काम को इस रूप में देखकर उन्होंने क्रोधित हो तृतीय नेत्र से उसे भस्म कर दिया।

इसी आख्यान के आधार पर तुलसी ने शिव को कामारि, कामरिपु, मर्दन-मदन, मनोजनशावन, मदन-मद-मोचन, मदनारि, अनग-अराती कहा है और मानस के बालकाण्ड में ६५वें दोहे से ८७वे दोहे तक हिमवान के यहाँ पार्वती रूप में सती-जन्म, शिव को प्राप्त करने के लिए पार्वती की तपस्या, शिव की समाधि और काम-भस्म की कथा को अनूस्यूत किया है। शिल्पशास्त्र में यह शिव की कामान्तकमूर्ति कहलाती है।

ख. त्रिपुर-वध (मानस १।४६, १।५७।८, १।६४।५, १।७४, १।२२०।७, १।३११, १।३४५, २।२२६।८, ६।२५।३, ६।११४, ७।५२।९, ७।५४।१; विनयपत्रिका ३।२, ९।४, ४९।६, गीतावली ७।७।३, ७।१९।७ आदि)

देवों से पराजित होकर मय दानव ने घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होने पर ब्रह्मा ने उसे वर देना चाहा। मय ने किसी से भी अजेय त्रिपुर के निर्माण का वर चाहा, जिसमे रहकर असुर देवो को परास्त कर सके। परन्तु ब्रह्मा अमरत्व का वर देने को सहमत नही हुए। तब मय ने कहा कि उस त्रिपुर को शिव के अतिरिक्त अन्य कोई नष्ट न कर सके। ब्रह्मा ने ऐसा वर दे दिया, जिसके अनुसार मय द्वारा निर्मित त्रिपुर शिव के अतिरिक्त अन्य सबको अजेय था। त्रिपुर-निर्माण के उपरान्त असुरों ने देवों को आक्रान्त कर दिया। अन्त में देवों ने शिव की शरण ली। शिव ने एक ऐसा बाण मारा जिससे त्रिपुर जलकर भस्म हो गया।[1]

शिल्पशास्त्र में शिव के इस स्वरूप को त्रिपुरान्तकमूर्ति कहते हैं। अपराजित-पृच्छा के अनुसार उसे दशभुजी होना चाहिए,[2] परन्तु तजौर के बृहदेश्वर मन्दिर की

---

१ मत्स्यपुराण, अ० १२९-१४०

२ एकवक्त्र दशभुजं नृत्यन्तं त्रिपुरान्तकम्।
सिंहचर्मपरिधानं मृगचर्मोत्तरीयकम्॥
रक्ताम्बरधरं देवं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कपालमालाभरणं शशाङ्ककृतशेखरम्॥
खट्वाङ्गखेटकधरं धृतखड्गकपालकम्।
त्रिशूलादिन कण्ठा च शरशार्ङ्गविधारिणम्॥
पाशाङ्कुशधरं देवं कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम्।
हर संस्थाप्य नृत्यन्त वलयाकारसस्थितम्॥—अपराजितपृच्छा २१३।१७-२०

एक सुन्दर कांस्य-प्रतिमा में उसे चतुर्भुजी प्रदर्शित किया गया है ।[१] तुलसी ने शिव के इस रूप को त्रिपुरारि तथा त्रिपुर-आराती कहा है ।

ग. अन्धक (विनयपत्रिका ४९।६)

हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धक ने ब्रह्मा से वर प्राप्त कर लिया कि मेरी मृत्यु ज्ञान प्राप्त होने पर ही अन्यथा मैं सदैव जीवित रहूँ । इस प्रकार वह विश्वविजयी बन गया और देवता मन्दराचल को पलायन करने को बाध्य हो गए । परन्तु वहाँ भी अन्धक द्वारा आतंकित किए जाने पर उन्होंने आर्त्तनाद से शिव को पुकारा । अन्धक तथा शिव का भयंकर युद्ध हुआ जिसमें शिव के त्रिशूलाघात से अन्धक को बैठ जाना पड़ा । उसी समय शिव का ध्यान होने से आशुतोष प्रसन्न हो गए (अन्धक में भी भगवत्-ध्यान का ज्ञान संचरित हो गया) और उसे अनन्य भक्ति का वर प्रदान किया ।

घ. जलन्धर (विनयपत्रिका ४९।७)

शिवपुराण (रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय १३-२४) में जलन्धर, कीर्तिमुख और शुम्भ-निशुम्भ का एक विस्तृत आख्यान है । इसके अनुसार एक समय इन्द्र और बृहस्पति शिव से मिलने कैलास गए । परन्तु उनकी बौद्धिक परीक्षा हेतु शिव ने दिगम्बर रूप में उनका मार्ग अवरुद्ध कर लिया । इन्द्र द्वारा कई बार शिव का पता पूछने पर दिगम्बर ने कोई उत्तर नहीं दिया, जिससे इन्द्र ने वज्राघात करना चाहा । इससे दिगम्बर भी क्रुद्ध हो गए और इन्द्र के स्तम्भित हाथ को देख बृहस्पति ने उनके यथार्थ स्वरूप को पहिचान क्षमा प्रार्थना की । शिव ने अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र में निक्षिप्त कर दिया, जिसने तत्काल शिशु रूप धारणकर अपने रुदन से पृथ्वी को प्रकम्पित तथा स्वर्ग और सत्यलोक को बधिर कर दिया । ब्रह्मा के आने पर शिशु ने उनके गले में हाथ डालकर उन्हें आकर्षित करना चाहा, परन्तु ब्रह्मा को वह स्पर्श प्राणघातक लगा । इस कारण उनको अश्रुपात होने से ब्रह्मा ने उसका नाम जलन्धर रखा और कहा कि यह दैत्याधिपति होकर कार्तिकेय के समान अतुलित बलशाली होगा, जिसे रुद्र के अतिरिक्त कोई नहीं मार सकता ।

समय पाकर जलन्धर ने अमरावती तक पर विजय प्राप्त कर ली और नारद से प्रेरित हो सर्वाङ्गसुन्दरी पार्वती को प्राप्त करने के लिए उसने एक बार अपने दूत सैंहिकेय को शिव के पास भेजा । दूत का उद्देश्य जान शिव से एक गण उत्पन्न हुआ जिसने दूत को भयभीत कर दिया । यह गण कीर्तिमुख

---

१. डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, पृ० ४८७

कहलाया ।[१] दूत ने वापिस आकर जलन्धर को सब समाचार सुनाया जिसे सुनकर जलन्धर ने कैलास पर आक्रमण कर दिया । मायामय युद्ध मे नृत्य-सगीतरत अप्सराओ को देखकर शिव के अस्त्र स्खलित हो गए । उस समय शुम्भ-निशुम्भ को युद्धभूमि मे छोड़, कामातुर जलन्धर पार्वती के पास पहुँचा । परन्तु उसे पहिचानकर पार्वती अन्तर्धान हो गयी । पार्वती ने विष्णु से उसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दा का सतीत्व नष्ट करने को कहा और विष्णु अपने उद्देश्य मे सफल हुए । इस प्रकार अन्त में शिव ने जलन्धर का वधकर देवो का परित्राण किया ।[२]

ङ दक्ष-यज्ञ विध्वंस (विनयपत्रिका ४६।७)

दक्ष-यज्ञ मे शिव का भाग न देखकर सती ने योगाग्नि से अपना शरीर त्याग दिया । इसका समाचार पाकर शिव ने वीरभद्र नामक एक गण को उत्पन्न किया जिसने जाकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर डाला । रामचरितमानस में तुलसी ने इस आख्यान का किंचित् विस्तृत वर्णन किया है (-बालकाण्ड ६०।५ से ६५।४) ।

प्रस्तुत पाँचो आख्यानो से सम्बद्ध कामान्तक, त्रिपुरान्तक, अन्धकासुर वध, जलन्धरहर तथा वीरभद्र मूर्तियों की गणना शिव की दस सहारमूर्तियो मे की जाती है । यद्यपि उनका निर्माण बहुत पहले से हो रहा था परन्तु यह नही कहा जा सकता कि तुलसी इनके मूर्तिशास्त्रीय स्वरूप से परिचित ही थे ।

च. विषपान (विनयपत्रिका ३।२; रामचरितमानस १।१२६।८; कवितावली ७।१४६, १५०, १५१, १७० आदि)

देवासुरों द्वारा समुद्र-मन्थन करने पर सर्वप्रथम कालकूट विष प्राप्त हुआ । परन्तु उसकी ज्वाला से दिग्-दिगन्त दग्ध होने लगे । उस समय भक्तवत्सल शिव का स्मरण किया गया । शिव ने उसे पीना चाहा, परन्तु हृदय में इष्टदेव का निवास होने कारण उसे कण्ठ में अवरुद्ध कर लिया । इसीसे शिव का कण्ठ नीला हो गया और वे नीलकण्ठ तथा नीलग्रीव कहलाये ।

छ. ज्योतिर्लिंग (गीतावली १।८६।२)

ज्योतिर्लिंग या प्रकाश-स्तम्भ की कल्पना प्राचीन थी ।[३] यजुर्वेद (२३।४८) में

---

१. कीर्तिमुख के लिए द्रष्टव्य प्रस्तुत लेखक का लेख—'कीर्तिमुख भारतीय कला का एक आलकारिक अभिप्राय'—राजस्थान भारती, लोक सस्कृति अंक (मार्च, १९७१)
२. जलन्धर की कथा स्कन्द पुराण (वैष्णव खण्ड, अ० २०-२१) तथा आनन्द रामायण (९।४।२०-११२) में भी मिलती है ।
३ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय कला पृ० ६८

ब्रह्म को सूर्य के समान कहा गया है (-ब्रह्म सूर्यसम ज्योतिः)। परन्तु शैव आचार्यों ने इसीको आख्यान का रूप दे दिया। लिंग (अ० १७-१९), वायु (अ० ५५), कूर्म, (पूर्वार्द्ध, अ० २६) तथा शिवपुराण (अ० ५-८) के अनुसार सृष्टि-रचना को लेकर ब्रह्मा तथा विष्णु अपनी-अपनी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए विवाद करने लगे। उसी समय एक ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ। विष्णु ने उसका पता लगा लेने वाले को महान् मानने की शर्त रखी। हंस रूप से ब्रह्मा ने ऊर्ध्व तथा वाराह रूप से विष्णु ने अधोगमन किया। परन्तु कोई भी उसके आद्यन्त का अन्वेषण करने में समर्थ न हुआ। अन्त में शिव साक्षात् प्रकट हुए।

शैव सिद्धान्तों के अनुसार तीन तत्वों—शिव, सदाशिव तथा महेश में से महेश की पच्चीस लीलामूर्तियों में एक लिंगोद्भवमूर्ति भी है। कारण, सुप्रभेद, उत्तरकामिक तथा अंशुमद्भेद आगमों और शिल्परत्न, श्रीतत्वनिधि आदि में इसके शिल्पशास्त्रीय लक्षण दिये गये हैं। तंजौर के शिलालेख में लिंगोद्भव को लिंगपुराणदेव कहा गया है।[१]

ख. कर्णघण्ट (विनयपत्रिका २२।४)

काशी का एक ब्राह्मण शिव का कट्टर भक्त था। वह हर समय अपने कानों में घण्टे बांधे रहता था जिससे अन्य देवता का नाम तक सुनाई न पड़े। जिस स्थान पर वह रहता था उसे आज भी कर्णघण्टा कहते है।[२]

ग. गुणनिधि (विनयपत्रिका ७।२)

प्रस्तुत आख्यान से शिव की दानी प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है। गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण चौर कार्य करता था। एक शिवालय का घण्टा ऊँचे पर था, इसलिए उतारने में असमर्थ होने से गुणनिधि शिव-मूर्ति पर चढ़कर उसे खोलने लगा। मूर्ति पर चढ़ने से शिव उसे सर्वस्व समर्पण मान प्रकट हो गए और वरदान के साथ उसे कैवल्य पद प्रदान किया।

६. शैव अभिधान

शैवों के पाशुपत मत में पशुपति, पाश और पशु तीन ही सत्तायें हैं। शैव सिद्धान्त में भी यही तीन परमतत्व या पदार्थ माने गए हैं। शिव पशुपति हैं। वे जीवात्माओं के कर्मों के अनुसार भोग और उनके साधनों को उत्पन्न करते हैं। वे सब कुछ करते है और सर्वद्रष्टा है। जीव पशु है जो पाश से मुक्त होने पर नित्य एवं निरतिशय ज्ञान-क्रिया शक्तियों से सम्पन्न होकर चैतन्य रूप शिव बन जाते हैं। यद्यपि

---

१. साउथ इंडियन इमेजेज आफ गाड्स एण्ड गाडेसेज, पृ० ९२

२. वियोगी हरि, विनयपत्रिका, पृ० ६८ की दूसरी टिप्पणी,

वे शिव हो जाते हैं तथापि स्वतन्त्र नहीं होते प्रत्युत नित्यमुक्त शिव के अधीन रहते हैं। पाश चार प्रकार के है—मल, कर्म, माया और रोध शक्ति। तुषतण्डुलवत् पशु (आत्मा) की ज्ञान एवं क्रिया शक्ति को तिरोहित कर देने वाला पाश मल है, फलेच्छुक व्यक्तियों का कृत्य कर्म पाश है। प्रलय के समय जिसमें समस्त संसार परिमित हो जाता है और सर्जनकाल में जिससे उद्भूत होता है, वह माया पाश है। रोध शिव की शक्ति है, जो अन्य तीन पाशों में अधिष्ठित होकर पशु के यथार्थ स्वरूप को छिपा देने के कारण स्वयं भी पाश कहलाती है। पशु पति के शक्तिपात अर्थात् अनुग्रह से पाशमुक्त होता है और यही उसकी मुक्तावस्था है।[1]

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है—

विधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत॥—१३३।२

यहाँ जीव को पशु तथा ब्रह्म को पशुपाल कहा है। तुलसी नाम का पर्याय भी दे देते हैं—हिरण्याक्ष को हाटकलोचन, हिरण्यकश्यप को कनककसिपु (मानस १।१२२।६), प्रतापभानु को प्रतापरवि (वही १।१५३), दशरथ को दसस्यन्दन (गीता० १।२।६)। इसी प्रकार यहाँ पशुपति के लिए उन्होंने पशुपाल शब्द गढ़ लिया है। ईश भी शैव अभिधान है। जीव के लिए पशु शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है—

तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु,
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर॥—विनयपत्रिका १६६।३

रामचरितमानस में कई स्थानों पर राम के लिए निरञ्जन शब्द का प्रयोग हुआ है—

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
—अरण्यकाण्ड ३२वें दोहे के पूर्व स्तुति

तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥
—उत्तरकाण्ड ३४।६

निर्मल निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
—उत्तरकाण्ड ७२।६

डॉ० कमला भंडारी का कहना है कि भारतीय दर्शन में इस शब्द का प्रयोग निराकार शिव के लिए हुआ है। योग के ग्रन्थों में इसका प्रचुर प्रयोग है। तुलसीदास

---

१. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० १४२-१४४ तथा हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७४

तथा अन्य सगुण भक्त कवियों द्वारा इसके प्रयोग पर वह शैव परम्परा का ही प्रभाव मानती हैं।[1] डॉ० भंडारी ने अलख शब्द को भी शैवों से आगत बताया है।[2] तुलसीदास कहते हैं—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

—मानस २।९३।७

वैसे अलख और निरञ्जन शब्दों के शैवेतर प्रयोग भी प्राचीन साहित्य में पाना दुष्कर नहीं है।

७. शैव दर्शन

शैव दर्शन मे आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र नाम से त्रिक् प्रसिद्ध है। आगम शास्त्र में अनुश्रुति, स्पन्द में सैद्धान्तिक विस्तार और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में सिद्धान्तों का तर्कबद्ध रीति से समर्थन है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है—फिर से पहचान, पुनः स्वरूप-प्राप्ति। इस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य वसुगुप्त और उनके शिष्य सोमानन्द हैं। प्रत्यभिज्ञासूत्र, प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञा-विवृत्ति-विमर्शिनी, भास्करी, परमार्थशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, तन्त्रालोक, प्रत्यभिज्ञा-हृदय आदि इस दर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। वसुगुप्त के शिवसूत्र के आधार पर उनके शिष्य भट्टकल्लट ने स्पन्दकारिका और स्पन्दवृत्ति की रचना की।

स्पन्दशास्त्रियों ने जगत्-रचना के निमित्त कर्म सदृश किसी प्रेरक कारण अथवा प्रधान जैसे उपादान कारण की आवश्यकता का दृढ़ता से खण्डन किया है। वे वेदान्तियों के समान न तो ईश्वर को उपादान कारण मानते हैं और न उनका यही विचार है कि माया अथवा भ्रम उन प्रतीतियों को उत्पन्न करता है, जो कि असत्य हैं। उनके अनुसार चैतन्य, परा संवित्, अनुत्तर, परमेश्वर, स्पन्द तथा परमशिव उस परमतत्त्व के ही अभिधान हैं जो परम स्वतन्त्र है। वह अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से सम्पन्न होकर स्वेच्छा से स्वभित्ति अर्थात् अपने ही आधार में जगत् का उन्मीलन करता है—

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।—प्रत्यभिज्ञाहृदय, सूत्र २

वह स्वयं में जगत् को इस प्रकार प्रतिभासित करता है जैसे कि जगत् उससे भिन्न हो, यद्यपि वस्तुतः ऐसा है नहीं। जिस प्रकार भवन या नगर दर्पण मे प्रतिबिम्बित होते हैं किन्तु दर्पण उनसे प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार अपने मे प्रतिभासित जगत् से ईश्वर अप्रभावित रहता है। वह उस रूप में भी नहीं है जैसा जगत् में देखते हैं।

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव पृ० १६३

२ वही, पृ० २०१

अतः वह जगत् का उपादान कारण भी नहीं है। वसुगुप्त ने एक श्लोक में उपादान आदि सामग्री तथा भित्ति के बिना ससार रूप चित्र के विस्तारक शूली या शिव की इस रूप में वन्दना की है—

निरुपादान सभारमभित्तावेव तन्वते ।
जगत् चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।

अर्थात् कलाओ के स्वामी उस शूलिन् को मै प्रणाम करता हूँ जो किसी भित्ति (आधार) तथा उपकरण समूह का सहारा लिए बिना शून्य में ही इस विचित्र संसार रूपी चित्र की रचना करता है।

लौकिक चित्रकार उपकरणों के द्वारा किसी उपादान पर ही चित्र-रचना करता है, परन्तु परमशिव ऐसे विलक्षण कलाकार हैं जो सामग्री तथा आधार के अभाव मे भी सृष्टि-रचना कर डालते है। इस विलास का कारण उनकी स्वातन्त्र्य या इच्छा शक्ति ही है।[१]

कहने की आवश्यकता नही विनयपत्रिका के निम्न पद की रचना इसी शैव सिद्धान्त के आधार पर हुई है—

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपुन पहिचानै ।। —पद १११

चित्रकार व्यक्ति विशेष मूर्त या साकार होता है परन्तु यहाँ तो निराकार चित्रकार ने उपकरण तथा उपादान के बिना ही स्वेच्छा से शून्य रूप स्वभित्ति पर सृष्टि-रचना कर डाली है। सामान्य लौकिक चित्र से इसकी स्थिति पूर्णतया विपरीत है। वह धोने से मिटता है यह नहीं, वह किसी प्रकार की भावना से असम्प्रक्त रहता है, पर इसे नष्ट होने का भय है, उसे देखकर आनन्द की सम्प्राप्ति होती है, पर

१. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० १४७-१४८, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४७६, ८७०; हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ५१६ तथा मध्व कृत सर्वदर्शनसंग्रह, सूत्र १४

इसे देखकर विषाद एवं भय की अनुभूति होती है। इस रचना की एक विशेषता यह है कि इसमें ममता-मोह की मृगमरीचिका भी परिव्याप्त है जिसमें विषय रूप मगर का निवास है। जो भी मृगतृष्णा से आकर्षित होता है उसे विषय-वासनाएँ नष्ट कर डालती हैं। इस रचना में ईश्वर उपादान कारण न होने से यह सत्य भी नहीं है और न माया अथवा भ्रमवश इसकी प्रतीति होने के कारण असत्य ही है, साथ ही सत्यासत्य कहना भी भ्रान्ति है। अतः यह अपने प्रकार का अनुपम तथा अद्वितीय चित्र है।

तुलसीदास ने सब कुछ तो शैव दर्शन से ग्रहण किया परन्तु परमशिव के स्थान पर केशव (विष्णु) को स्थानापन्न कर दिया है। इससे सिद्धान्त में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। कुछ ऐसा ही वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी ने भी किया है—

चेलें समुझि गुरू सौं पूछा। धरती सरग बीच सब छूँछा॥
कीन्ह न थूनी, भीति, न पाखा। केहि विधि टेकि गगन यह राखा॥
—अखरावट ५०।१-२

तथा—निमिख न लाग करत ओहि, सबइ कीन्ह पल एक।
गगन अन्तरिख राखा, बाजु खम्भ बिनु टेक॥—पद्मावत १।२

पर जायसी के वर्णन मे शैव सिद्धान्त उस तरह सन्दर्भित प्रतीत नहीं होता जैसा तुलसी के पूर्वोक्त पद में मिलता है।

डॉ० कमला भण्डारी के अनुसार शैव उपासकों ने कर्म को आवागमन का कारण माना है। जब तक कर्म है तब तक आवागमन से मुक्ति नहीं होती। इस प्रकार वे तुलसी के—

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल करम सुभाव गुन घेरा॥
—मानस ७।४४।४-५

कथन पर शैव प्रभाव मानती हैं।[1] जबकि कर्म सिद्धान्त गीता तथा उपनिषद्-साहित्य मे भी मिलता है और उसकी एक वैष्णव परम्परा भी है।

शैवत्व के चश्मे से डॉ० भण्डारी को तुलसीदास में शैव अद्वैतवाद के भी दर्शन होते हैं। वह लिखती हैं कि शैव दर्शन में शिव की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं—लयावस्था और भोगावस्था, जिनको तिरोभाव और आविर्भाव भी कहा गया है। उनकी अव्यक्त अवस्था तिरोभाव और व्यक्त अवस्था आविर्भाव अवस्था है। भण्डारी की दृष्टि से यह शैव अद्वैतवाद है और तुलसी ने परमेश्वर तथा जीव और परमेश्वर तथा

१. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १६०।

जगत् के अद्वैत सम्बन्ध को 'वारि और बीचियों' के समान मानकर इसी सिद्धान्त का अनुसरण किया है ।[१]

ऊपर विनयपत्रिका में प्राप्त पाशुपत मत की शब्दावली का उल्लेख किया गया । उससे तुलसी पर इस मत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । सम्भव है 'तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु, जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ।' (—विनयपत्रिका १०२।५) कहने में भी तुलसीदास के मन में प्रच्छन्न रूप से पाशुपत मत की धारणा रही हो, यों यहाँ पर पाश मोह का है जिसे पाशुपत मत का माया पाश कहा जा सकता है ।

८ शैव ग्रन्थों का प्रभाव

जागरूक कवि अपनी युगीन चेतना के प्रति सजग रहने के साथ पुरातन से भी असंश्लिष्ट नहीं होता । वह अपने पूर्ववर्ती साहित्य तथा वातावरण को जानने के लिए उत्सुक रहता है । इसी क्रम में यदि गोस्वामी तुलसीदास नानापुराणनिगमागम निष्णात हों तो आश्चर्य नहीं । फिर एक सारग्राही व्यक्ति इनसे मधु भी संचित करता चलता है । परन्तु वह संचय तथा प्रभाव वहीं से ग्रहण करता है जिसके प्रति श्रद्धालु होता है । जहाँ विचारों में असङ्गति होगी वहाँ के प्रभाव ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं उठता । इस प्रकार किसी के काव्य में पूर्ववर्ती रचना अथवा रचनाकार से सैद्धान्तिक तथा वैचारिक आधार पर प्रभाव-संयोजन उसकी तद्विषयक समशील विचारधारा का प्रमाण है ।

तुलसी ने 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।'

कहकर अपनी सारग्राह्यता के सम्बन्ध में स्वयं प्रमाण दे दिया है । इस क्वचिदन्यतोऽपि में पं० सीताराम चतुर्वेदी ने लगभग ढाई सौ ग्रन्थों की सूची दी है जिनसे तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना में साहाय्य ग्रहण किया है ।[२] इन ग्रन्थों में विविध रामायणों, गीतगोविन्द, जानकीस्तवराज, प्रसन्नराघव, भगवद्गीता, महाभारत, रामरक्षास्तोत्र, वैष्णवधर्मरत्नाकर आदि वैष्णव रचनाओं के साथ आदिशक्तिसंहिता, उमासंहिता, कुमारसम्भव, गणेश्वरसंहिता, शिवमहिम्नस्तोत्र, रुद्रयामल, रुद्रसंहिता, शिवसंहिता, श्वेताश्वतरोपनिषद् प्रभृति लगभग पचीस ऐसे ग्रन्थों के नाम हैं जिन्हें शुद्ध रूप में शैव कहा जा सकता है । निगमागमसम्मत की स्वीकृति तुलसीदास ही देते हैं और आगम ग्रन्थ शैव हैं, जिनका प्रादुर्भाव ईशान के पंचमुखों से हुआ है ।[३]

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १७६-१७८

२. तुलसी ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) के अन्त में संलग्न दो पृष्ठ ।

३. टी० ए० गोपीनाथ राव, एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, भाग २, खण्ड २ पृ० ३६७-३६८

तुलसीदास ने पुरातन प्रभाव कथात्मक तथा रचनात्मक दो रूपों में ग्रहण किया है। समग्र रूप से उनके दर्शन का प्रमुख आधार अध्यात्मरामायण और कथाविस्तार का आधार वाल्मीकिरामायण है, तथापि उन्होंने नवीन घटनाओं का संयोजन हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, भागवतपुराण तथा रघुवंश से किया है। अहल्या का शिला होना सर्वप्रथम रघुवंश (११।३४) में मिलता है।[1] प्राचीनता को आधार मानने पर प्रस्तुत घटना तथा मानस के प्रारम्भ का विनम्र निवेदन तुलसी ने यहीं से ग्रहण किया है। नारद-मोह तथा विष्णु-शाप का प्रसंग महाभागवतपुराण तथा अद्भुत रामायण में होने पर भी तुलसी ने शिवपुराण के शैव आधार का अधिग्रहण किया है। सती-मोह तथा अनुसूया का सीता को पातिव्रत्य उपदेश भी इसी के निकट है। रचनात्मक स्तर पर शिवचरित के संवाद तो शिवपुराण के लगभग शब्दशः अनुवाद है। सम्प्रति प्रमुख शैव ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव की अन्विति द्रष्टव्य है।

क. शिवपुराण (सती खण्ड २४।४३-४८)

शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसिति चेन्मनः।
तव रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया॥
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये।

मानस १।५२।१,३

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥

रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड २८।१,४,५,७

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः।
आगता च सती दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी॥
अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम्॥
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन।
नान्योपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहितः॥
भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे।
न शम्भु भागमकरोत्क्रोधं दुर्विषहं सती॥

मानस १।६३।१,४

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥

---

1. रामकथा, पृ० ३०१

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥

रुद्र सहिता, सती खण्ड ३०।८६

हतकल्मष तद्देहः प्राप्तच्च तदग्निना ।
भस्मतादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ त्वदिच्छया ॥
तत्पश्यता च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहास्तदा ।
हाहेति सोद्भुतताश्चित्रस्सुरादीना भयावहः ॥

मानस १।६४।७-८

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धर चन्द्रमौलि वृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

रुद्र सहिता, पार्वती खण्ड ८।१०-११

सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे ।
एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्वतः ॥
योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतात विवर्जित. ।
अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः ॥

रामचरितमानस १।६७।१,७-८ तथा दोहा

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी । सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु-पितु हीना । उदासीन सब ससय छीना ॥
जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल वेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥

पार्वती खण्ड १६।२६

शिववीर्यसमुत्पन्नो यदिस्यात्तनयस्सुराः ।
स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः ॥

रामचरितमानस १।८२

सबं सन कहा बुझाइ विधि, दनुज निधन तब होइ ।
संभु सुक्र संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ ॥

पार्वती खण्ड, रुद्र सहिता ४८।४१,४३-४४

वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपंकजम् ।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ॥

महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावह: ।
बभूव जयसंरावो दिवि भूम्यन्तरिक्ष: ।।
साधु शब्दं नमः शब्द: सर्व मङ्गलकृत्यिना ।

रामचरितमानस १।१०१।३-६

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ।।
बेदमन्त्र मुनिबर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ।।
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । सुमनवृष्टि नभ भै बिधि नाना ।।
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू ।।

रुद्र संहिता २।२-३

हिम शैलगुहाकाचिदेका परमशोभना ।
यत्समीपे सुरनदी बहति वेगत ।।

रामचरितमानस १।१२५।१

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । बह समीप सुरसरी सुहावनि ।।

रुद्र संहिता ३।५-६

मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ।।
स्वलोकाधिकंक रम्यं नानावस्तुविराजितम् ।

रामचरितमानस १।१२६

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार ।
श्रीनिवासपुर तें अधिक, रचना बिबिध प्रकार ।।

रुद्र संहिता ४।७-६,१३,१५,१७

मोहिनी स्वरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा ।
असुरेभ्यो पाययस्त्वं वारुणीमृतं न हि ।।
चेत्पिबेन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः ।
भवेन्नष्टाखिला माया व्यापारते हरे ।।
गतिः सा कपटा तडतिप्रिया विष्णोर्विशेषतः ।
इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः ।।
अन्वकार्षीस्सवरूपेण येन कापट्यकर्मकृत् ।
तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भवत्वद्य समुत्तरे ।

यन्मुख कृतवान्मेत्व ते भवन्तु सहायिनः।
त्व स्त्रीवियोगज दुःखलभस्व परदुःखदः।।

ानस १।१३६।८, दोहा तथा १३७।५-६

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिषपान करायहु।।
असुर सुरा बिष मकरहि, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु।।
× × । पावहुगे फल आपन कीन्हा।।
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्रापमय एहा।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।।

ड ५४।७४-७७

स्वप्नेपि यन्मनो नित्य स्वपति पश्यति ध्रुवम्।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता।।
या पितृ-भ्रातृ-सुतवत् परम्पश्यति सद्धिया।
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वे पतिव्रता।।
बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचार करोति न।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति।।
पत्युः कुलस्य च भयाद् व्यभिचार करोति न।
पतिव्रताऽधमा सा हि कथितापूर्वसूरिभिः।।

नस ३।५।११-१५

जग पतिव्रता चारि बिधि अहही। बेद पुरान संत सब कहही।।
उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाही।।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

ाण[१]

तस्मात्तु रामायणनामधेयं परं नु काव्य श्रुणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिन् श्रुते जन्मजरादिनाशो भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात्।।

ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३०

रामचरितमानस १।१५।१०-११

जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥

स्कन्दपुराण[१]

अहो भवन्नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥

रामचरितमानस १।१९।३

महामन्त्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥

स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड २१।५२

उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपा त्यक्त्वा मनीषिभिः ।
भूतप्रेतपिशाचैश्च मदनेन विमोहितैः ॥

रामचरितमानस १।८५।६-७

देव दनुज नर किंनर व्याला । प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी । सदा काम के चेरे जानी ॥

ग. शिवसंहिता[२]

मुक्तिस्त्री-कर्णपूरौ मुनिहृदयपयःपक्षतीतीर-भूमी ।
संसारापारसिन्धोः कलिकलुषतमः स्तोमसोमार्कबिम्बौ ॥
उन्मीलत्पुण्यपुञ्जद्रुमदलितदले लोचने च श्रुतीनां ।
कामं रामेति वर्णौ शमिह कलयतां सन्ततं सज्जनानाम् ॥

रामचरितमानस १।२०।६

भगति सुतिय कल करन बिभूषन । जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥

घ. उमासंहिता[३]

कुन्देन्दुकर्पूरतनुर्महेशः करुणार्णवः ।
दीनस्नेहकरः कुर्यात्कृपां मदनमर्दनः ॥

रामचरितमानस १।४

कुन्द इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३४
२. वही, पृ० ३५
३. वही, पृ० ६

ङ. **शिवगीता**[१]

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम ।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।

रामचरितमानस ४।३

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

च. **श्वेताश्वतर उपनिषद्** ४।१९

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषमहान्तम् ।।

रामचरितमानस १।११८।५-७

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।

छ. **कुमारसम्भव** ५।२८

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तयापुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ।।

रामचरितमानस १।७४।७

पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भयउ अपरना ।।

कुमारसम्भव ३।३९

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ।

रामचरितमानस १।८५।१

सब के हृदयं मदन अभिलाषा । लता निहारि नवहिं तरु साखा ।।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने पार्वतीमंगल में भी कुमारसम्भव के कुछ श्लोको के छायानुवाद पर प्रकाश डाला है ।[१]

शैव आचार्य वसुगुप्त की—

निरुपादान संभारमभित्तावेव तन्वते ।
जगत् चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २८४-२८५ तथा गोसाईं तुलसीदास, पृ० २३४-३५

स्तुति के आधार पर विनयपत्रिका के 'केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।' पद की रचना के विषय में ऊपर शैव दर्शन के सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है।

९ शैव आख्यान का समाहार

तुलसीदास ने वैष्णव ग्रन्थों के साथ शैव ग्रन्थ भी लिखा हो, वे मानस जैसी महान् रचना को भी शैव आख्यान से रहित रखना उपयुक्त नहीं समझते थे। वाल्मीकि तथा अध्यात्मरामायण दोनों में सतीचरित, कामदहन और पार्वती-मंगल का अभाव है। परन्तु तुलसीदास ने अपनी रामायण में इनका भी संयोजन कर इन्हें ग्रन्थ का एक अंग बना लिया है। मानस के रचना-क्रम पर विचार करते हुए डॉ० बुल्के ने उसकी तीन स्थितियाँ मानी हैं—

१. रामचरित

क. बालकाण्ड दोहा १ से २९ तक.

ख. बालकाण्ड दोहा १२१ से ३६१ तक : हेतु कथाएँ, रावण-चरित, विष्णु की अवतार कथाएँ, राम-विवाह,

ग. अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड के प्रथम ६ दोहे;

२. शिवरामायण

क. बालकाण्ड दोहा ४४ से ४७ तक याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद,

ख. बालकाण्ड दोहा १०४ से १२० तक : शिव-पार्वती संवाद;

ग. बालकाण्ड में दोनों संवादों के निर्देश;

घ. अरण्यकाण्ड के ७वें दोहे से लंकाकाण्ड तक;

ङ. उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध दोहा १ से ५२ तक,

३. रामचरितमानस

क. मानस-रूपक का पूर्व रूप, प्रस्तावना तथा मानस विषयक गौण प्रक्षेप;

ख. बालकाण्ड दोहा ४८ से १०३ तक : पूर्वलिखित शिव-विवाह;

ग. बालकाण्ड दोहा ३० से ४३ तक : प्रस्तावना उत्तरार्द्ध;

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार मानस-रचना के तीन स्तर इस प्रकार रहे होंगे—

१. प्रथम पाण्डुलिपि : पृथ्वी की विनय से प्रारम्भ कर बालकाण्ड का उत्तरार्द्ध। इसमें वक्ता मात्र कवि रहा होगा।

२. द्वितीय पाण्डुलिपि : बालकाण्ड की प्रथम ३५ चौपाइयों के अतिरिक्त शेष सभी चौपाइयाँ। इसमें वक्ता याज्ञवल्क्य, शिव और तदनन्तर काकभुशुण्डि रहे होंगे

३. तृतीय पाण्डुलिपि : ग्रन्थ की प्रारम्भिक ३५ चौपाइयाँ ।

डॉ० वोदवील डॉ० गुप्त की प्रथम पाण्डुलिपि से लगभग सहमत हैं, पर वे प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध के २६ दोहों तथा अरण्य के ६ दोहों को भी उसका अश मानती हैं। वे द्वितीय पाण्डुलिपि मे शिव-पार्वती सवाद से लेकर उत्तरकाण्ड के ५२ दोहों तक समस्त सामग्री सम्मिलित मानती हैं। तृतीय पाण्डुलिपि में वे भुशुण्डि संवाद (दोहा ५२ से १३० तक), शिवचरित (दोहा ४४ से १०४ तक) तथा प्रस्तावना उत्तरार्द्ध (दोहा ३० से ४३ तक) रखती हैं। डॉ० गुप्त के ठीक उल्टे क्रम से वे बालकाण्ड की प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध को प्रथम पाण्डुलिपि का तथा उत्तरार्द्ध को तृतीय पाण्डुलिपि का अश मानती है।

इस प्रकार मानस का शिवचरित (बालकाण्ड दोहा ४८ से १०३ तक) प्राथमिक स्तर पर कवि का उद्दिष्ट नही था। डॉ० बुल्के तथा डॉ० वोदवील ने उसे तृतीय पाण्डुलिपि की रचना माना है, परन्तु डॉ० गुप्त की यह दूसरी पाण्डुलिपि भी अन्यों को मान्य तीसरी पाण्डुलिपि जैसी ही है क्योंकि वे तीसरी पाण्डुलिपि में मानस की प्रस्तावना मात्र रखते हैं। ग्रन्थ समापन के समय तुलसी उसमे शिवचरित को भी सम्मिलित करने का लोभ सवरित नही कर सके और उन्होने रामकथा का वर्णन करने के पूर्व उसको भी संयोजित कर लिया।

शिवचरित की रचना का स्वतन्त्र अस्तित्व उसके काव्यत्व तथा फलश्रुति से भी प्रमाणित हो जाता है। काव्यत्व की दृष्टि से उसकी सपर्थ शब्द-रचना, बरात का स्वभाव-वर्णन, लोक-रीति का ज्ञान, लोक-चित्त को आकर्षित करने की क्षमता, हास्य की अवतारणा आदि उसे उत्कृष्ट काव्य की श्रेणी मे रखने को पूर्ण समर्थ है। समापन मे तुलसी ने कहा है—

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्म प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मै वृषकेतु सुत कर चरित सछेपहि कहा ।।
यह उमा सभु बिबाहु जे नर-नारि कहहिं जे गावही ।
कल्यान काज बिबाह मगल सर्वदा सुखु पावहीं ।।

अतः डॉ० बुल्के की इस धारणा को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है कि तुलसी ने मानस की तृतीय पाण्डुलिपि मे पूर्वलिखित शिवचरित को सगुफित किया होगा।

१०. शिव-उमा संवाद को मानस का एक घाट बनाना

रामचरितमानस के मूल अधिष्ठाता शिव थे, जिन्होंने उसे उमा (१।२०।३; १।३५।११), लोमश (७।११३।११) तथा काकभुशुण्डि (१।३०।४) को सुनाया था।

तुलसी ने उसे अपने गुरु से प्राप्त किया (१।३०क) और ग्रन्थ-रचना के समय उसे कई संवादों में प्रस्तुत किया है। यह सवाद हैं—

१. शिव-पार्वती सवाद;
२. काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद;
३. याज्ञवल्क्य-भारद्वाज सवाद और
४. तुलसी-सन्त सवाद।

यही चार सवाद मानस के चार घाट है—

सुठि सुन्दर सवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥—मानस १।३६

चारो संवाद क्रमशः ज्ञान, उपासना, कर्मकाण्ड तथा दैन्यता रूप हैं। शिव उमा, लोमश तथा भुशुण्डि को रामकथा दे ही चुके थे और पुनः भुशुण्डि से गरुड़ तथा याज्ञवल्क्य ने वह प्राप्त कर ली थी। एक बार लोमश ने भी काकभुशुण्डि को रामकथा सुनाई थी। यदि तुलसी चाहते तो शिव-उमा सवाद का उल्लेख मात्र करके मानस-रचना कर सकते थे। शिव द्वारा लोमश, लोमश द्वारा काकभुशुण्डि (१।११३।६-१०) और अगस्त्य (१।४८।३) तथा काकभुशुण्डि (७।५७) द्वारा शिव का सुनाने का उल्लेख है ही। परन्तु अध्यात्मरामायण के शिव-पार्वती सवाद के समान उन्होंने रामकथा के अधिष्ठाता शिव के संवाद को रखना आवश्यक माना।

११. तुलसी द्वारा शिव की गुरु रूप में स्वीकृति

कवितावली (७।१५१) में शिव-स्तुति करते हुए तुलसीदास ने कहा है—

सब विधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसीदास-ससय समन।

यहाँ शिव को सर्वसमर्थ तथा महामहिम मानना तो उपयुक्त लगता है परन्तु तुलसीदास के संशयों का शमनकर्ता होना विचारणीय है। प्रस्तुत सन्दर्भ में रामचरित-मानस की कतिपय अर्धालियाँ द्रष्टव्य हैं—

सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ ॥
भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ॥
—१।१५।७-६

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी ॥
—१।३६।१

अर्थात् १. शिव की तुलसी पर अनुकम्पा है और वे रामकथा को आनन्द तथा मंगलमय बना देंगे; २. तुलसी रामकथा का वर्णन शिव-पार्वती के स्मरण तथा उनके

प्रसाद पाकर कर रहे है; ३. शिव की कृपा से तुलसी की रचना पूर्णिमा के समान प्रकाशमयी होगी; ४. तुलसी के हृदय में रामचरितमानस के प्रणयन की प्रेरणा शिव की अनुकम्पा से जाग्रत हुई। यहाँ पर शिव को इतना महत्व देने का क्या कारण हो सकता है। रचना में रामकथा का वर्णन है, राम की अनुकम्पा होनी चाहिए। तुलसी का शिव से क्या सम्बन्ध है जो वे शिव से प्रेरणा पाकर उन्ही के स्मरण, अनुग्रह तथा विश्वास से रचना कर रहे है और शिव ही तुलसी के संशयो का समाधान करते है। कार्य के पूर्व स्मरण तथा विश्वास इष्ट या गुरु का किया जाता है, अनुकम्पा इष्ट या गुरु की स्वय पर होती है और संशय का निवारक एकमात्र गुरु होता है। शिव तुलसी के क्या है, यह देखना है। वे कहते है—

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबन्धु दिनदानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के ॥
—मानस १।१५।३-४

पाहि भैरव रूप राम रूपी-रुद्र, बन्धु, गुरु, जनक, जननी, विधाता ॥
—विनयपत्रिका ११।८

यहाँ तुलसी ने शिव से गुरु, पिता, माता, बन्धु तथा स्वामी का सम्बन्ध माना है। इसका यह अर्थ तो है ही कि वे तुलसी के सर्वेसर्वा और हर प्रकार से हितैषी है। परन्तु क्या शिव से उनका कोई सम्बन्ध घनिष्ट या प्रमुख भी है। हनुमानबाहुक में मिलता है—

सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै।
मानस बचन काय सरन तिहारे पाँय,
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै ॥—छन्द ४३

• कई बातें कहते समय जो बात पहले कही जाती है वह प्रायः अधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय होती है। मानस में तुलसी के मन ने शिव से सर्वप्रथम गुरु का सम्बन्ध माना है जो प्राथमिकता के आधार पर अधिक महत्व रखता है और इस सम्बन्ध की पुष्टि हनुमानबाहुक के कथन से भी हो जाती है। मानस की चौपाई के चतुर्थ चरण का भाव बाहुक के छन्द के दूसरे चरण के समान है। हनुमानबाहुक कवि के अन्तिम काल की रचना है, जब वह बाहुपीड़ा से पीड़ित थे। १६३१ वि० से मानस की रचना से अब तक लगभग ५० वर्ष बीत चुके थे। इस मध्य तुलसी के सभी सम्बन्धो का स्थिर हो जाना आवश्यक था और यह सत्य है कि शिव के प्रति स्थापित उनका प्रारम्भिक सम्बन्ध अन्त तक दृढ बना रहा।

रामचरितमानस प्रारम्भ करते समय तुलसी ने पहले वाणी-विनायक का स्तवन किया है। काव्य-प्रणयन मे रत हो रहे है इसलिए वाणी या सरस्वती का मंगलदायक होना आवश्यक है और गणेश विघ्नविनाशक है। इसके बाद पार्वती और शिव की श्रद्धा तथा विश्वास के रूप मे स्तुति है। तीसरे श्लोक मे तुलसी गुरु की वन्दना करते हैं—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

प्रथम चरण मे गुरु की तुलना के लिए तुलसी को कोई लौकिक उपमान उपयुक्त नही लगा और द्वितीय चरण का विशेषण लौकिक गुरु का न होकर शिव पर ही घटित होता है—जिनके आश्रय से वक्र चन्द्रमा भी वन्दित होता है। यदि इस चरण को देखे तो उसमे शिव की ही स्तुति है। अन्ततः यहाँ पर प्रधानता शिव की ही हो गई है। आगे गुरु-वन्दना मे एक सोरठा है। मुद्रित प्रतियों मे उसका पाठ है—

बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुञ्ज, जासु बचन रविकर निकर॥

यहाँ गुरु को हरि रूप माना है, जबकि ऊपर संस्कृत-श्लोक में 'शंकररूपिणम्', जो परस्पर विरोधमूलक है। प्राथमिकता के आधार पर पूर्व-कथन अधिक महत्त्वपूर्ण है और उसकी पुष्टि शिव को गुरु मानने विषयक अन्य कथनों से भी हो जाती है।

ऊपर के सोरठो को देखते हुए प्रस्तुत सोरठे की अतुकान्तता पर भी ध्यान जाता है। शेष चारो सोरठो मे अन्तिम पद तुकान्त है—बदन-सदन, गहन-दहन, नयन-मयन, करुना अयन-मर्दन मयन। फिर यहाँ दूसरे तथा चौथे चरण के तुकान्त होने की धारणा उत्पन्न होती है, जिसके अनुसार 'हर' पाठ होना चाहिए। इण्डियन प्रेस (प्रयाग) से प्रकाशित रामचरितमानस तथा १८७० और १८७८ वि० की दो पाण्डु-लिपियो में यहाँ 'हर' पाठ ही दिया है। इससे गुरु-वन्दना वाले संस्कृत श्लोक से साम्य हो जाता है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
और— बन्दौ गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हर।

यहाँ गुरु के वचनों को महामोह रूपी अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है। कुछ ऐसी ही शब्दावली का प्रयोग विनयपत्रिका के शैव स्तोत्रो में हुआ है—

---

१. तुलसी सन्दर्भ, पृ० १४६ की दूसरी पादटिप्पणी;

मोह-निहार-दिवाकर संकर ।—९।४
मोह-तम-तरणि हर रुद्र शंकर ।—१०।१
मोह-तम-भूरि-भानुं ।—१२।४
अहंकार निहार उदित दिनेस ।—१३।४

इससे यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि मूल में तुलसी को 'कृपासिन्धु नर रूप हर' पाठ ही अभिप्रेत था। सम्भव है बाद में लौकिक गुरु के नरहरिदास नाम के आधार पर उन्होंने 'हरि' पाठ रख दिया हो।

शिव रामकथा के अधिष्ठाता हैं और सर्वप्रथम उन्होंने इसे प्रकाशित किया था। तुलसी उसका वर्णन कर रहे हैं इसलिए गुरु-शिष्य सम्बन्ध हो ही गया। रामचरितमानस के प्रमुख वक्ता शिव होने से भी यह सम्बन्ध आवश्यक था। पीयूषकार के अनुसार गुरु भवसागर से पार कराता है और मानस के उत्तरकाण्ड में 'गुणागार संसारपार नतोऽहं' (दोहा १०८ के पूर्व रुद्राष्टक का दूसरा चरण) कहा गया है, जिससे तुलसी का शिव-शिष्य होना सिद्ध होता है।[1] भारतीय मनीषा में गुरु को भगवान् के तुल्य माना है। अज्ञान का निवारण करने के लिए परमेश्वर तथा गुरु में समान श्रद्धा आवश्यक है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥—श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।२३

और तुलसी राम तथा शिव में कोई अन्तर नहीं रखना चाहते है, इसलिए यह सम्बन्ध-स्थापन स्वाभाविक है।

मानस की रचना के विषय में मूलगोसाईंचरित में कई रोचक तथ्यों का समावेश है। उसके अनुसार तुलसी ने रामकथा की रचना संस्कृत में प्रारम्भ की थी, परन्तु दिन में जो रचना करते थे, रात में वह नष्ट हो जाती थी। इस पर शिव ने उन्हें 'निज बोलि' में काव्य-रचना का स्वप्न दिया और पार्वती के साथ साक्षात् प्रकट होकर तुलसी को आदेश दिया कि वे अवध में रहकर 'भाषा' में काव्य-रचना करें। उन्होंने कहा कि मेरे पुण्य प्रसाद से तुम्हारी काव्यकला सामवेद के समान सफल होगी।[2] शिव से आदेश पाकर तुलसी ने अवध में मानस की रचना की और फिर काशी में उसे शिव-पार्वती को सुनाया। पाठ समाप्त कर रात को प्रति शिवलिंग के पास रख दी गई। शिव ने उसका अनुमोदन किया और प्रातःकाल जब मन्दिर के कपाट खुले तो प्रति पर दिव्याक्षरों में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' लिखा पाया गया।[3]

---

१. मानस-पीयूष, बालकाण्ड (प्रथम भाग), पृ० ७२
२. गोसाईंचरित, परिशिष्ट, पृ० ३८७, ३७वें दोहे के ऊपर की चौपाइयाँ;
३. वही, पृ० ३९०, दोहा ४७ तथा छन्द ६

तुलसी पर शिव-अनुग्रह की दो घटनाओं का विवरण गोसाईंचरित में भी मिलता है। पहली के अनुसार तुलसी के काशी आ जाने पर स्थानीय विद्याधर पण्डित की प्रतिष्ठा कम हो गई। इससे वह तुलसी से ईर्ष्या रखने लगा और उसने तुलसी को मारना चाहा। एक दिन जब वह दुष्टों को लेकर मारने पहुँचा तो गदाधारी व्यक्ति को तुलसी का रक्षक पाकर भाग आया। तब उसने तुलसी से काशी के परित्याग का वर माँग लिया। काशी से प्रयाण के पूर्व तुलसी ने शिव का दर्शन किया और चित्रकूट को चल दिए। इसी समय जब दुष्ट लोगों ने विश्वेश्वर के मण्डप में जाना चाहा तो मण्डप के द्वार अकस्मात् बन्द हो गए और आकाशवाणी हुई कि तुलसीदास को वापिस बुला लो अन्यथा हरि-भक्त के अपमान का तुम्हें प्रलय सदृश घोर दण्ड मिलेगा।[1] चित्रकूट-गमन-प्रसंग में कहा है कि नीमसार से वापिस आकर तुलसीदास बहुत समय तक काशी में रहे। जब हनुमान की आज्ञा से वे चित्रकूट को चलने लगे तो शिव ने दण्डी का रूप धारणकर उन्हें रोकना चाहा। तुलसीदास ने कहा कि मैं प्रभु की आज्ञा से जा रहा हूँ। तब शिव ने ध्यान लगाकर यथार्थ स्थिति जान ली और प्रत्यक्ष दर्शन देकर शीघ्र वापिस आने का आदेश दिया।[2]

इन अलौकिक घटनाओं में भले ही सत्यता का अभाव हो पर इतना तो मानना पड़ेगा कि इनके रचयिता तुलसी का शिव से घनिष्ट सम्बन्ध मानते थे। यह सम्बन्ध भी गुरु-शिष्य जैसा ही है। गोसाईंचरित के चित्रकूट-गमन-प्रसंग में जब तुलसी प्रभु-आज्ञा से चित्रकूट जाने की बात करते हैं तो शिव सब कुछ जानकर गुरुवत् उसका अनुमोदन कर देते हैं।

इसी प्रकार की एक घटना गौतमचन्द्रिका में भी मिलती है जिसमें तुलसी स्वयं अपने को शिव का शिष्य बताते हैं। तुलसी की कीर्ति एवं कृत्यों से आकर्षित होकर भक्त लोग उनके पास विद्यार्जन तथा मन्त्र लेने के लिए आने लगे। इन समागतों को तुलसी का उत्तर होता था—

मन्त्र न जन्त्र न तन्त्रबल, विद्या रामअधार।
तुलसी चेरो जगत्गुरु संकर के दरबार॥[3]

शिव को जगद्गुरु मानस में भी कहा गया है—

---

१. गोसाईंचरित, काशी खण्ड, १३वाँ प्रसंग;

२. वही, चित्रकूट खण्ड, २०वाँ प्रसंग,

३. गौतमचन्द्रिका में तुलसीदास का वृत्तान्त (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, २०१२ वि०, वर्ष ६०, अंक १ का अभिमुद्रण), पृ० १७.

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना ।—१।१११।५

फिर तुलसीदास भी तो जगत् के ही एक अकिंचन् जन हैं ।

इस प्रकार तुलसी-साहित्य मे शिवत्व का सयोग आकस्मिक न होकर उसकी गहन परिव्याप्ति है। इसके रूप भी विभिन्न है। जहाँ तुलसी ने वैष्णव ग्रन्थ के समानान्तर शैव ग्रन्थ की रचना की है, वही वैष्णव ग्रन्थ रामचरितमानस में शैव आख्यानों को सगुम्फित कर उन्हे रचना का अभिन्न अग बना दिया है। उनके काव्य मे शैव उपमान, शैव अन्तर्कथाएँ तथा शैव अभिधान इतने सरल स्वाभाविक रूप में आये हैं जैसे कोई शैव हृदय उनका प्रयोग करेगा। शिवपुराण का तुलसी पर इतना गहन प्रभाव देखकर लगता है कि उसका उन्होने एकाधिक बार अध्ययन किया होगा क्योंकि शिवचरित तथा नारदमोह के प्रसग में कतिपय स्थल जिस प्रकार से शिवपुराण के अक्षरश अनुवाद हैं वह तभी सम्भव है जब या तो मूल सामने रखकर लिखा जाये या वह अश कण्ठस्थ हों। कथा के प्रमुख पात्र एक साथ शैव-वैष्णव होकर समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करते हैं और स्वयं तुलसी ने वैष्णव स्तुतियों के साथ शैव स्तुतियों की रचना तथा शिव को गुरु मानकर अपने उर्वर कवि हृदय से सहिष्णुता का अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया है।

तुलसी-साहित्य में शिव का स्वरूप एवं उनकी स्थिति

वातुल शुद्धागम के अनुसार शैव सिद्धान्तों में तीन तत्वो—शिव, सदाशिव तथा महेश की मान्यता है। इन्हीं को क्रमशः ब्रह्म के निश्कला, सकला-निश्कला तथा सकला अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल सूक्ष्म और स्थूल अथवा तत्व, प्रभाव और मूर्ति स्वरूप कहा जाता है। निश्कला रूप में ब्रह्म का न आदि है न अन्त। वह निस्सीम, निराकार तथा सर्वशक्तिसम्पन्न परब्रह्म है। ससार के समस्त जीवों का तिरोधान उसी में होता है। परन्तु सृष्टि, स्थिति तथा लय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध महेश का है। यह एकमुखी, त्रिनेत्र तथा जटाजूट से सुजज्जित हैं। पद्मासन पर खडे महेश दो हाथों में मृग तथा परशु धारण किए है तथा उनके शेष दो हाथ अभय और वरद मुद्राओं में है। भक्तो के लिए यह स्थानक, आसनस्थ, नृत्तरत, वाहनारूढ, उग्र, सौम्य आदि विविध लीला-रूप धारण करते हैं। महेश की पच्चीस लीलामूर्तियाँ निम्नलिखित हैं—

१ चन्द्रशेखर मूर्ति
२. उमासहित मूर्ति
३. वृषभारूढ़ मूर्ति
४ नृत्त मूर्ति
५. कल्याणसुन्दर मूर्ति
६. भिक्षाटन मूर्ति
७. कामदहन मूर्ति
८. कालान्तक मूर्ति

९. त्रिपुरान्तक मूर्ति
१०. जलन्धरवध मूर्ति
११. गजारि मूर्ति
१२. वीरभद्र मूर्ति
१३. शंकरनारायण मूर्ति
१४. अर्धनारीश्वर मूर्ति
१५. किरात मूर्ति
१६. कंकाल मूर्ति
१७. चण्डेशानुग्रह मूर्ति
१८. विषापहरण-मूर्ति
१९. चक्रदान मूर्ति
२०. विघ्नेश्वरानुग्रह मूर्ति
२१. सोमास्कन्द मूर्ति
२२. एकपाद मूर्ति
२३. सुखासन मूर्ति
२४ दक्षिणा मूर्ति
२५ लिंगोद्भव मूर्ति

इन्हीं महेश्वर की नासिका से वायु, मुख से अग्नि, ग्रीवा से गणेश, वक्ष से षण्मुख, नाभि से पचास करोड़ देवों, केशों से असंख्य करोड़ ऋषियों, तीन नेत्रों से सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि और एक सहस्रवें भाग से रुद्रदेव का आविर्भाव हुआ है। एक करोड़वें रुद्र भाग से विष्णु तथा एक करोड़वें विष्णु भाग से ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए हैं।[1]

स्वरूप-निर्माण का प्रस्तुत विवरण दर्शन विशेष से सम्बद्ध होने के कारण सर्वमान्य नहीं है। बहुप्रचलित मान्यता तथा लक्षण ग्रन्थों के अनुसार शैव प्रतिमाएँ दो प्रकार की हैं—लिंग प्रतिमा तथा रूप प्रतिमा। लिंग प्रतिमाओं के चल, मृण्मय, लौहज, रत्नज, दारुज, शैलज, क्षणिक, स्वयम्भू, दैविक आदि विविध भेद हैं। एक अन्य प्रकार से उन्हें यथार्थ लिंग और मुखलिंग नाम से दो वर्गों में रख सकते हैं। मुखलिंग एक, तीन, चार और पाँचमुखी होते हैं। रूप प्रतिमाएँ मुद्रा के आधार पर शान्त या सौम्य और अशान्त या उग्र दो प्रकार की हैं। इनके अवान्तर भेद निम्न हो सकते हैं—

अ. शान्त या सौम्य शैव प्रतिमाएँ (स्वरूप)

क. अनुग्रह मूर्तियाँ

१. विष्णवानुग्रह या चक्रदान मूर्ति;
२. अर्जुन अनुग्रह या किरातार्जुनीय मूर्ति;
३. रावणानुग्रह मूर्ति;
४. चण्डेशानुग्रह मूर्ति,
५. नन्दीशानुग्रह मूर्ति;
६. विघ्नेश्वरानुग्रह मूर्ति;

---

१ एलीमेन्टस आफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी द्वितीय भाग, द्वितीय खण्ड, पृ० ३६१-३७०

ख. नृत्त मूर्तियाँ .

७. नादान्त (नटराज) मूर्ति;

८. ललित मूर्ति;

९. ललाटतिलक मूर्ति,

१०. कटिसम मूर्ति,

११ तालसस्फोटित मूर्ति;

ग. दक्षिण मूर्तियाँ :

१२. योग दक्षिण मूर्ति;

१३. ज्ञान दक्षिण मूर्ति;

१४ व्याख्यान दक्षिण मूर्ति,

१५. वीणाधर दक्षिण मूर्ति,

घ. विशिष्ट मूर्तियाँ :

१६. गगाधर मूर्ति;

१७ अर्धनारीश्वर मूर्ति,

१८ हरिहर मूर्ति;

ड. सामान्य मूर्तियाँ :

१९. उमा सहित मूर्ति;

२०. चन्द्रशेखर मूर्ति,

२१ आलिगन चन्द्रशेखर मूर्ति,

२२. वृषवाहन मूर्ति,

२३. सुखासन मूर्ति,

२४ उमा-महेश्वर मूर्ति,

२५ सोमा-स्कन्द मूर्ति;

२६. कल्याणसुन्दर मूर्ति;

२७ सदाशिव मूर्ति आदि।

आ अशान्त या उग्र शैव प्रतिमाएं (स्वरूप)

क. संहार मूर्तियाँ :

१. कामान्तक मूर्ति;

२. त्रिपुरान्तक मूर्ति;

३ अन्धकान्तक मूर्ति,

४. जलन्धर-वध मूर्ति;
५. वीरभद्र मूर्ति,
६. ब्रह्माशिरश्च्छेदक (कहाम या भिक्षाटन) मूर्ति;
७. मल्लारि शिव मूर्ति,
८. कालारि मूर्ति;
९. गजान्तक मूर्ति,
१०. शरभेश मूर्ति;

ख. भैरव मूर्तियाँ :

अ. ब्राह्मणों के अनुसार बाल रुद्र सोकर जागने पर नाम के लिए रोये। बार ऐसा करने से उनके आठ नाम निम्न हैं—

१. रुद्र	५. अशनि
२ शर्व	६. भव
३. पशुपति	७. महादेव
४. उग्र	८. ईशान

आ. अपराजितपृच्छा (सूत्र २१२) ने एकादश रुद्रों के लक्षणों में उपरोक्त रुद्र के ईशान और भव के अतिरिक्त नौ नाम भिन्न दिये हैं—

१. सद्योजात	६. विजय
२. अघोर	७. किरणाक्ष
३. वामदेव	८. अघोरास्त्र और
४. तत्पुरुष	९. श्रीकण्ठ
५. मृत्युञ्जय	

इ. आगमों में निम्न आठ वर्गों के अन्तर्गत चौसठ रुद्रों के नाम मिलते हैं। रुद्र योगिनियों के अधिपति हैं—

१. असितांग समूह	५. उन्मत्त भैरव समूह
२. रुरु समूह	६. कपाल भैरव समूह
३. चण्ड समूह	७ भीषण समूह
४. क्रोध समूह	८. संहार समूह

इनके अतिरिक्त रौद्र पाशुपत, विरूपाक्ष, महाकाल, बटुक भैरव आदि मु
अन्य उग्र शैव विग्रह भी मिलते हैं

• तुलसीदास शिव के किन-किन स्वरूपों से परिचित थे यह जानने के निम्न माध्यम हो सकते हैं—

क. तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शिव के पर्याय;
ख. सन्दर्भित अन्तर्कथाएँ;
ग वर्णन मे प्रयुक्त शिव के विशेषण;
घ. शिव का स्वरूप-वर्णन ।

तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शिव के पर्याय

तुलसी-साहित्य मे शिव के लगभग पैंसठ पर्याय मिलते हैं। इनमें से सर्वाधिक तैंतीस पर्याय अकेले रामचरितमानस में प्रयुक्त हुए है । दूसरा स्थान विनयपत्रिका का है जिसमें पच्चीस और तीसरा स्थान कवितावली का है जिसमें चौबीस पर्यायो का प्रयोग हुआ है । वैविध्य की दृष्टि से पार्वतीमगल लघु कृति होते हुए भी उसमें प्रायः नवीन पर्याय आये है । इसमे कुल सत्तरह शैव पर्याय मिलते है, जिनमें से चन्द्रभूषण, नीलकण्ठ, ईशान, पशुपति तथा प्रमथनाथ का प्रयोग केवल इसी ग्रन्थ में हुआ है । यह सभी पर्याय निम्न वर्गों में आते है—

१. **कामारि** (रा० १।१२० क, ६। श्लोक १; वि० १०।६, ५०।६, ५४।३, ५५।१) : इस वर्ग में आने वाले अन्य पर्याय मन्मथारि, कामरिपु (गी० १।६३।१), मर्दनमयन (रा० १। सो० ४), अनगआराती (रा० १।१०८।७), मनोजनसावन (रा० १।५०।३) तथा मदनमदमोचन (रा० १।८६।१) हैं। तुलसी ने अन्तर्कथा के रूप मे कामदहन का उल्लेख करते हुए रामचरितमानस के प्रारम्भ में शिवचरित के अन्तर्गत इस पूरी कथा का वर्णन किया है। सम्भवतः नारी के प्रति उदासीन होने के कारण ऐसे पर्यायो की सख्या नौ है ।

कामदहन की कथा का सक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है ।

२ पुरारि (व० ५६, जा० ६३, क० १।१०, २।६ आदि) : इससे मिलते-जुलते दो अन्य नाम हैं—त्रिपुरारि (क० ६।१, ६।५६; वि० ६।४, १८।२) तथा त्रिपुरआराती (रा० १।५७।८) । शैव अन्तर्कथाओ का वर्णन करते समय इस आख्यान पर विचार हो चुका है ।

इन दोनो नामो से सम्बद्ध आख्यानों के आधार पर कामान्तक तथा त्रिपुरान्तक मूर्तियाँ बनाने का विधान है, जो शिव के उग्र स्वरूप के अन्तर्गत संहारमूर्तियो मे आती हैं ।

३. गौरीश (रा० १।१०४।४, ५।३३।२, ६।२८; गी० ५।२८।७) : यह ना तीन प्रकार के हैं—

क. शक्ति के उग्र रूप से सम्बद्ध—चण्डीश (क० ७।१८, ७।२१), चण्डीपति (क० ६।४१)।

ख. शक्ति पर स्वामित्वसूचक—गौरीश, गौरीनाथ (क० ७।१६६), भवानीनाथ (क० ७।१६६)।

ग. दाम्पत्यसूचक—यह भी दो प्रकार के हैं :

अ. सामान्य—गिरिजापति (वि० ६।१; जा० १) उमापति (वि० ४।४), उमावर (वि० ७।१)।

आ. शृंगारिक—गिरिजारमन (रा० १।१०३) तथा उमारमन (रा० १। सो० ४)।

यह नाम शिव के सौम्य स्वरूप से सम्बद्ध हैं। पार्वती को लेकर शिव की उमा-सहित, उमा-महेश्वर, कल्याणसुन्दर आदि मूर्तियां बनाने का विधान है। तुलसी ने पार्वती-मंगल का वर्णन मानस के अतिरिक्त पृथक् कृति में भी किया है, इसलिए सम्भव है कि वे कल्याणसुन्दर मूर्ति से भी परिचित रहे हों। कल्याणसुन्दर की स्थानक मूर्तियों में ब्रह्मा को पौरोहित्य कार्य करते प्रदर्शित किया जाता है और अन्य देवतागण पृथ्वी तथा आकाश से मंगल-कार्य देखते मिलते हैं। तुलसीदास द्वारा वर्णित शिव-पार्वती विवाह में भी ब्रह्मा वैवाहिक कृत्यों की व्यवस्था करते हैं और देवगण बारात में उपस्थित होते हैं।

४. शशिशेखर (पा० ह० ५, मं० ६६; क० ७।१६६) : तुलसी साहित्य में शिव के सौम्य स्वरूप चन्द्रशेखर के अन्य पर्याय चन्द्रभूषण (पा० ह० १), चन्द्रमौलि (रा० १।६४।७), चन्द्रअवतंश (रा० १।८८।६), चन्द्रललाम (वि० १५७।२) तथा चन्द्रमाललाम (क० १।६) हैं। जटामुकुट में चन्द्रमा धारण करने के कारण उन्हें इस नाम से पुकारा जाता है। इस स्वरूप की मूर्तियां दक्षिण भारत में अधिक मिलती हैं, जिनमें चतुर्भुजी शिव को मृग तथा परशु धारण किए दिखाया जाता है। उनके शेष दो हाथ अभय और वरद मुद्रा में रहते हैं। उनके ध्यान मन्त्र का एक अंश है—परशुमृगवराभीतीहस्तम्। तुलसीदास ने शिव को परशु या मृगधारी कहीं नहीं कहा है। इससे प्रतीत होता है कि वे शिव के चन्द्रधारी स्वरूप से परिचित होते हुए भी उसके मूर्तिशास्त्रीय लक्षणों से अनभिज्ञ थे।

५ शूलपाणि (द० १२, १३ शूल धारण करने के कारण शिव को शूल

पाणि, शूलधर (क० ७।१४६), शूलिन् (वि० १२।४) आदि नामों से अभिहित किया जाता है। तुलसीदास ने इन्हीं तीन नामों का प्रयोग किया है।

६. गिरीश (पा० २; गी० १।२।२४) : कैलासवासी होने के कारण शिव गिरीश कहलाते हैं। रावण-अनुग्रह की सौम्य मूर्तियो में उन्हे पार्वती तथा परिचरों के साथ कैलास पर आसीन दिखाया जाता है। तुलसी ने शिव को गिरिनाथ (रा० १।४८।४) भी कहा है।

७. वृषभेश (वि० ११।५) : शिव का वाहन वृषभ है और उस पर आरूढ़ होने के कारण शिव वृषभेश कहलाते हैं। इससे सम्बद्ध वृषवाहन मूर्ति शिव के सौम्य स्वरूपों में आती है।

इन प्रमुख नामों के अतिरिक्त तुलसी द्वारा प्रयुक्त अन्य शैव पर्यायों को स्वरूप के आधार पर निम्न दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

क. रुद्रतासूचक

१. रुद्र (दो० १४२; रा० १।८६।४ आदि)।
२. पशुपति (पा० ह० १२)।
३. भव (रा० १।४।२ आदि)।
४. शर्व (वि० ५३।१, ५७।५)।
५. ईशान (पा० ६४, ह० १३)।
६. महादेव (क० ७।१६७ आदि)।
७. वामदेव (ह० ६, १४, पा० २६, ५२ आदि)।
८. भैरव (वि० ११।१; क० ७।१५२)।

इनमें से प्रथम छः स्वरूपो की गणना अष्ट रुद्रों में की जाती है और वामदेव को अपराजितपृच्छा के एकादश रुद्रों में सम्मिलित किया गया है।

ख. सौम्यतासूचक

१. सदाशिव (वि० ३।३; गी० १।१२।४)।
२. गंगाधर (वि० १२।३)।

प्रस्तुत नाम ऐसे हैं जिनके मूर्ति-विधान का शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थो में वर्णन किया गया है और इन स्वरूपों की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त तुलसी द्वारा प्रयुक्त कुछ शैव नाम ऐसे हैं जिनके मूर्तिकरण के लक्षणों का अभाव है।

अ. महत्तासूचक

१. महेश (ह० १७, ४३; ब० १५, ५३; वै० ३४, क० १।१६; वि० ६४।२ आदि) : आगमों में महेश त्रितत्वों मे से एक हैं।

२. सुरनाथ (रा० १।१०६।८) : यह महादेव का पर्याय हो सकता है।
३. सुरराज (रा० १।११०।३) : सामान्यतः इसका प्रयोग इन्द्र के लिए होता है।
४ काशीपति (वि० १३:६) : शिव काशी के स्वामी हैं, इस आधार पर यह अधिकारसूचक नाम है।
५ विश्वनाथ (क० ७।१८२ आदि) :
६. ईश (वि० १७।१, २०।१, क० ५।३२ आदि) :
७. भवश (क० ७।१५२, १६१, १६२ आदि) :

अष्ट रुद्रों में एक नाम भव का है, परन्तु सम्भवतः तुलसीदास का अभिप्राय उससे न होकर सृष्टि के अधिपति से रहा लगता है।

आ. कल्याणसूचक

१ शिव (गी० ५।४१।२, वि० ६३।८; रा० १।१५।८ आदि) :
२ शम्भु (रा० १।१।३, दो० २३७; रा० प्र० १।२।२; गी० १।२५।६ आदि) :
३. शकर (ह० ४४, दो० ६६, १०१ आदि) :

इ स्वभावसूचक

१. भोलानाथ (ह० ३४; क० ७।१६६) : सौम्य।
२. आशुतोष (रा० २।४४।८) : सौम्य।
३. हर (ह० ४, ३३, ४२ आदि) : सृष्टि-सहारक के रूप मे रौद्र।
४. हर्ता (ह० ३०) :

ई. आकृति-आधृत

१. पंचमुख (ह० ३) : शिव के मुखलिंगो में एक भेद यह भी है, जिसमें पाँच मुखों के नाम सद्य, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान हैं।[१]
२. त्रिलोचन (क० ७।१४६, १५० आदि) : कामदहन के समय शिव ने ललाट के तृतीय नेत्र से अग्नि-निक्षेप किया था। इस प्रकार इसका सम्बन्ध शिव के कामान्तक स्वरूप से है।
३. नीलकण्ठ (पा० २७) : शिव ने समुद्रमथन से उत्पन्न विष का पान करते समय उसे कण्ठ में रोक लिया था। इससे कण्ठ नीलवर्ण हो गया था।

१ अपराजितपृच्छा, सूत्र २०४।१४ १६

आगमो में वर्णित महेश की पच्चीस लीलामूर्तियों में इसे विषापहरणमूर्ति कहा जाता है।

ख. अभिधान-आधृत

१. पिनाकी (क० ७।१५३) : शिव द्वारा गृहीत पिनाक के आधार पर।

२. भुजगराज भूषण (रा० १।१०६।८) : शिव नागो का ही ग्रैवेयक, भुजबन्ध आदि धारण करते हैं, इसलिए यह नाम दिया गया।

३. वृषकेतु (रा० १।२५ आदि) : शिव का वाहन वृषभ है और उनकी पताका पर भी इसीका निरूपण है। श्रीनगर के एस० पी० एस० संग्रहालय के एक हरिहर चित्र मे पताका पर वृषभ का स्पष्ट चित्रण है।

सन्दर्भित शैव अन्तर्कथाएँ

तुलसी साहित्य में उल्लिखित अन्तर्कथाओ मे से कामदहन, त्रिपुर-अन्धक तथा जलन्धर-वध, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, शिव के विषपान और ज्योतिर्लिंग के आधार पर क्रमशः कामान्तक, त्रिपुरान्तक, अन्धकान्तक, जलन्धरवधमूर्ति, वीरभद्र, विषापहरण, और लिंगोद्भव मूर्तियो के निर्माण का विधान मिलता है। इनकी कथाओं का उल्लेख किया जा चुका है। प्रथम पाँच कथाओं का सम्बन्ध शिव के रौद्र रूप से है। तुलसी के अनुसार शिव ने जिस विषम परिस्थिति में गरल-पान किया था उसके आधार पर उनका शिवत्व एव दयालु रूप प्रकाश में आता है। ज्योतिर्लिङ्ग शिव की महत्ता का परिचायक है।

मानस के शिवचरित तथा पार्वतीमंगल में तुलसीदास ने शिव-पार्वती परिणय का वर्णन किया है। तारकासुर के अत्याचारो से पीड़ित सृष्टि को परित्राण देने का एक ही उपाय था कि शिव से उत्पन्न पुत्र को सेनापति बनाकर देवता युद्ध करें। इस कार्य के लिए शिव का सहमत होकर उसे कार्यरूप में परिणत करना उनकी दयालुता का प्रमाण है। शिव द्वारा पार्वती के पाणिग्रहण पर आधारित मूर्ति को कल्याणसुन्दर नाम से बनाने का विधान है।

वर्णन में प्रयुक्त शैव विशेषण

तुलसीदास ने शिव के लिए जिन विशेषणो का प्रयोग किया है, वे तीन प्रकार के है—

१. निर्गुणात्मक,

२. सगुणात्मक,

३. निर्गुणात्मक-सगुणात्मक।

१. निर्गुणात्मक

सच्चिदानन्दघन (क० ७।१५०, वि० १०, १२),
अकल (वि० १०), निरुपाधि (वि० १०),
निर्गुण (वि० १०, १२, १३; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १),
निरंजन (वि० १०), ब्रह्म (वि० १०),
अज (वि० १०, १२; मानस ७।१०८, रुद्राष्टक ५),
निर्विकार (वि० १०, १२), सर्वव्यापक (वि० १०),
ज्ञान-विज्ञान रूप (वि० ११), (वेदातीत (वि० १२),
निर्मल (वि० १२), कालातीत (वि० १२),
निराकार (वि० १३; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २),
अविनाशी (रा० १।२६।१, १।४६।३),
निर्विकल्प (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १),
निरीह (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १), चिदाकाश (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १)
आकाशवास अर्थात् अनन्त (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १),
ओंकार (प्रणव) मूल (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २),
गिरा-ज्ञान-गोतीत (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २),
संसारपार (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २),
ब्रह्माण्ड रूप (वि० १०), संसार जिनका अंशमात्र है (वि० १०),
अखण्ड (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ५),
चिदानन्दसंदोह (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ६),
सर्वभूत-अधिवासी (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ६),
अन्तर्यामी (रा० १।५१।५) आदि।

२. सगुणात्मक

इन विशेषणों से शिव के जिन स्वरूपों का निर्माण होता है वे तीन प्रकार के हैं—

क. रौद्र

विशाल लाल नेत्र (क० ७।१५६; वि० १०)
भयंकर वेष (क० ७।१५०,१६०; वि० १२) ताण्डवकारी (वि० १०,११)
सृष्टि संहारक या प्रलयकारक (वि० १०,११)
उग्र (वि० १०) शर्व (वि० १०)
भीषणाकार (वि० ११) भयंकर (वि० ११)

महाकाल (वि० ११, १२)
प्रमथराज (वि० १३)
भूतनाथ (क० ७।१५२)
भीम (क० ७।१५१, १५२)
भयानक (क० ७।१५२)
भयभवन (क० ७।१५२)
भैरव (क० ७।१५२; वि० ११)
दुर्धर्ष (रा० १।८६।४)
प्रचण्ड (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ५)
विकराल भूत-वेताल-प्रेत-पिशाच प्रिय (क० ७।१५१,१५४, १६८, वि० ११)
आदि ।

ख. सौम्य

गंगाधर (क० ७।१४९,१५०,१५५,१५६; वि० १०,११,१२; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३)
बालचन्द्रधर (क० ७।१४९,१५६; वि० १०,११, रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३)
विषपायी (क० ७।१४९,१५०, १५२, १५७, १५८, १७०)
जनरंजक (क० ७।१५०,१५२)
कुन्द वर्ण (क० ७।१५०; वि० १०,१२)
इन्दु वर्ण (क०७।१५०;वि०१०,१२)
कर्पूरवर्ण (क०७।१५०; वि०१०,१२,१३)
शंख वर्ण (वि० १०,१२)
गौर वर्ण (क० ७।१५०,१५८; वि० ११, १२, १३)
हिमाचल सदृश गौर वर्ण (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३)
शिव (क० ७।१५०)
अभिरामधाम (क०७।१५०, १५२; वि० १०,११)
उमारमन (क० ७।१५१; वि० ११)
विषम भोजन (क० ७।१५१)
गुणभवन या गुणागार (क० ७।१५०; वि० ११)
भोले या भोलानाथ (क० ७।१५३, १५६, १६१, १६२, १६३, १६६)
दरिद्रशिरोमणि (क० ७।१५४)
घर में भाँगधारी (क० ७।१५४,१५५)
भाँगभक्षक (क० ७।१५६)
आँगन में धतूरा सम्पन्न (क० ७।१५४, १५५)
सुन्दर (क० ७।१५६)
भिखारी वेष (क० ७।१६०)
अशुभ देखने पर भी कल्याण राशि (वि० १०)
पार्वतीपति (वि० १२)
परम रम्य (वि० १२)
राजीव लोचन (वि० १२)
अर्धनारीश्वर (क० १४९, १५०, १५१, १६०; वि० १०)
प्रसन्न मुखाकृति (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ४) आदि ।

ग. सामान्य

यह विशेषण ऐसे हैं जिनका प्रयोग रौद्र तथा साम्य दोनों स्वरूपो मे किया जा सकता है ।

भस्मधारी (क० ७।१४६, १५१, १५२, १५५, १५८, १५६, वि० १०, ११)
सर्पधारी (क० ७।१४६-१५२, १५४, १५५, १५८, १५६; वि० ६-१२, रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३)
मुण्डलमालधारी (क० ७।१४६, १५१; वि० १०, ११; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ४)
डमरूधारी (क० ७।१४६, १५८, वि० ११)
कपालधारी (क० ७।१४६, १५१, १५५, १५८)
याचकप्रिय (क० ७।१५४) वरदायक (क० ७।१५५)
श्मशानवासी (क० ७।१५५, १५८; वि० ६) कौतुकी (क० ७।१५५)
करुणामय (क० ७।१५७; वि० ६, १०, ११)
वृषवाहनप्रिय (क० ७।१५८, १६०; वि० १०, ११)
भस्म की सम्पत्ति सम्पन्न (क० ७।१५८, १६०)
पिंगल जटाजूट (क० ७।१५६; वि० १०, ११)
शृङ्गी (क० ७।१५६)
दयालु (क० ७।१६०; वि० ३, ७, ६, १२, १३, रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ४)
दीनबन्धु (क० ७।१६०, वि० ३) विश्वनाथ (दो० २४०)
शरणागतवत्सल (वि० ६)
कोटि सूर्यसदृश शारीरिक तेज सम्पन्न (वि० १०; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ५)
श्रवणकुण्डलधारी (वि० १०, ११; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३)
अवधूत (वि० १०) बाणधारी (वि० १०, ११)
तलवारधारी (वि० १०, ११)
बाघम्बरधारी (वि० १०, ११; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ४)
गजचर्मधारी (वि० १०)
सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमान (वि० १०)
डमरूवादक (वि० १०) कैलासवासी (वि० १०, ११)
महाबलवान् (वि० ११) अति विशाल (वि० ११)
कुबेर के मित्र (वि० ११) ढालधारी (वि० १२)
सिद्ध-सनकादि-योगी-विधि-विष्णु से चरण-पूज्य (वि० १२)

ब्राह्मण-प्रिय (वि० १२) गुणनायक (वि० १३)
कामदाहक (क० ७।१४९, १५०, १५२, १६०, १६१, वि० ११)
त्रिपुरारि (क० ७।१४९, १५०, १५६, १६१; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ६)
त्रिलोचन (क० ७।१४९, १५०, १५९)
दिगम्बर (क० ७।१४९, १५०, १५१, १५३, १५४, १५९)
त्रिशूलधारी (क० ७।१४९, १६१, वि० १०, ११, १२; रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ५)
विषधारी (क० ७।१५१, १५४, १५७, १५९, वि० १०, १२)
सूर्य-चन्द्र-अग्निरूप नेत्र सम्पन्न (क० ७।१५२)
कल्याणधाम (क० ७।१५२)
पिनाकी (क० ७।१५३) बावले (क० ७।१५३, वि० ५)
नीलकण्ठ (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ४)
भावगम्य (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ५) आदि ।

३. निर्गुणात्मक-सगुणात्मक

इनका सम्बन्ध शिव के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों से हो सकता है ।
मोक्षदायक (क० ७ १५९, १६०; वि० ३, १०, ११, १२)
दारिद्र्यनाशक (क० ७।१६०)
अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के स्वामी (वि० ६)
मोहनाशक (वि० ६, १०, ११, १२, रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ६)
विज्ञानघन (वि० १०)
तज्ञ-तत्ववेत्ता (वि० १०, १२)
सर्वज्ञ (वि० १०, १२) यज्ञेश (वि० १०)
अच्युत (वि० १०) विभु (वि० १०)
ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि को शक्तिदायक (वि० १०)
सर्व उपकारी (वि० १०) अभयदायक (वि० ११)
डाकिनी-शाकिनी-खेचर-भूचर, यन्त्र-मन्त्र आदि अभिचारविनाशक (वि० ११)
भयानक कार्य करने वाले (वि० ११)
शेष, शारदा, नारद, निगम आदि जिनका गुणगान करते है (वि० ११)
कल्याणदायक (वि० १२; रा० १।४६।३)
अति सुलभ (वि० १२) अति दुर्लभ (वि० १२; रा० १।८६।४)
लोकनाथ (वि० १२) कलिकालमलनाशक (वि० १२)

सर्वसौभाग्यमूल (वि० १२) त्रिलोक के सिरमौर (क० ७।१५६)
शुद्ध भाव प्रिय (क० ७।१५६, १६०) सर्वसमर्थ (क० ७.१५१)
चतुर्फलदायक (क० ७।१५६, १५८ १६१)
दुख-भजक (क० ७।१५०, वि० ११,१२)
भव-भय-भजक (क० ७.१५१, १५२)
अकथ महिमायुक्त (क० ७।१५१) भूमिधर (क० ७ १५२)
भवेश (क० ७।१५२) कुयोगनाशक (क० ७.१५२)
प्रकृष्ट (रा० ७.१०८, रुद्राष्टक ५) अकाम (क० ७ १५०)
त्रिताप नाशक (रा० ७ १०८, रुद्राष्टक ५)
कल्पान्त (प्रलय) कारी (रा० ७.१०८, रुद्राष्टक ६)
सज्जनो को आनन्ददायक (रा० ७.१०८, रुद्राष्टक ६) आदि ।

शिव का स्वरूप-वर्णन

शिव के सम्बन्ध मे तुलसी की धारणा है कि वे 'साजु अमगल मंगल रासी' हैं। इसलिए कवितावली तथा विनयपत्रिका की स्तुतियों से शिव का जो स्वरूप निर्धारित होता है उसके अनुसार वे कुन्द-इन्दु-कर्पूर सदृश गौर वर्ण हैं। उनके सिर पर जटाजूट में गंगा, मस्तक पर त्रिनेत्र और कण्ठ में विष की नीलिमा, मुण्डमाल तथा व्याल हैं। वे भस्म, गजखाल और बाघम्बर धारण करते हैं। उनके हाथों में कपाल, डमरू, तलवार, शूल, धनुष-बाण तथा साथ में भूत-प्रेत-पिशाच रहते हैं। वृषभ उनका वाहन है और श्मशान तथा कैलास निवास स्थान। वे अर्धाङ्ग में पार्वती को भी धारण करते हैं। 'बिकट बेष' (क० ७।१५०; वि० १२), 'भयभवन' (क० ७।१५२), 'बावरे' (क० ७।१५३; वि० ५), 'भूत-बेताल सखा' (क० ७।१५४), 'भयंकर रूप' (क० ७।१६०), 'मसान निवासी' (वि० ६) तथा 'ब्याल नृकपाल माला' (वि० १०) धारण किए वे कल्याण राशि होते हुए भी अशुभ के समान दिखाई देते हैं।

तुलसीदास ने विनयपत्रिका तथा कवितावली के शिव-स्तवन के अतिरिक्त निम्न स्थलों पर शिव के बाह्य स्वरूप का स्वतन्त्र वर्णन किया है।

क. पार्वतीमंगल

१. वटु रूप शिव का तपस्यारत पार्वती के प्रति : नारद से प्रबोधित होकर पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करती हैं। तपस्या करते हुए दीर्घकाल हो जाने पर पार्वती की परीक्षा लेने शिव वटु वेष मे आते हैं। यहाँ उनको विचलित करने के लिए वटु ने शिव की ऐसी विशेषताओं का वर्णन किया है

उन्हें लोक में दूषण माना जाता है। बटु के अनुसार बावले शिव का स्वरूप निम्न-प्रकार है —

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं॥
भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिनि जोवहिं॥
भाँग धतूर अहार छार लपटावहिं।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं॥
× × हर मुख पंच तिलोचन।
बामदेव फुर नाम काम मद मोचन॥
नर कपाल गज खाल ब्याल विष भूषन।—मंगल ४६-५२

शिव का वेष अमंगलमय तथा अत्यन्त भयानक है। वे हर समय शशिकला की चिन्ता में निमग्न रहते हैं। भूत-प्रेत-पिशाच उनके गण है तथा वे स्वय वृषभ को वाहन बनाए हैं (–मंगल ५४-५५, हरिगीतिका ७)।

२. **पार्वती की तपस्या तथा निष्ठा से प्रसन्न हो शिव के साक्षात् प्रकट होने पर** : इस समय शिव की मुख मुद्रा मनमोहक थी। उनके नेत्र विशाल और कमनीय थे। गौर शरीर पर विभूति तथा दीर्घ ललाट पर चन्द्रमा शोभायमान था (–हरिगीतिका ८, मंगल ६७)।

३. **बरात के समय :** भूत-प्रेत तथा पिशाच शिव के गण है जिनके मुख तथा वेष विभिन्न प्रकार के हैं। इनके वाहन सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि हैं। वे कमठ पृष्ठ को खाल से मढ़कर उन्हें नगाडे के रूप में बजाते हैं और नर-कपाल में जल भरकर पीते-पिलाते हैं। इस समय शिव गज चर्म, सर्प तथा मुण्डमाल धारण किए हैं। शिव की इस बरात को देखकर अगवानी के लिए आए हिमगिरि के पक्षधर तथा उनके वाहन भयभीत हो गए। घर पहुँचकर बच्चे बताते हैं कि बावला वर वृषभ पर आरूढ़ है और भयानक भूत, प्रेत, वेताल उसके बराती हे (-मंगल ६२, ६८, ६६, १०३, १०४, १०६, हरिगीतिका १२)।

वर तथा बरात का ऐसा स्वरूप देखकर पार्वती की माँ अत्यन्त चिन्तित हैं और नारद को दोष दे रही हैं। उस समय हिमवान कहते हैं कि शिव की महिमा अगम्य है, जिसे वेद भी नहीं जानते।

४. **हिमवान के यहाँ शिव का परिवर्तित स्वरूप :** जब शिव के वर वेष के

देखकर विष्णु, इन्द्र आदि बराती मुँह फेरकर हँस रहे थे और नगर में कोलाहल हो रहा था तब शिव ने अपना स्वरूप बदल दिया । अब वे —

भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर ।
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन ।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ।। — मपा० १११-११२

इस प्रकार पार्वतीमंगल में शिव के दो स्वरूपों का निरूपण हुआ है :—

अ. नरकपाल, गजखाल, व्याल आदि बीभत्स तथा भयोत्पादक अभिधान धारण किए भूत-प्रेत-पिशाचों के अधिपति वाला अमंगल तथा भयानक रौद्र स्वरूप ।

आ. मनमोहक मुखमुद्रा सम्पन्न नीलाम्बर तथा चन्द्रकलाधारी गौर वर्ण जो करोडो कामदेवों से भी अधिक सुन्दर-सौम्य है ।

ख. रामचरितमानस

१. **हिमवान के यहाँ नारद द्वारा पार्वती का भविष्य बताते हुए :** पार्वती के भावी पति (शिव) का वर्णन करते हुए नारद कहते है कि वह गुण, मान तथा माता-पिता हीन, उदासीन और चिन्तामुक्त होगा । उसे निष्काम मन, योगी जटाधारी, नग्न तथा अमंगल वेष होना चाहिए (१।६७।८ तथा दो०) ।

२. **सप्तर्षियों का तपस्यारत पार्वती के प्रति :** शिव को पति के रूप में पाने के लिए पार्वती तपस्या करती हैं । दीर्घकाल के बाद उनकी परीक्षा लेने के लिए शिव सप्तर्षियो को भेजते है । सप्तर्षि पार्वती से कहते है कि यह काम अच्छी नहीं जो तुम स्वभावतः उदासीन शिव को प्राप्त करना चाहती हो । वह तो निर्लज्ज और दिगम्बर हैं । उनका न कोई कुल है और न घर । वे नितान्त गुणहीन है और कपाल, व्याल आदि धारण किए कुवेष बनाये रहते हैं । पहले लोगों के कहने पर उन्होंने सती से विवाह किया था परन्तु उन्हें धोखा देकर (दक्ष यज्ञ मे) मरवा डाला और अब निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक सोते हैं । वह तो भिक्षाटन से पेट भरते है और नितान्त एकान्तप्रिय हैं । ऐसे 'अवगुन भवन महादेव' के साथ रहने से क्या लाभ होगा ? (१।७९।५-८ तथा दोहा) ।

३. **बरात की तैयारी में शिव की साजसज्जा के समय :**

सिवहि संभुगन करहिं सिगारा । जटा-मुकुट अहि मौरु सँवारा ।।
कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला । तन बिभूति पट केहरि छाला ।।
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा । नयन तीनि उपबीत भुजंगा

गरल कंठ उर नर सिर माला । असिव बेष सिवधाम कृपाला ।।
कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा । चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ।।

—१।९२।१-५

तुलसी ने शिव के गणों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे विविध प्रकार के वेष तथा वाहन धारण किए हुए थे, जिन्हें देखकर शिव को प्रसन्नता हो रही थी। उनमें—

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ।।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना । रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना ।।
तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।।
नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब ।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ।।

—१।९३।६ से सोरठा तक;

शिव की इस बरात को देखकर हिमवान् के नगरवासी भयभीत हो गए। उनके वाहनों ने पलायन कर दिया और बच्चे जान बचाकर घर पहुँचे। बच्चे घर में बताते हैं कि यह बरात है या यमराज का खड्ग। बावला नग्न वर वृषभ पर आरूढ़ है। वह भस्म तथा कपाल और व्याल के आभूषण धारण किए अत्यन्त भयङ्कर लगता है। उसके साथ में विकट-मुखी राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच तथा योगिनियाँ भी हैं। परन्तु शिव के यथार्थ स्वरूप को समझकर माता-पिता बच्चों को समझाते हैं कि भय-भीत होने की आवश्यकता नहीं है (१।९५।४ से दोहे तक)।

४. **विवाह के पश्चात् कैलास पर :** पार्वती से विवाह करने के बाद शिव कैलास पर रहने लगे। एक बार शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु से युक्त मनोरम काल में शिव वट वृक्ष के नीचे बाघम्बर बिछाकर बैठे हुए थे। उस समय के शिव-स्वरूप के विषय में तुलसीदास ने कहा है—

कुंद इंदु दर गौर सरीरा । भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ।।
तरुन अरुन अंबुज सम चरना । नख दुति भगत हृदय तम हरना ।।
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी । आननु सरद चंद छबि हारी ।।
जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल ।।

बैठे सोह कामरिपु कैसें । धरें सरीरु सांतरसु जैसें ।।
—१।१०६।६-८ तथा दोहा, १०७।१

पार्वती वहीं पर शिव के समीप आकर कहती हैं कि आप विश्वनाथ तथा त्रिपुरारि हैं। समस्त संसार आपकी महिमा से परिचित है। चर, अचल, नाग, मनुष्य, देवता आदि सब आपकी चरण-सेवा करते है। आप सर्वसमर्थ तथा सर्वज्ञ हैं। समस्त कलाओं, गुणो, योग, ज्ञान तथा वैराग्य के आप भाण्डार हैं और आपका नाम भक्तो के लिए कल्पतरु के समान है (१।१०७।७-८ तथा दोहा)।

इस प्रकार तुलसीदास ने मानस में शिव के मंगलमय सौम्य स्वरूप का वर्णन करते हुए भी उनके कपाल-व्यालधारी प्रमथराज वाले अमंगल तथा रौद्र रूप को अधिक महत्व दिया है। उन्हें देखकर बच्चे ही नहीं वयस्क तथा पशु भी भयभीत हो जाते हैं। जनक के धनुष-यज्ञ में भी नगरवासी कहते हैं कि पचमुखी शिव विकट वेष धारण करने वाले हैं।[१]

'अगुनहि सगुनहि कछु नहिं भेदा' की मान्यता के अनुसार तुलसी-साहित्य के प्रस्तुत अनुशीलन के आधार पर शिव के निम्न स्वरूप निर्धारित होते हैं—

क निर्गुण : तुलसीदास ने इस रूप को अधिक प्रश्रय नहीं दिया है। इस दृष्टि से शिव निराकार, निरंजन, निर्विकल्प, निर्विकार, निरुपाधि, निरीह, निर्मल, अज, अकल, अविनाशी तथा सर्वव्यापक हैं। उनका न आदि है न अन्त। वे वाणी, ज्ञान तथा इन्द्रियों से परे हैं और वेद उन्हें नेति-नेति कहते है।

ख. सगुण : तुलसी को शिव का यही रूप प्रिय है। इसी से लौकिक सम्बन्ध स्थापित करना भी सम्भव है। इस रूप में शिव सिर पर जटाजूट, चन्द्रकला तथा गंगा, कानों में कुण्डल, नील वर्ण कण्ठ में मुण्डमाल तथा व्याल और समस्त शरीर पर भस्म धारण करते हैं। वे या तो नग्न रहते हैं या बाघम्बर और गजचर्म लपेटते हैं। वृषभ उनका वाहन है और कभी-कभी अर्धाङ्ग में पार्वती को रखते हैं। उनके हाथों में धनुष-बाण, खड्ग, डमरू, ढाल, त्रिशूल आदि रहते है। अभिधानों तथा गणों-परिचारको के आधार पर शिव का साकार कलेवर दो प्रकार का है :—

सौम्य या मंगल वेष—इस रूप में शिव के जनरंजक गौर वर्ण शरीर पर नील परिधान सुशोभित होता है। उनके नेत्र कमलवत् शोभायमान होते हैं और जटाजूट;

१. रामचरितमानस १।२२०।७, उनके पञ्चमुखी होने का उल्लेख अन्यत्र भी है—
नयन पञ्चदस अति प्रिय लागे १ ३१७ २

गगा, चंद्रकला, व्याल तथा भस्म धारण करने पर भी वे अभिरामधाम तथा परम रम्य दिखाई देते है । उनकी मुखाकृति से स्मिति भाव प्रस्फुटित होता है ।

रौद्र या अमंगल वेष—मुण्डमाल, नरकपाल तथा व्याल धारण किए कभी-कभी शिव का आकार भीषण तथा भयङ्कर हो जाता है । इस रूप को महाकाल तथा भैरव की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । प्रलयकाल में वे डमरू बजाते हुए ताँण्डव करते हैं । भूत-प्रेत-वेताल तथा पिशाचों के अधिपति होने के कारण उन्हे भूतनाथ, प्रमथनाथ तथा प्रमथराज कहा जाता है । इनके साथ होने पर शिव की भयङ्करता और भी अधिक विकराल हो जाती है । परन्तु शिव के दोष भी गुण हैं[1] और उनका अमंगल वेष भी मंगलदायक है ।[2] इसीलिए वे पृथ्वी के अलकरण है ।[3]

शिव की अन्य विशेषताएँ

तुलसी-साहित्य में शिव का स्वरूप देखने के बाद अब शिव की अन्य विशेषताओं का अवलोकन किया जाता है :—

१. शिव देवाधिदेव

शिव को महेश के अतिरिक्त तुलसी ने महादेव (रा० १।४७।८, १।८०; कविता० ७।१६७) भी कहा है । पार्वती उन्हे सुरनाथ (रा० १।१०९।८) तथा सुरराज (रा० १।११०।३) कहकर सम्बोधित करती हैं । विनयपत्रिका (पदांक ६) के अनुसार वे देव-देव—देवाधिदेव—है ।

२. विष्णु से चरण-वन्द्य

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में एक स्थान पर दिखाया है कि ब्रह्मा और विष्णु शिव की चरण-वन्दना करते हैं ।[4]

३ जगद्‌गुरु

शैव दर्शन मे शिव को सगीत, योग, ज्ञान तथा नृत्य का आचार्य माना गया है । इनके आधार पर उनकी वीणाधरदक्षिणामूर्ति, योगदक्षिणामूर्ति, ज्ञानदक्षिणामूर्ति तथ नटराज मूर्तियाँ दक्षिण भारत में प्रचुरता से मिलती है । शिव रामकथा के रचयिता,

---

१. रामचरितमानस १।६९।४
२. साजु अमंगल मगलरासी ।।—वही १।२६।१
३ गीतावली १।१५।१
४. विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्द ।—पद १२।२

अधिष्ठाता तथा प्रथम वक्ता होने के कारण भी आद्याचार्य हुए । जगत् को रामकथा प्रदान करने के कारण वे जगद्गुरु हैं । पार्वती शिव से कहती है—

तुम्ह त्रिभुवन गुरु वेद बखाना ।—मानस १।१११।५

४. आशुतोष

कवितावली तथा विनयपत्रिका की शिव-स्तुतियों में तुलसीदास ने शिव की आशुतोष प्रकृति का उन्मुक्त हृदय से चित्रण किया है । रथ हाथी-घोड़े, श्रेष्ठ वीर, धन-धाम, विनयशील रति जैसी पत्नी, सुन्दर शरीर तथा पुत्र, विद्या-विवेक आदि लौकिक गुण, महाराजाओं सदृश मान-सम्मान तथा परलोक में इन्द्र का पद अथवा मोक्ष आदि की सम्प्राप्ति शिव पर बिल्व या आक के दो पत्र और धतूरे के फूलों मात्र से सम्भव है ।

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मागने को,
देबोई पै जानिये, सुभावसिद्ध बानि सो ।
बारि बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिये तौ,
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ॥
—कवितावली ७।१६१

तथा— सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे ।
दिए जगत जहँ लगि सब, सुख गज रथ घोरे ॥
—विनयपत्रिका ८।२

५. भोलानाथ

शिव इतने भोले हैं कि धोखे से भी दो चार पत्तों के समर्पण को सम्पूर्ण पूजा-पद्धति मान लेते हैं । गुणनिधि तो ऊँचे पर टंगे घण्टे की चोरी करने के लिए उनके विग्रह पर खड़ा हो गया था । शिव ने उसी को सर्वस्व समर्पण मानकर गुणनिधि को मोक्ष दे दिया ।

६. अवढरदानी

शिव शीघ्र प्रसन्न तो होते ही हैं उस समय देने में भी चूक नहीं करते हैं । सन्तों तथा वेद-पुराणों के अनुसार जो कैवल्य-पद महामुनियों तक को दुर्लभ है, वह शिव सहज ही दे डालते हैं । संसार में उनके समान कोई अन्य दानी नहीं है । उन्हें सदैव याचक और देना ही अच्छा लगता है । दान करने में वे विष्णु से भी महान् हैं । उन्हें सदैव याचक और देना ही अच्छा लगता है, क्योंकि करोड़ों योग-साधनाओं से योगी-मुनि जिस मोक्ष को विष्णु से सकोच के साथ माँगते हैं वहा शिवपुरी काशी में कीट

पतङ्गों तक को मिल जाता है। शिव की इस अमितदानी प्रकृति के कारण ब्रह्मा तो उन्हें बावला समझते हैं और व्यथित तथा चिन्तित होकर पार्वती से निवेदन करते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बडो दिन देन दये बिनु, वेद बडाई भानी ।।
६ निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन कौ नाक सँवारत, हौ आयौ नकबानी ।।
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ।।

—विनयपत्रिका ५

ब्रह्मा के कथन में कितनी उद्विग्नता है। शिव ने जिन लोगों को स्वर्ग दिया है उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनकी व्यवस्था करते-करते उनके तो नाकों मे दम आ गया। नकबानी आना मुहावरा है। तुलसी ने ब्रह्मा से इसका प्रयोग कितनी सुन्दरता से कराया है कि मैं तो तङ्ग आ गया। शिव की कृपालुता से कोई भी दीन-दुखी शेष नहीं रहा है, इसलिए दैन्य और दुख दुखी है कि अन्ततः रहे कहाँ ?

कवितावली में भी एक कवित्त ऐसा ही है जिसमें ब्रह्मा पार्वती से कहते हैं कि अपने बावले तथा भोले दानी पति को समझा लो—

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खागो कछू, जनि मागिये थोरो'।
नाँकनि नाकर रीझि करै 'तुलसी' जग जो जुरै जाचक जोरो।
नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो ।।

—७।१५२

शिव ने जिन-जिन को स्वर्ग प्रदान किया उनकी व्यवस्था करते-करते मैं तो तङ्ग आ गया, पर शिव मेरा तनिक भी उपकार नहीं मानते है।

७ योगी

तुलसीदास ने कवितावली तथा रामचरितमानस के कितने ही स्थलों पर शिव को योगी दिखाया है। योग साधना के कारण शिव योगीश तथा योगपति कहलाते हैं।[१]

---

१ कवितावली ७।१५१

काम-दहन के बाद सप्तर्षि हिमवान् के पास शिव-पार्वती के विवाह का प्रस्ताव लेकर आते है । हिमवान् से मिलने के पूर्व वे पार्वती से मिलकर कहते है कि तुमने शिव से विवाह करने का जो प्रण किया था, वह व्यर्थ हो गया, क्योंकि शिव ने काम को भस्म कर दिया और वे निष्काम हो गए हैं । इस पर पार्वती उत्तर देती हैं कि—

तुम्हरे जान कामु अब जारा । अब लगि संभु रहे सविकारा ।।
हमरें जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ।।

—मानस १।९०।२-३

अष्टांग योग का सातवाँ अंग ध्यान है । जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये केवल उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है ।[1] धर्म, लक्षण और अवस्था नामक तीन परिणामों में चित्त का संयम करने से अतीत और अनागत तथा सूर्य में संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है ।[2] त्रेता युग में जब शिव और पार्वती अगस्त्य के आश्रम से वापिस आ रहे थे, रास्ते में सीता-हरण से उद्विग्न राम और लक्ष्मण से भेंट हुई । शिव ने राम को इष्टदेव के समान प्रणाम किया तो पार्वती को सन्देह हुआ कि जगतवन्द्य शिव किसको अभिवादन कर रहे है । शिव ने राम के अवतरण की बात कही, परन्तु पार्वती को विश्वास नहीं हुआ । अतः शिव की आज्ञानुसार वे राम की परीक्षा लेने जाती है । पार्वती ने सीता का रूप धारणकर राम की परीक्षा लेनी चाही, परन्तु राम ने सब कुछ जान लिया । भयभीत पार्वती शिव से कह देती हैं कि मैंने परीक्षा नहीं ली । पार्वती के इस कथन पर शिव को विश्वास नहीं होता । जो पार्वती पहले समझाने पर भी नहीं मानती और परीक्षा लेने जाती हैं, यह कैसे सम्भव है कि उन्होंने परीक्षा न ली हो । उस समय शिव को यथार्थ स्थिति जानने के लिए ध्यान का आश्रय लेना पड़ता है और—

तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ।।

—मानस १।५६।४

ध्यान करने पर शिव को यथार्थ स्थिति का बोध हो जाता है कि पार्वती ने सीता का रूप धारण करके राम की परीक्षा लेने का प्रयत्न किया था ।

योग का अष्टम अंग समाधि है । तुलसीदास ने कई स्थलों पर शिव की समाधि का भी वर्णन किया है । सती-मोह के बाद शिव ने कैलास पर आकर ऐसी समाधि

---

१. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।—पातञ्जल योगसूत्रम् ३।२

२. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।—वही ३।१६

तथा—भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् —वही ३ २६

धारण की जो ८७,००० वर्ष तक चली थी। तारकासुर के वध का उपाय बताते हुए ब्रह्मा कहते हैं कि उस पर शिव का पुत्र ही विजय पा सकता है, परन्तु शिव सब कुछ त्यागकर समाधिलीन हैं। शिव की समाधि भग करने के लिए कामदेव को प्रेरित और सहमत किया जाता है। जब कामदेव ने शिव पर अपने विषम पञ्चबाणों का प्रहार किया तो उनके मन मे क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसी समय शिव जाग्रत हुए और उनकी समाधि टूट गई।[१]

योग से शिव का आदिकालीन सम्बन्ध है। सिन्धुघाटी की पशुपति मुद्रा पर लांछित आकृति योगासन में प्रदर्शित है। इसे शिव का रूप माना जाता है। मध्यकाल मे नाथ सम्प्रदाय में भी शिव की योगी रूप में मान्यता है।

शिव के योगी स्वरूप को लेकर शिल्पशास्त्र में योगदक्षिणामूर्ति के निर्माण का प्रावधान है। शैवागमों के अनुसार एक बार शिव दक्षिण को मुख किए बैठे थे। उसी समय उन्होंने ऋषि-मुनियों को योग तथा ज्ञान का उपदेश दिया था। दक्षिणाभिमुख आसीन होने के कारण ऐसी मूर्तियाँ दक्षिणामूर्ति कहलाती हैं। शिव की योगदक्षिणा-मूर्तियाँ दक्षिण भारत में प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं। विष्णु-कांची की एक योग-दक्षिणामूर्ति में अक्षमाल धारण किये शिव का एक हाथ वितर्क मुद्रा में है। उनके आसन के नीचे दो मृग तथा योगोपदेश सुनते हुए ऋषिगण आकाश में प्रदर्शित है।[२]

तुलसीदास ने शिव की ध्यान मुद्रा तथा समाधि का वर्णन करके शिव को योगी मानने की दीर्घकालीन परम्परा का अनुसरण किया है।[३]

---

१. रामचरित मानस १।५८।७-८, १।६०।२, १।८३।३, १।८७।३-४

२. डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, पृ० ४७०-४७१

३. देखिए—प्रभु समरथ सर्वग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम॥—मानस १।१०७
तथा—कासी करामाति जोगी जागति मरद की॥—कवितावली ७।१५८
भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥—वही ७।१५९

मानस में पार्वती का भविष्य-कथन कहते हुए नारद उनके भावी पति को योगी बताते हैं (१।६७)। पार्वतीमंगल में भी तपस्यारत पार्वती की परीक्षा लेते समय बटु शिव को योगी कहते हैं (-मंगल ५१)

गोसाईंचरित के अनुसार जब तुलसीदास काशी से चित्रकूट जा रहे थे, तो शिव दण्डी रूप में उन्हें रोकने आये। तुलसी के यह कहने पर कि भगवान् की आज्ञा से जा रहा हूँ शिव ध्यान धारण करके इसकी सत्यता देखते हैं (-चित्रकूट खण्ड, चित्रकूट गमन प्रसंग)

८. मुनि

राम-सीता विवाह के बाद बरात विदा करते समय जनक राम से कहते हैं—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ।।
—मानस १।३४१।४

राम को नाग-पाश से मुक्त करने पर गरुड़ को मोह हो गया था। मोह का शमन करने के लिए शिव ने उन्हें भुशुण्डि के पास भेज दिया। भुशुण्डि ने रामकथा सुनाकर गरुड़ का मोह समाप्त कर दिया। उसी समय वे गरुड़ से कहते हैं कि तुम्हारा मोहित हो जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। मोह से शिव नारद जैसे मुनिश्रेष्ठ तक आबद्ध हो गए थे।

नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनिनायक आतमबादी ।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।
—मानस ७।७०।६।७

विनयपत्रिका में भी कहा है—

भगति दुरलभ परम, संभु-सुक-मुनि-मधुप,
प्यास पदकंज मकरंद-मधुपान की ।—२०१।८

९. तपस्वी

नारद ने पार्वती का भविष्य बताकर सलाह दी कि वे शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करें परन्तु मैना को यह सुझाव अधिक रुचिकर नहीं लगा। उसी समय पार्वती को स्वप्न होता है, जिसमें तप की महत्ता दिखाई गई है। पार्वती कहती है कि एक गौर वर्ण सुन्दर ब्राह्मण ने स्वप्न में मुझे तप करने का उपदेश दिया है, क्योंकि तप सुखदायक और दुख-दोष नाशक है। तप का महत्व बताते हुए ब्राह्मण ने कहा कि विधाता संसार की रचना, विष्णु पालन और रक्षण तथा शिव उसका संहार तपस्या की शक्ति के द्वारा ही करते है।[१]

गीतावली में बाल राम के तोतले वचनों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने उत्प्रेक्षा रूप में शिव को तपस्वी दिखाया है—

बाल-बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि।
जनु इन्ह बचनन्हि ते भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि। —पद २२।६

पार्वतीमंगल (मंगल २१) में भी नारद ने शिव को तपस्यारत बताया है।

१- तपबल संभु करहिं संघारा —मानस १।७३।४

१०. सिद्ध

योग और तन्त्र से प्रभावित जितनी भी धर्म साधनायें है, उनमें माना गया है कि साधना के बाद साधक को सिद्धियाँ उपलब्ध होती है। अथर्ववेद मे सिद्धियाँ तथा उन्हे प्राप्त करने के अभिचारो और अनुष्ठानो का वर्णन है। पतञ्जलि ने जन्म, ओषधि, मन्त्र, तप तथा समाधि से उपलब्ध सिद्धियो का उल्लेख किया है।[1] ब्रह्मवैवर्त पुराण मे सर्वज्ञत्व, दूरश्रवण आदि चौतीस सिद्धियाँ बताई है, जबकि हठयोग साधना के अनुसार इनकी सख्या आठ है—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व। बौद्ध तन्त्रो में अष्ट सिद्धियो की मान्यता है। इन सिद्धियो को प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति सर्वसमर्थ हो जाता है। जिसे यह सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है वह सिद्ध कहलाता है। शिव को यह सिद्धियाँ राम की भक्ति से उपलब्ध हो चुकी है—

सिधि पाई सकरहूँ।—विनयपत्रिका ८६।२

११. हृदय-प्रेरक

मनुष्य अपने कार्य कभी तो स्वतः अन्तःप्रेरणा से करता है और कभी उनके सम्पादन मे दूसरो की प्रेरणा निहित रहती है। मन्थरा को सरस्वती की प्रेरणावश राम के राज्याभिषेक से प्रसन्नता नही हुई। वह कैकेयी को प्रेरित करती है कि राम को वनवास और भरत को राज्य देने के लिए दशरथ से वर मांगे। मन्थरा की इच्छानुसार कैकेयी प्रेरित हो जाती है। परन्तु सामान्य जन में लोक-प्रेरणा की शक्ति का अभाव होता है। शिव ऐसे है जो सभी के हृदय प्रेरित करने में सक्षम है। इसीलिए राम को वनवास हेतु जाने से रोकने के लिए दशरथ शिव से प्रार्थना करते हैं कि—

× × × । बिनती सुनहु सदासिब मोरी ॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥
तुम्हँ प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहर सीलु सनेहु ॥
—मानस २।४४।७-८ तथा दोहा

१२. मायावी या रूप परिवर्तनकारी

परकाया-प्रवेश की विद्या जानने वाला व्यक्ति अपने जीव को किसी निर्जीव शरीर मे प्रवेश करा सकता है और प्राकाम्य सिद्धि में सिद्ध व्यक्ति मनोभिलषित स्वरूप धारण करने में सक्षम होता है। तुलसीदास ने पार्वतीमगल तथा रामचरितमानस मे पाँच स्थानो पर शिव को भी स्वरूप या वेष परिवर्तित करते दिखाया है।

1. जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।—पातञ्जल योगदर्शन ४।१

अ. पार्वतीमंगल

क. तपस्यारत पार्वती की परीक्षा हेतु वटु रूप : शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती भीषण तपस्या मे सलग्न थी। उन्हे रात-दिन, नींद, भूख, प्यास आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता था। वे कभी कन्द मूल तथा फल खा लेती थीं और कभी जल तथा वायु पर ही निर्भर रहती थी। जब उन्होने सूखे पत्ते खाना भी छोड दिया तो उन्हे अपर्णा कहा जाने लगा। चारों ओर उनकी प्रशसा होने लगी कि ऐसा महान् तप किसी ने कभी नहीं किया है। उस समय पार्वती के प्रेम, नियम, सकल्प आदि की परीक्षा लेने के लिए शिव वटु वेष में उनके पास जाते हैं—

काहूँ न देख्यो कहहिं यह तपु जोग फल फल चारि का।
नहि जानि आइ न कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका।।
वटु वेष पेखन पेम पनु ब्रत नेम ससिसेखर गए।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि बचन मृदु बोलत भए।।—हरिगीतिका ५

पार्वती के उद्देश्य को जानकर वटु उनकी परीक्षा लेने के लिए शिव की लौकिक कुरूपताओं का वर्णन करते हैं। परन्तु पार्वती किसी भी प्रकार विचलित नहीं होतीं और अपनी सखी के माध्यम से वटु से चले जाने का निवेदन करती हैं। पार्वती की तपस्या से प्रसन्न हो वटु रूप शिव उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाते हैं।

सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भए प्रगट करुनासिधु सकरु भाल चद सुहावनो।।—हरिगीतिका ८

ख. लोकाचारवश मङ्गल रूप : पार्वती से विवाह करने के लिए जब शिव हिमवान के नगर गए तो उनके साथ में विविधमुखी भूत-प्रेत-पिशाच आदि गण थे और वे स्वयं गजचर्म, सर्प तथा मुण्डमाल धारण किए वृषभारूढ़ थे। ऐसी बरात देखकर अगवानी के लिए आए हुए नगरवासियों के वाहन भाग गए और वे स्वयं भयभीत हो गए। नगर में वार्ता का विषय शिव और उनकी बरात ही था। विष्णु, इन्द्र आदि बराती देवता भी मुँह फेरकर हँस रहे थे। उस समय लोकाचार को देखते हुए शिव ने मंगलमय सौम्य रूप धारण कर लिया। उनके शरीर का गजाम्बर नीलाम्बर में परिवर्तित हो गया और सर्प मणिमय अलकरण बन गए—

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर।।
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन १११-११२

शिव ने स्वयं ही नही अपने गणो का भी स्वरूप बदलकर उन्हे मगलमय तथा कामदेव के समान मनोहर बना दिया । अब शिव चन्द्रमा के समान लग रहे थे और बराती नक्षत्रवत् सुशोभित थे (मंगल ११३-११४) ।

आ रामचरितमानस

ग मनुष्य रूप : राम-जन्म के समय आकाश से पुष्प-वर्षा हुई और मागध-सूत आदि ने राम का गुणगान किया । जन्मोत्सव के उपलक्ष में दशरथ ने अमित सम्पत्ति वितरित कर दी । हर्षोल्लास में उन प्राप्तकर्ताओं ने भी दान-सामग्री अपने पास न रखकर अन्यों को दे दी । कस्तूरी, चन्दन तथा कुंकुम की तो जैसे कीचड़ ही हो गई । अगरु और धूप का धुआँ इतना अधिक था कि अँधेरा हो गया और अबीर देखकर लगता था कि वायुमण्डल में लालिमा व्याप्त है । राजमहल में मृदु वाणी से होने वाला वेद-पाठ पक्षियों के समयानुकूल चहचहाने जैसा लग रहा था । नगर के आनन्दोत्सव को देखने के लिए सूर्य ने भी अपना रथ रोक दिया । सब लोग इतने मग्न थे कि किसी को इसका आभास तक नहीं होने पाया कि दिन एक मास का हो गया महोत्सव देखकर सूर्य तथा अन्य देवगण यह कहते हुए गए कि राम के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । शिव पार्वती से कहते हैं कि उस समय मैं भी वहाँ मनुष्य रूप मे उपस्थित था ।

औरउ एक कहउँ निज चोरी । × × ×
काकभुसुण्डि सग हम दोऊ । मनुज रूप जानइ नहि कोऊ ।।
परमानन्द प्रेम सुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ।।
यह सुभ चरित जान पै सोई । कृपा राम कै जापर होई ।।
तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा । दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ।।
गज रथ तुरग हेम गो हीरा । दीन्हे नृप नानाबिध चीरा ।।
—१।१९६।३-८

घ. विप्र रूप : राम-विवाह के समय जनकपुर में महान् उत्सव आयोजित हुआ । विवाह-मण्डप के कदली जैसे स्तम्भ स्वर्णनिर्मित थे, जिनमें पन्नों के पर्ण तथा फल और पद्मराग मणियों के पुष्प सलग्न थे । हरित पर्णयुक्त बाँसों का निर्माण पन्नों तथा सपर्ण नागबेलि का निर्माण स्वर्ण से हुआ था । नागवल्लरियो के मध्य मौक्तिकमालायें तथा माणिक्य, मरकत और वज्र निर्मित पद्म सुशोभित थे । मण्डप के अन्दर गज-मुक्ताओं से आपूरित विविध प्रकार के चौक थे ।

जिस समय रामचन्द्र, दशरथ आदि मण्डप में विराजमान थे उनके वैभव को

देखकर लोकपाल भी लज्जित हो रहे थे। नगर तथा आकाश में कोलाहल हो रहा था और देवता पुष्प-वर्षा कर रहे थे। जनक और दशरथ का प्रीति-मिलन अद्वितीय था, जिसकी प्रशंसा देवता तक कर रहे थे। उस समय राम की लीलाओं को जानने तथा उनमे रस लेने वाले शिव आदि देवता ब्राह्मणो के रूप वेष में उपस्थित थे।

> विधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥
> कपट बिप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥
> पूजे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने॥
> पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
> आनन्द कन्दु बिलोकि दूलह उभय दिसि आनँदमई॥
> सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
> अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

—१।३२१।६-८ तथा छन्द;

ङ. हंस रूप : सती-दाह और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के बाद शिव घूमते हुए उत्तर दिशा में नीलगिरि पर पहुँचे। उस पर्वत के शिखर स्वर्णमय थे और वहाँ सुन्दर सरोवर था। उसी पर्वत पर काकभुशुण्डि निवास करते थे। वे बहुत ही निष्ठापूर्वक वट वृक्ष तले बैठकर रामकथा कहते थे, जिसे सुनने के लिए विविध विहगगण आते थे। जब शिव वहाँ पहुँचे तो उन्हें अतीव आनन्द प्राप्त हुआ और वे भी रामकथा-श्रवण का मोह संवरित न कर सके। पक्षियो के मध्य उन्होंने हंस रूप धारणकर निवास किया और रामकथा सुनी। शिव पार्वती से कहते है—

> बर तर कहि हरि-कथा प्रसंगा। आवहि सुनहिं अनेक बिहंगा॥
> × × ×
> जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनन्द बिसेषा॥
> तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
> सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥

—७।५७।७, १० तथा दोहा;

गीतावली (१।१७) में एक ऐसे ज्योतिषी का वर्णन है जो वृद्ध ब्राह्मण के वेष में अवध पहुँचता है। कौशल्या उसे भवन में बुलाकर राम आदि का भविष्य पूछती हैं। यहाँ पर तुलसीदास ने यह स्पष्ट नही कहा है कि वह शिव ही थे, परन्तु ज्योतिषी का नाम शंकर होना इस तथ्य का संकेत देता है कि शिव ही ज्योतिषी के रूप में उपस्थित हुए थे। साथ ही राम को देखकर ज्योतिषी के पुलकित और प्रेमाश्रुपूरित होने तथा

राम को गोद में लेने पर प्रसन्नता के अतिरेक से यह द्योतित होता है कि वे शिव ही थे। इतना ही नही तुलसी ने ज्योतिषी द्वारा राम का भविष्य विस्तार से और अन्य भायोइ का भविष्य मात्र औपचारिक रीति से कहलाया है।

धर्मखण्ड मे राम की वनयात्रा के मध्य शिव ब्राह्मण के वेष में राम से मिलने के लिए आते हैं।[1] तुलसीदास ने राम-विवाह के अवसर पर पार्वती को भी गुप्त वेष मे उपस्थित दिखाया है।[2]

१३. शाबर मन्त्र रचयिता

ऐसा माना जाता है कि कलियुग में प्राणियो के दुख दूर करने के लिए शिव-पार्वती भील रूप मे अवतरित हुए थे। उस समय शिव ने शाबर मन्त्रो का प्रणयन किया, जिन्हे पार्वती की आज्ञा से गणेश लिपिबद्ध करते गए। इन्हीं मन्त्रों का सग्रह 'सिद्ध शाबर मन्त्र' ग्रन्थ कहलाता है। मानस-पीयूष में 'सबर' का अर्थ भील दिया गया है। पीयूषकार के अनुसार भील भाषा में भील द्वारा प्रकट होने के कारण इसका नाम शाबरतन्त्र पडा।[3] तुलसीदास कहते है—

> कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मन्त्र-जाल जिन्ह सिरिजा॥
> अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू॥
> —मानस १।१५।५-६

१४ सहारक

सृष्टि विषयक तीन कृत्यो—निर्माण, पालन तथा सहार—के लिए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की कल्पना की गई है। तुलसीदास भी इस मान्यता से सहमत हैं—

> रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर।—कवितावली ७।१७२

परन्तु तुलसीदास ने दो स्थलों पर शिव के परम संहारक या सर्वनाशक स्वरूप को मान्यता दी है। सम्भवतः इसी आधार पर उन्होने हनुमानबाहुक में हरिहर को पालनकर्ता दिखाकर मृत्यु को सहारक बताते हुए शिव का मृत्यु से तादात्म्य किया है।[4]

राम की माया से विमोहित शिव-परित्यक्त सती अपने पिता के यहाँ यज्ञ में गई। वहाँ शिव का भाग न देखकर उन्होंने योगाग्नि में स्वय को भस्म कर दिया।

---

१. रामकथा, पृ० ३८२
२. रामचरितमानस १।३१८।६-७; जानकीमगल, मगल १३१
३. मानसपीयूष, बालकाण्ड, भाग १, पृ० २७३
४. रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर
मीच मारिबे को ज्याइबे को सुधापान भो॥—हनुमानबाहुक ११

सती की मृत्यु का समाचार पाकर कुपित शिव ने वीरभद्र को भेजकर समस्त यज्ञ विध्वंस करा दिया। इसमें समस्त देवों को दण्डित होना पड़ा। तुलसीदास ने कहा कि यह आख्यान लोकप्रिय और प्रचलित होने के कारण मैं इसका वर्णन संक्षेप में कर रहा हूँ। पुराणों के अनुसार सती-दाह का समाचार पाने पर शिव के क्रोध से ही वीरभद्र की उत्पत्ति होती है और वह दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करते हैं।

शिव के सर्वनाशक रूप का चित्रण काशी की रुद्रबीसी के प्रसंग मे हुआ है कवितावली के उत्तरकाण्ड में इसका अत्यन्त करुणाजनक तथा हृदय-विदारक चित्रण है

संकर सहर सर, नर नारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जल थल मीचुमई है॥—७।१७६

तुलसीदास प्रार्थना कर रहे हैं—

गौरीनाथ, भोरानाथ, भवत भवानीनाथ !
विस्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारीं कासीवासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख-गनेस ते महेस के पियारे लोग
बिकल बिलोकिअति, नगरी बिहाल की।
पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भाल की॥—७।१६६

१५. अहंकार रूप

क्रोध के समय मनुष्य रौद्र रूप धारण कर लेता है। उसी समय उसमें संहारक प्रवृत्ति का संचार होता है। समस्त ब्रह्माण्ड की पुरुष-रूप में कल्पना की जाये तो उस परमब्रह्म परमपुरुष का अहङ्कार ही सृष्टि-संहारक है। विराट् पुरुष की कल्पना यजु (अ० ३१) तथा ऋक् वेदों और गीता में भी हुई है। गीता में विराट् पुरुष के अन्दर रुद्रों का निवास तो दिखाया है (अ० ११।६, २२), परन्तु रुद्र विराट् पुरुष की किस वृत्ति के प्रतीक हैं, यह नहीं बताया है। भागवतपुराण में कृष्ण तथा बाणासुर संग्राम के बाद विराट्-रूप भगवत्स्तुति मे रुद्र ने अहं को आत्मा कहा है,[१] जब कि अध्यात्मरामायण

१. देखिए—अ० १०।६३।३५

मे अहकार को रुद्र-रूप बताया है ।[1] तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण के आधार पर शिव को अहङ्कार-रूप माना है ।[2]

१६. परशुराम के गुरु

ऊपर विचार किया जा चुका है कि शिव को तुलसीदास ने एकमात्र अपना गुरु ही नहीं जगद्गुरु माना है । परन्तु मानस में परशुराम शिव के एक विशिष्ट शिष्य के रूप में चित्रित हुए हैं । जनक-परिवार में शिव का एक धनुष राजा देवरात के समय मे चला आ रहा था, जिसे शिव स्वय दे गए थे । जनक ने यह निश्चय किया था कि जो शिव-धनुष भङ्ग करेगा, उसीसे सीता का विवाह होगा । राम इस धनुष को भग करते हैं । धनुष-भग का समाचार मुनकर परशुराम वहाँ आते हैं और अत्यन्त दर्प के साथ धनुष भङ्ग करने वाले का नाम पूछते है—

× × कहु जड जनक धनुष कै तोरा ।।
बेगि देखाउ मूढ न त आजू । उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू ।।

—मानस १।२७०।३-४

परशुराम के विकराल रूप को देखकर समस्त सभा स्तम्भित हो जाती है और स्वय राजा जनक भयभीत हो जाते हैं । लक्ष्मण-परशुराम संवाद के समय वातावरण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण हो जाता है । जिस उल्लासपूर्ण वातावरण मे परशुराम का आगमन होता है उसके कारण परशुराम का मानस मे एक विशिष्ट स्थान बन जाता है । परशुराम का कहना है कि जिसने शिव-धनुष तोड़ा है, मैं उसका वध करूँगा क्योकि शिव मेरे गुरु है ।

वाल्मीकि तथा अधिकाश रामकथाओं के अनुसार परशुराम के आक्रोश तथा सघर्ष का कारण यह था कि वे अपने एक समर्थ क्षत्रिय प्रतिद्वन्द्वी को ढूँढकर उससे युद्ध करना चाहते थे । नृसिंहपुराण में संघर्ष का एक नवीन कारण 'राम' नाम दिया गया है । अध्यात्मरामायण में दोनों कारणों का समन्वय है । परशुराम कहते हैं कि अरे क्षत्रिय अधम ! तू मेरे ही समान राम नाम से विख्यात होकर पृथ्वी पर विचरण करता है । यदि तू वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर, एक पुरान जीर्ण-शीर्ण धनुष को तोड़कर व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है ।[3] स्पष्ट ही यहाँ धनुष की

---

१. रुद्रोऽहंकाररूपस्ते ।—३।६।४२
२. रामचरितमानस ६।१५ क
३. देखिए—बालकाण्ड ७।१०-१२

अवज्ञा है। संघर्ष के एक अन्य कारण का उल्लेख सर्वप्रथम महावीरचरित में मिलता है। यहाँ परशुराम राम का दमन करने इसलिए आते हैं कि उन्होंने शिव का धनुष तोड़कर गुरु का अपमान किया है। परशुराम का शिव-शिष्य होना परवर्ती राम-नाटकों की कल्पना है।[1] तुलसीदास ने अपना प्रेरणा स्रोत बाल्मीकि या आध्यात्मरामायण को न बनाकर इन्हीको बनाया है।

१७. राक्षसों के इष्ट

शिव पार्वती को बताते हैं कि रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण ने भीषण तप किया था और रावण की इच्छानुसार मैंने उसे मनुष्य तथा वानर के अतिरिक्त अन्य से अवध्य होने का वर दिया था।[2] रावण ने अपनी शिव-भक्ति के सम्बन्ध में स्वयं कहा है—

जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढाई॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥

—मानस ६।२५।२-३

रावण की शिव-भक्ति तथा शिव के अनुग्रह का उल्लेख अन्यत्र भी कई स्थानों पर हुआ है।[3]

१८. भूत-प्रेतों के अधिपति

तुलसीदास ने कई स्थानों पर शिव को प्रमथराज,[४] प्रमथनाथ[५] तथा भूतनाथ[६] कहकर सम्बोधित किया है। पार्वतीमंगल तथा रामचरितमानस में शिव-बरात के प्रस्थान एवं मार्ग में इनका सुन्दर वर्णन है। इनके मुख विविध प्रकार के होते थे और यह सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि के असामान्य वाहन रखते थे। बरात लेकर जाने के समय शिव ने भृंगी के द्वारा अपने समस्त गणों को बुलवाया। उन सबमें कुछ के मुख, हाथ, पैर तथा नेत्रों का अभाव था और कुछ के यह सब अस्वाभाविक रूप में अधिक थे—

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए—रामकथा, पृ० ३०७-३०८
२. रामचरितमानस १।१७७।१-५
३. वही ५।४६ ख, ६।९४।६-७; विनयपत्रिका १६२।३, २१६।३ आदि,
४. विनयपत्रिका १३।५
५. पार्वतीमंगल, मंगल ९८
६. कवितावली ६।५०; ७।१६६, १६७, १६८, १७६

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।।

—मानस १।६३ के ऊपर छन्द;

शिव को विकराल रूप वाले अपने यह गण अति प्रिय है ।[१] इसीलिए शिव का सम्बन्ध संहार तथा श्मशान से होने के कारण तुलसीदास ने युद्धस्थल पर शिव के साथ भूत-बेतालों को भी दिखाया है ।[२]

१९. काशी के अधिष्ठाता

शिवपुराण (रुद्र, सृष्टि, अ० ६) आदि की मान्यता के अनुसार तुलसीदास ने शिव को काशी का अधिपति बताया है ।[३] शिव की स्तुतियों तथा यदाकदा इसका उल्लेख मिलने के अतिरिक्त कवितावली के उत्तरकाण्ड में काशी की महामारी का वर्णन लगभग ग्यारह-बारह कवित्तों में हुआ है। पाँच कोस में बसी हुई काशी पुण्य की राशि और स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों का साधन है,[४] क्योंकि रुद्रगण यहाँ के योद्धा, गणेश एवं कार्तिकेय सेनापति, पार्वती स्वामिनि तथा शिव स्वामी है ।[५] सम्पूर्ण काशी में शिव का ऐश्वर्य व्याप्त है ।[६] यहाँ कीट-पतंगों तक को मोक्ष प्राप्त होता है[७] और यहाँ के नर-नारी साक्षात् शिव तथा पार्वती के समान है ।[८] परन्तु महामारी के समय यहाँ की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है—

संकर सहर सर, नरनारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माजा भई है ।

---

१. कवितावली ७।१५१
२. वही ६।५०
३. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।।—दोहावली २३७
तथा विनयपत्रिका ६, ८, ९, २२ आदि;
४. कवितावली ७।१७२
५. वही ७।१७०
६. वही ७।१५८
७. विनयपत्रिका ७।४
८. कवितावली ७।१७१

उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है ।।
—कवितावली ७।१७६

काशी-निवास के समय जब शैवों ने तुलसी का विरोध किया तो उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों मे वहाँ के अधिपति को उपालम्भ दिया है—

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही
नाम राम ही के मागि उदर भरत हौं ।
× × ×
पाइ कै उराहनो, उराहनो न दीजो मोहि
कालकला कासीनाथ कहे निबरत हौ ।।—कवितावली ७।१६५

शिव ने अपनी नगरी होने के कारण प्रलयकाल में इसकी रक्षा अपने त्रिशूल पर रखकर की थी[१] और तुलसीदास ने शिव की नगरी होने के कारण विनयपत्रिका के एक पद में काशी की स्तुति करते हुए काशी-निवास का उद्बोधन किया है।[२] काशी का अधिपति होने के कारण तुलसी ने शिव को काशीश[३] तथा काशीपति[४] नामों से भी सम्बोधित किया है।

गोसाईंचरित (काशी खण्ड, मधुसूदन सरस्वती निर्णय प्रसग) में मिलता है कि अयोध्या में कलि-कुचाल के समय राम ने तुलसीदास को आदेश दिया कि जाकर काशी में निवास करो। वह सुख की राशि है और शिव वहाँ के रक्षक हैं। यह सुनकर तुलसीदास काशी आये और वहाँ की शोभा देखकर उन्हे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

२०. कैलास-निवासी

शिव कैलास के निवासी हैं जो उनकी शक्ति पार्वती के जनक हिमवान का एक अश है। इसको लेकर सस्कृत में दो बड़े ही व्यग्यात्मक श्लोक मिलते हैं—

असारे खलु ससारे सार श्वशुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरिः शेते महोदधौ ।।
तथा—कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये ।
हरिः क्षीरोदधौ शेते मन्ये मत्कुणशंकया ।।

---

१. कवितावली ७।१८१
२. विनयपत्रिका, पद २२
३. वही १३।६
४. वही ३।५

कैलास भारत के उत्तर में है और शिव का उत्तर दिशा से सम्बन्ध वैदिक साहित्य मे ही स्थिर हो चुका था। परन्तु वहाँ पर्वत का नाम मुञ्जवान मिलता है। तुलसीदास ने परवर्ती कल्पना के अनुसार शिव का निवास कैलास ही माना है। त्रेता युग में अगस्त्य के यहाँ से शिव कैलास पर आकर वहीं समाधि लगाते हैं।[१] पार्वती से विवाह करने के बाद शिव कैलास पर आते है और वहीं रहकर विविध भोग-विलास करते हैं—

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज-निज लोक सिधाए।।
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।

—मानस १।१०३।२, ५

पार्वती के राम-विषयक सन्देहों का निराकरण होने के पूर्व भी कहा गया है—

परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू।।

—वही १।१०५।८

राम के राज्याभिषेक के बाद भी शिव वापिस होकर कैलास ही आते है।[२] कैलास पर निवास के कारण तुलसी ने शिव को गिरीश[३] तथा गिरिनाथ भी कहा है।[४] विनयपत्रिका के एक पद में शिव का कैलास तथा काशी से सम्बन्ध दिखाते हुए 'भवन कैलास, आसीन कासी' मिलता है।[५] मूर्तिकला के अन्तर्गत रावणानुग्रहमूर्ति में रावण को शिवयुक्त कैलास उठाये प्रदर्शित किया जाता है।

२१ पार्वती के पति

शिव तथा पार्वती को लेकर तुलसीदास ने मानस के प्रारम्भ मे शिवचरित का ही सन्निवेश किया है। इसमे शिव का सती सहित अगस्त्य के पास जाना, वापिस आते समय राम को देखकर सती का विमोह और सीता के वेष में राम की परीक्षा लेना, शिव द्वारा उनका मानसिक परित्याग, दक्ष-यज्ञ में शिव का अंश न देखकर सती का आत्मत्याग दिखाने के बाद सती के पुनर्जन्म का वर्णन है। अब सती हिमवान के यहाँ

---

१. रामचरितमानस १।५८।६-८
२. वही ७।१४ ख,
३. वही १।५५।८, २।८१।२, गीतावली १।२।२४, पार्वतीमंगल, मंगल २, जानकीमंगल, मंगल १००, १२८ आदि।
४ रामचरितमानस १।४८।५
५. विनयपत्रिका १०।५

पार्वती के रूप में उत्पन्न हुई थी। इस जन्म में भी शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए वे नारद के निर्देशानुसार तपस्या करती हैं और अन्ततः शिव तथा पार्वती का विवाह हो जाता है। शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन करने के लिए तुलसीदास ने एक पृथक् कृति पार्वतीमंगल का प्रणयन किया है।

पार्वती के अन्य विविध नामों—गिरिजा, गौरी, उमा, भवानी, चण्डी आदि के आधार पर तुलसीदास ने शिव को गिरिजापति,[१] गिरिजारमन,[२] गौरीश,[३] गौरीनाथ,[४] उमापति,[५] उमावर,[६] उमारमन,[७] भवानीनाथ,[८] चण्डीश,[९] चण्डीपति[१०] आदि नामों से अभिहित किया है।

२२. गणेश तथा कार्तिकेय के पिता

ब्रह्मा ने तारकासुर के अत्याचारों से पीड़ित देवताओं को बताया कि शिव का पुत्र ही असुरों पर विजय प्राप्त कर सकता है। निदान देवों की विनय पर शिव ने पार्वती से विवाह किया। इससे उन्हें कार्तिकेय नामक पुत्र प्राप्त हुआ।

> हर-गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ।।
> तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा।।
>
> —१।१०३।६-७

विनयपत्रिका में सर्वप्रथम गणेश की स्तुति है। इसमें उन्हें शिव तथा पार्वती का पुत्र कहा है—

> गाइये गनपति जग बन्दन। संकर सुवन भवानी नन्दन।।

कवितावली के उत्तरकाण्ड में काशी का वर्णन करते समय शिव को वहाँ का

---

१. विनयपत्रिका ६।१; जानकीमंगल, मंगल १
२. रामचरितमानस १।१०३
३. वही १।१०४।४; ५।३३।२; ६।२८; गीतावली ५।२८।७
४. कवितावली ७।१६६
५. रामचरितमानस ६।२५।२; विनयपत्रिका ४।४
६. वही ७।१
७. रामचरितमानस १।४
८. कवितावली ७।१६६
९. वही १।१८, २१
१०. वही ६।४१

अधिष्ठाता, पार्वती को अधिष्ठात्री तथा पुत्रद्वय गणेश और कार्तिकेय को वहाँ का योद्धा बताया गया है ।[१]

२३. हनुमान रूप

लांगूल उपनिषद्, विविध पुराणों, रामायणों तथा लोककथाओं आदि में हनुमान के जन्म को लेकर तीन प्रकार की धारणायें मिलती हैं—

क. रुद्रावतार—स्कन्दपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, कृत्तिवास रामायण, उड़िया महाभारत, धर्मखण्ड, लांगूलोपनिषद्, हनुमद्विजय आदि ।[२]

ख. शिव रूप—महाभागवत तथा बृहद्धर्मपुराण में शिव हनुमान का रूप धारण करके राम की सहायता करने का वचन देते हैं ।[३]

ग. शिव के पुत्र—शिव महापुराण, रामविभा, सारलादास-महाभारत, तत्व-संग्रह रामायण, बेगा भूमिया जाति की दन्तकथा आदि ।[४]

अध्यात्मरामायण में सभी वानरों को देवांशसम्भूत तथा इच्छानुकूल स्वरूप धारण करने वाला बताकर[५] हनुमान को महाबलवान, पराक्रमी, बुद्धिश्रेष्ठ तथा केसरी और पवन का पुत्र कहा है ।[६] हनुमन्नाटक में उन्हें रुद्रावतार (१३।३१), रौद्र रुद्र-अवतार (५।३३), पवनपुत्र रुद्रावतार (६।३, ६।२७ तथा १३।२० के ऊपर गद्य) तथा माहेश (११।३५) बताया है ।

तुलसीदास ने हनुमन्नाटक के आधार पर हनुमान को रुद्र का अवतार मानते हुए[७] उन्हे पवन[८] तथा केसरी का पुत्र माना है[९] और उनके लिए महादेव, कपाली

---

१. कवितावली ७।१७०

२ देखिए—रामकथा, पृ० १५८, १६१, ६६०, ६६२, २३५, ६६३, ६८४, १७६

३. वही, पृ० १६३, ३२७ ४. वही, पृ० १६२, ६६४, २२७

५ असख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः ।
सर्वेदेवांशसम्भूता सर्वे युद्धविशारदाः ।।—४।६।७

६. देखिए—४।६।१२, १३, १५

७ वही २५।३; तथा—जेहि सरीर रति राम सो, सोइ आदरहिं सुजान ।
रुद्रदेह तजि नेहबस, संकर भे हनुमान ।।
जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान ।
पुरुषा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान ।।
—दोहावली १४२, १४३

८ विनयपत्रिका ३३।१; रामाज्ञाप्रश्न ६।४।१

९ विनयपत्रिका २६।१

(वि० २६।१), पुरारी (वि० २७।१), रुद्रों तथा काम-विजयकारियों में अग्रगण्य (वि० २७।३), हर्ष में नृत्यकारी (वि० २७।४), जटाजूटधारी (वि० २८।२), वामदेव (वि० २८।५), मन्मथमथन, ऊर्ध्वरेत, महानाटक निपुण (वि० २९।३), शूलपाणि (वि० २९।५), भोलानाथ-मूलनाथ (हनु० ४३) सदृश विशेषणों का प्रयोग करते हुए वामदेव-रूप (हनु० १४) कहा है। इनमे से प्रायः सभी विशेषण शिव के लिए प्रयुक्त होते हैं। एक प्रकार से देखा जाये तो तुलसी-साहित्य में शिव और हनुमान मे पूर्ण साम्य मिलता है। शिव ने शाबर मन्त्रों की रचना की है तो हनुमान महानाटक-निपुण हैं। शिव ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किया तो हनुमान ने अशोकवाटिका नष्ट कर दी थी। शिव ने राम-जन्म, राम-विवाह, पार्वती-परीक्षा तथा रामकथा-श्रवण के समय स्वरूप-परिवर्तन किया तो हनुमान भी वेष-परिवर्तन में सक्षम हैं। वे भी राम-लक्ष्मण के प्रथम दर्शन[१] तथा लंका-विजय के बाद भरत से मिलने के समय[२] विप्र रूप धारण करते है और लंका में मसक रूप से प्रवेश करते हैं।[३]

डॉ० बुल्के के अनुसार रामकथा की लोकप्रियता के कारण शैवों ने शिव की महत्ता दिखाने के लिए सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान को रुद्र का अवतार घोषित कर दिया।[४] परन्तु तुलसीदास ने शिव द्वारा हनुमत्-स्वरूप धारण करने का कारण राम की भक्ति का आनन्ददायक होना माना है।[५]

तुलसी-साहित्य में उपलब्ध हनुमान के निम्न स्वरूप विशिष्ट महत्व रखते हैं—

१. त्रिदेव आदि हनुमान के आज्ञाकारी—

करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है।—हनुमानबाहुक २०

२. हनुमान का गुणगान सुनने से देवों को प्रसन्नता—

तेरो गुनगान सुनि गीरबान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर को।—वही २२

---

१. रामचरितमानस ४।१।४, ६
२. वही ६।१२१।१ तथा ७।१क
३. वही ५।४।१
४. हिन्दी-अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक), पृ० ३४७ तथा रामकथा, पृ० ६६७ और ७२७
५. दोहावली १४२, १४३

३. संसार-रक्षक—

जयति रणधीर, रघुबीरहित, देवमणि, रुद्र अवतार, संसार-पाता ।

—विनयपत्रिका २५।३

४ संसार के अधिपति—

राहु-रवि-शक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरण शरण-भयहरण जय भुवन भर्ता ।

—वही २५।२

जयति निर्भरानन्द-सदोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्ता ।

—वही २६।१

५. सिद्धिदाता—

मंजुल मङ्गल मोदमय मूरति मारुत पूत ।
सकल सिद्धि कर कमल तल, सुमिरत रघुबर दूत ।।

—रामाज्ञाप्रश्न ६।४।१; दोहावली २२६

६. विघ्नविनाशक—

धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु ।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि बिचारु ।।—दोहावली २३०

७. राम-भक्त (दास्य भाव)—

हनूमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ राम-चरन अनुरागी ।।

—मानस ७।५०।८

जानकीनाथ चरणानुरागी ।—विनयपत्रिका २६।२ तथा २५१।१ भी;
नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ।।

—मानस ५।३४।१-२

८. राम तथा सीता के सेवक—

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे ।—विनयपत्रिका ३३।७

९. राम के स्वभाव, गुण, शील, महिमा तथा प्रभाव से परिचित—

राम ! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाव,
जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत ।—वही २५।१।१

१०. राम-जन्म से हर्षित—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमङ्ग न अमाइ ।।—रामाज्ञाप्रश्न ४।४।१

११. राम के कार्यों में सहायक—

तेरे बल रामराज किए सब सुरकाज ।
सकल समाज साज साजे रघुबर के ।।—हनुमानबाहुक ३३

१२. राम के सखा—

बामदेव रूप भूप राम के सनेही ।—वही १४
श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बँधो ।—विनयपत्रिका २८।५
समरथ सुअन समीर के, रघुबीर-पियारे ।—वही ३३।१

१३. राम के प्रिय—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना । तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।
—मानस ४।३।७

यह बताना रोचक एवं महत्वपूर्ण है कि एक स्थान पर राम हनुमान को सुत कहकर सम्बोधित करते हैं—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही । देखेउँ करि बिचार मन माही ।—वही ५।३२।७

किसी भी भारतीय आख्यान अथवा ग्रन्थ में हनुमान को राम का पुत्र नहीं माना गया है । विदेशों में मलय के सेरीराम तथा स्याम के रामजातक में ही हनुमान का जन्म राम के वीर्य से दिखाया गया है । हिकायत सेरीराम के अनुसार राम से उत्पन्न सीता के भ्रूण को अजनी के मुँह में प्रतिष्ठापित करने से अथवा तपस्यारत अजनी पर अनुरक्त होकर राम के वीर्यपतन और उसे वायु द्वारा अञ्जनी के मुख मे रखवाने से हनुमान का जन्म होता है । रामजातक में हनुमान का जन्म वानर तथा वानरी रूप राम और अञ्जनी से प्रदर्शित है ।[१] ऐसा लगता है कि मानस में राम ने इसका प्रयोग अतिशय प्रेम एव स्नेहवश किया है ।

२४. रामकथा के अधिष्ठाता एवं प्रवक्ता

वाल्मीकि को आदिकवि मानने के साथ उनकी रामायण को आदिकाव्य और प्रथम रामायण माना जाता है । परन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि वाल्मीकि-रामायण ही आदि-रामायण न होकर 'महारामायण' मूल तथा आदि-रामायण थी जो अब अनुपलब्ध है । सात काण्डों में विभाजित साढे तीन लाख श्लोकों की इस वृहद् रामायण के रचयिता शिव माने जाते हैं जिसे उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रथम सतयुग में

१ देखिए—रामकथा पृ० ६६१

पार्वती को सुनाया था ।[१] इसके अतिरिक्त निम्न अन्य रामायणे भी शिव तथा पार्वती के संवाद-रूप में रची गई हैं :—

क. अध्यात्मरामायण : एक समय कैलास पर आसीन शिव से उनके वामाक मे विराजमान पार्वती राम के तत्व को पूछती है। उसीके उत्तर मे शिव ने अध्यात्मरामायण का प्रणयन किया है।[२] इसमे प्रमुख वक्ता-श्रोता शिव और पार्वती के अतिरिक्त अन्य वक्ता-श्रोता हैं—सीता-राम तथा हनुमान, ब्रह्मा तथा नारद और सूत तथा पाठक ।

ख आनन्दरामायण : १२२५२ श्लोकों की यह बृहत् रामायण ९ काण्डो मे विभाजित है। सीता द्वारा शतस्कन्ध रावण तथा चण्डी रूप मे मूलकासुर के वध से इस पर शाक्त प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।[३] इस रामायण के लौकिक प्रकाशन के विषय मे कहा गया है कि इसे ब्रह्मा ने शिव से सुनकर नारद को सुनाया और नारद ने उसे वाल्मीकि को सुनाया ।[४]

ग रामायण-महामाला : ५६,००० श्लोको की इस रामायण की रचना तामस मन्वन्तर के दशम त्रेता मे हुई थी। यह सप्त सोपानबद्ध है और इसमें शिव का नील-गिरि पर मराल वेष से निवास, मराल होने के कारण, काक से कथा-श्रवण भी रचना का विशिष्ट अंग बनाया गया है ।[५]

घ. बलरामदास रामायण : इसके अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण को रुद्रावतार माना गया है और अनुसूया उन्हे शूलधारी कहती है ।[६]

ङ रामायण चम्पू : इसके रचयिता शिव परन्तु श्रोता नारद हैं। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तर का प्रथम त्रेता है। इसमें कार्तिकेय-जन्म के अतिरिक्त गणेश-उत्पत्ति का भी वर्णन है। ऐसा लगता है कि यह शैव मत से अधिक प्रभावित है ।[७]

अध्यात्मरामायण के अनुकरण पर तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में चार संवाद रखे हैं—

---

१. हिन्दुत्व, पृ० १३७
२. अध्यात्मरामायण १।१।५-१५
३. रामकथा, पृ० १६८-१७०
४ वही, पृ० ४१
५ हिन्दुत्व, पृ० १३६
६. रामकथा, पृ० २४२
७. हिन्दुत्व, पृ० १४३

क. तुलसीदास और पाठक या सन्त,

ख. याज्ञवल्क्य-भारद्वाज,

ग. भुशुण्डि-गरुड़,

घ. शिव-पार्वती ।

इनमे प्रमुख सवाद शिव और पार्वती का है । एक बार त्रेता युग में शिव और सती अगस्त्य के आश्रम से कैलास आ रहे थे । मार्ग में शिव ने सीता की खोज में विकल राम को देखकर सच्चिदानन्द कहकर उनका अभिवादन किया तो सती के मन मे सन्देह उत्पन्न हुआ—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ।।
बिष्नु जो सुर हित नर तनु धारी । सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।
खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ।।

—मानस १।५० तथा ५१।१-२

शिव सती को राम की यथार्थता बताते है, परन्तु सती सीता का रूप धारणकर राम की परीक्षा लेती हैं और शिव उनका परित्याग कर देते हैं । मनसा परित्यक्त सती पुनर्जन्म में शिव को पति के रूप में पाकर पुनः प्रश्न करती हैं कि जिन राम को मुनि-गण अनादि ब्रह्म बताते हैं और वेद-पुराण जिनका गुणगान तथा आप जिनका अहर्निश जाप करते हैं वे दशरथ के पुत्र हैं अथवा परमब्रह्म ? वे तो अज्ञ की भाँति नारी-वियोग में मग्न थे ? यदि उन्हे परमब्रह्म का अवतार मान लिया जाये तो अवतार का कारण, बालचरित, सीता-विवाह, वनवास आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा अन्य भी जो रहस्य हों, उन्हे कहिए[1]—

औरउ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ।।

— मानस १।१११।३

पार्वती के इन प्रश्नो का शिव ने जो उत्तर दिया वही रामकथा अथवा रामचरित है । शिव ने प्रारम्भ में इसे छिपाकर रखा था,[2] परन्तु अवसर जानकर उसे उद्घाटित किया—

संम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।

—वही १।३०।३

---

१. रामचरितमानस १।१०७वें दोहे के आगे ।

२. मति अनुरूप कथा में भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ।।—वही ७।१२८।१

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ।।

—वही १।३३।१

रामचरितमानस मुनि-भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ।।

—वही १।३५।६

तथा—रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।

—वही १।३५।११

रामकथा के नामकरण के विषय मे तुलसीदास कहते है—

रचि महेस निज मानस राखा । × × ×

ताते रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषिहर ।।

—वही १।३५।११-१२

अर्थात् शिव ने इसे अपने मानस में गुह्य करके रखा था, इसलिए उन्होने राम के इस चरित को रामचरितमानस कहा । यहाँ मानस का अर्थ हृदय है और मानस सरोवर को भी कहते हैं । अध्यात्मरामायण (१।१।५२) मे राम हनुमान से कहते है कि आत्मा और परमात्मा-रूप परम रहस्य का उद्घाटन मेरा हृदय ही है जो मैंने तुम्हे सुनाया है ।

इदं रहस्यं हृदय ममात्मनो मयैव साक्षात्कथित तवानघा ।

इस प्रकार जैसे अध्यात्मरामायण का रहस्य-उद्घाटन राम का हृदय है उसी प्रकार तुलसी का 'रामचरितमानस' शिव का हृदय है ।

रामचरित 'मानस' = रामचरित रूप सरोवर

सरोवर = ह्रद

ह्रद तथा मानस = हृदय

रामचरित 'मानस' = रामचरित रूपी हृदय

अध्यात्मरामायण में आत्मा-परमात्मा के उद्घाटित रहस्य का हृदय नाम राम ने स्वय रखा है और तुलसीदास के द्वारा वर्णित रामकथा का रामचरितमानस नाम भी स्वयं शिव का दिया हुआ है ।

शिव रामकथा के अधिष्ठाता ही नहीं, उसके व्याख्याता भी हैं । इसीलिए महारामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, रामायण महामाला, बलरामदास रामायण, रामायण चम्पू तथा १८वीं शती की काश्मीरी रामायण अथवा रामावतार-चरित[1] में प्रमुख वक्ता शिव ही हैं ।

---

१. रामकथा, पृ० २२६

रामचरितमानस के अनुसार शिव ने रामकथा का उद्‌घाटन तीन पात्रों के प्रति किया था—

क. उमा :

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।
—मानस १।३०।३

रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।
—वही १।३५।११

ख. काकभुशुण्डि :

सोइ सिव काकभुशुण्डिहि दीन्हा ।—वही १।३०।८

ग. लोमश :

रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तात मैं पावा ।।—वही ७।११३।११

काकभुशुण्डि ने रामकथा शिव के अतिरिक्त लोमश ऋषि से भी सुनी थी—

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । रामचरितमानस तब भाषा ।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई । × × ।।
—वही ७।११३।९-१०

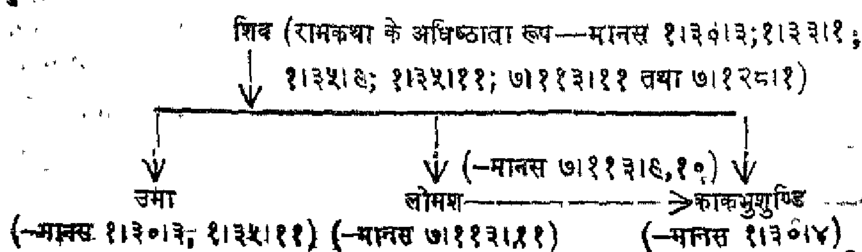
इन काकभुशुण्डि से ही रामकथा का प्रचार लोक में हुआ । उन्होंने यह गरुड़ (मानस १।१२० ख) तथा याज्ञवल्क्य को सुनाई थी और याज्ञवल्क्य से इसे भारद्वाज ने प्राप्त किया था—

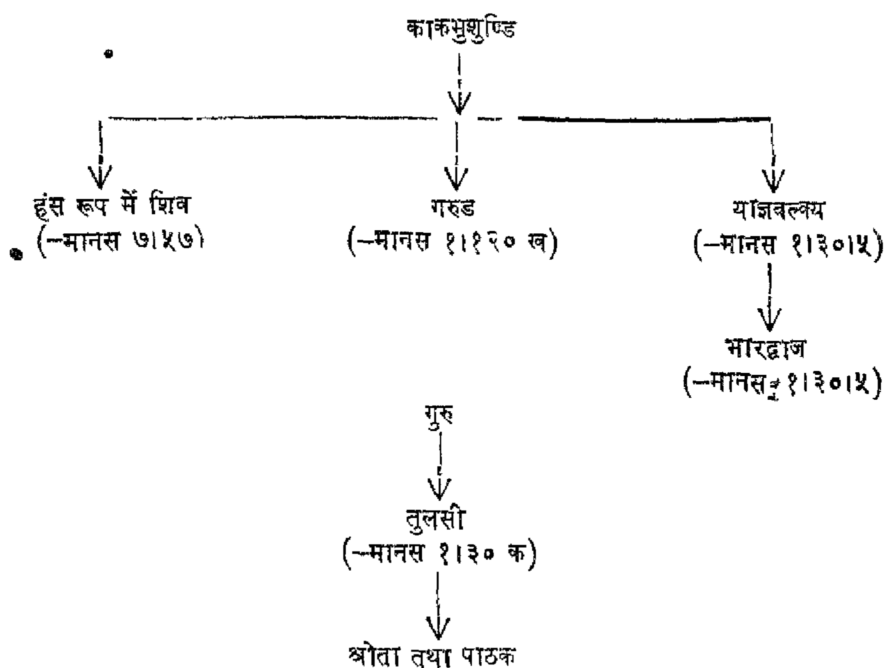
सोइ सिव काकभुशुण्डिहि दीन्हा । × × ।।
तेहि सन जागबलकि पुनि पावा । तिन्ह पुनि भारद्वाज प्रति गावा ।।
—वही १।३०।४-५

तुलसीदास ने इसे अपने गुरु से सुना था—

मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।—वही १।३० क

इस प्रकार शिव द्वारा रामकथा के लौकिक उद्‌घाटन का यह क्रम निम्न प्रकार हुआ—





मूलगोसाईंचरित में भी शिव द्वारा रामकथा के लौकिक प्रकाशन का यही क्रम दिया गया है।[1]

२५. रामकथा-रस के भोक्ता

मानस के लंकाकाण्ड (१२३।४-५) मे भुशुण्डि गरुड़ से कहते है कि आपने मुझसे शिव की प्रिय रामकथा सुनकर मुझे अत्यन्त उपकृत किया है। स्वयं तुलसी ने कहा है कि रामकथा शिव को नर्मदा के समान प्रिय है।[2] इस प्रिय भाव के कारण शिव ने रामकथा से प्रेम न करने वालो के कानो को सर्प-विवर के समान कहा है।[3]

---

१. गोसाईंचरित, पृ० २८६

२. सिव प्रिय मेकल सैल सुता सी।—मानस १।३१।१२

नर्मदा से प्राप्त स्फटिक, कृष्ण अथवा रक्त वर्ण के अण्डाकार प्रस्तर खण्डो को शिव का स्वरूप माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि शिव को नर्मदा अत्यन्त प्रिय होने के कारण वे उसमे सात्वत निवास करते है। इसी प्रकार उन्हें रामकथा भी इतनी प्रिय है कि उसी मे निमग्न रहते है। वायु, पद्म, स्कन्द आदि पुराणों में भी नर्मदा को शिव की प्रिय बताया है।—मानसपीयूष

३. रामचरितमानस १।११३।२

शिव के रामकथा-प्रेम का एक प्रमाण उसके उद्घाटन में निहित है। उन्होंने रामकथा एकमात्र पार्वती के अतिरिक्त लोमश तथा काकभुशुण्डि को भी सुनाई है। परन्तु उनके रससिद्ध होने का प्रत्यक्ष प्रमाण रामकथा-श्रवण है। शिव रामकथा के अधिष्ठाता होकरभी अगस्त्य तथा काकभुशुण्डि से उसे सुनते है।[१] भुशुण्डि से रामकथा सुनने के लिए उन्हें मराल-वेष तक धारण करना पड़ा।

२६. राम की महत्ता से परिचित

शिव में राम के गुप्त रूप को जानने की शक्ति थी, इसीलिए उन्होंने अगस्त्य के आश्रम से आते समय मार्ग में राम को देखकर अभिवादन किया।[२] लंका-युद्ध के समय जब राम नागपाश से आबद्ध होते हैं[३] तथा मायामय असंख्य रावणों को देखकर देवता पलायन को तत्पर होते हैं,[४] उस समय शिव में राम की महिमा जानने के कारण कोई अन्यथा भाव नही आता है। वे जानते है कि यह राम की लौकिक लीला-मात्र है। नागपाश मे आबद्ध राम को मुक्त करने से विमोहित गरुड का मोह नष्ट करने के लिए ब्रह्मा उन्हे शिव के पास भेजते समय कहते हैं—

जान महेस राम प्रभुताई ।।—मानस ७।६०।६

राम भी शिव को अपने स्वभाव से परिचित मानते हैं—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुशुण्डि संभु गिरिजाऊ ।।

—वही ५।४८।१

तथा—बामदेव ! राम को सुभाव सील जानियत।—कवितावली ७।१३६

राम के यथार्थ स्वरूप से अवगत होने के कारण ही सत्योपाख्यान मे शिव विश्वामित्र को आदेश देते है कि वे यज्ञ की रक्षा के लिए राम को ले आये।[५]

२७. राम की लीलाओं के रस-भोक्ता

त्रेता युग में अगस्त्य के आश्रम से आते समय शिव विचार करते हैं कि राम रघु के वंश में अवतरित हुए हैं। किसी प्रकार उनके दर्शन हो जाते। संयोग से उनकी राम से भेंट हो जाने पर वे इतने प्रसन्न होते है कि मार्ग में शरीर पुलकायमान हो उठता है। शिव की तत्कालीन भावविभोरता के विषय में सती सोचती हैं—

---

१. रामचरितमानस १।४८।३ तथा ७।५७
२. वही १।५०।३
३. वही ६।७३।११ से दोहे तक।
४. वही ६।६६।१-८
५. रामकथा, पृ० ३४१

भए मगन छबि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ।।
—मानस १।५०।८

शिव विमान पर आरूढ़ होकर राम-रावण युद्ध देखने जाते है[1] और राम के जन्म तथा विवाहोत्सव के समय तो गुप्त वेष में घुलमिलकर लीला-पान करते हैं।[2] लंका-विजय के बाद शिव राम के पास सबसे बाद में निश्चिन्त भाव से जाते हैं और राम की स्तुति करके राज्याभिषेक पर पहुँचने की पूर्व-सूचना दे देते है।[3] यह पूर्व-सूचना उनके अतिशय प्रेमाधिक्य की परिचायक है। राज्याभिषेक के समय भी वे एकान्त देखकर सबसे बाद में पुलकित शरीर से जाते है।[4] इन्हीं कारणो से भारद्वाज कहते है कि राम को देखकर शिव के हृदय तथा नेत्र परितृप्त नही होते हैं।[5] काकभुशुण्डि का तो कहना है कि शिव ने योगी का अशिव रूप राम की लीलायें देखने के लिए ही धारण किया—

जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद ।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ।।—मानस ७।८८ क

२८ राम-नाम के महत्व से परिचित

तुलसीदास स्वय ही नही उनके पात्र भी राम-नाम को मुक्ति का अचूक साधन मानते हैं।[6] बालि कहता है कि राम-नाम के प्रभाव से ही शिव काशी में मोक्ष प्रदान करते हैं।[7] काशी पुण्य क्षेत्र है। वहाँ मृत्यु होने से मोक्ष प्राप्त होता है। परन्तु यह मोक्ष सहज ही नही मिल जाता। मृत्यु के समय शिव राम-नाम का उपदेश देते हैं और उससे मुक्ति होती हैं।

---

१ रामचरितमानस ६।८१।१-२

२. वही १।१६६।३-८ तथा १।३२१।६-८ और छन्द,

३. वही ६।११४ क से ११५ तक;

४. वही ७।१२ ख,

५ वही २।२०६

६. पतित पावन राम नाम सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ।। —विनयपत्रिका ६६।५
काकभुशुण्डि कहते हैं—
जाकर नाम मरत मुख आवा ।
अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ।।—मानस ३।३१।६

७. जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अविनासी ।।—वही ४।१०।४

महिमा राम नाम कै, जान महेस ।
देत परमपद कासीं, करि उपदेस ।।—बरवै रामायण ७।५३

तथा—महामन्त्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।।—मानस १।१९।३

राम-नाम की इस मोक्षदायक शक्ति को शिव स्वयं स्वीकार करते हैं—

कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम-बल करउँ बिसोकी ।।
—मानस १।११९।

इसीलिए उन्होंने शतकोटिरामायण में से दो अक्षरों के इस राम-नाम को निकाल लिया है—

रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ।।
—वही १।२५ तथा दोहावली ३१

तथा—सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है ।—विनयपत्रिका २५४।२

मत्स्यपुराण (५३।१०), पद्मपुराण (४।१।२४), पाराशर्य उपपुराण, अद्भुत-रामायण (सर्ग १), आनन्दरामायण (यात्रा काण्ड, सर्ग २; राज्य काण्ड, सर्ग १) आदि में वाल्मीकिकृत एक शतकोटिश्लोक रामायण का उल्लेख मिलता है।[१] आनन्द-रामायण (यात्रा काण्ड) के अनुसार वाल्मीकि कृत शतकोटि रामायण की कथा सुनने के लिए तीनों लोकों से देव-यक्ष-दैत्य आदि आया करते थे। रामायण के सौन्दर्य से आकर्षित होकर प्रत्येक लोक के निवासी उसे अपने लोक में ले जाने की इच्छा करने लगे तो शिव ने विष्णु से इस विवाद का निर्णय कराया। विष्णु ने तीनों लोकों के लिए उसके तीन भाग किए तो केवल दो अक्षर—'राम' नाम—शेष रहे, जिन्हे शिव ने माँग लिया। इन्ही से शिव मृत्युकाल में काशीवासियों को मुक्ति देते हैं।

द्वैक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः ।
उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ ।।
रामेति तारक मन्त्र तमेव विद्धि पार्वति ।—सर्ग २।१५-१६

इस प्रकार राम-नाम सर्वप्रथम शिव को प्राप्त हुआ और शिव ही इसके प्रथम व्याख्याता हैं।

इस राम-नाम के प्रभाव से ही नाग, कपाल, भस्म आदि धारण किए कुवप शिव शिव कहलाते हैं।[२] इसी के विश्वास पर शिव ने कालकूट का पान कर लिया और

---

१. रामकथा, पृ० ७२६ तथा मानसपीयूष, बालकाण्ड, भाग १, पृ० ४२४-४२५
२ नाम प्रसाद सम्भु अबिनासी । साजु अमङ्गल मङ्गल रासी १ २६ १

कालकूट ने अमृत सदृश फल देकर शिव को अजर अमर कर दिया।[१] जैमिनिपुराण के अनुसार राम-नाम का प्रभाव एकमात्र शिव ही जानते है और पद्मपुराण के अनुसार राम-नाम के प्रभाव को अन्यों से पार्वती दो गुना जानती हैं तथा शिव पार्वती से भी दो गुना जानते है।[२] इसीलिए—

> बेदहू, पुरानहू पुरारिहू पुकारि कह्यो,
> नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है।—विनयपत्रिका २५५।३

२९. राम-नाम के उपासक

जिस राम-नाम के कारण शिव पर कालकूट विष का अमृत तुल्य प्रभाव पड़ा, उसका शिव द्वारा जप करना स्वाभाविक है। वे उसका जाप काशी में मोक्ष प्रदान करने के लिए तो करते ही है,[३] समस्त अमङ्गलों तथा पापों को नष्ट कर कल्याण करने के लिए भी उसे ही जपते हैं।

> मङ्गल भवन अमङ्गल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
> —मानस १।१०।२

तथा—हरन अमङ्गल अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान॥—दोहावली ३५

तुलसीदास ने रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, दोहावली आदि में विभिन्न स्थानों पर शिव को राम-नाम का उपासक कहा है।

३०. राम-भक्ति-माहात्म्य के ज्ञाता

तुलसीदास ने कितने ही स्थलों पर राम-भक्ति का महत्व प्रतिपादित किया है। वे राम की भक्तिहीन जीवन को व्यर्थ मानते हैं,[४] क्योंकि राम-भक्ति के बिना सुख

---

१. नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥—वही १।१९।८
तथा—मन्त्र सो जाइ जपहि, जो जपि भे, अजर अमर हर अचइ हलाहलु।
—विनयपत्रिका २४।४

२. मानसपीयूष, बालकाण्ड, प्रथम भाग, पृ० ३४९

३. रामचरितमानस १।१९।३, १।४६।३ तथा दोहा, १।५२।८, १।६०।३, १।७५।८, १।१०८।७; विनयपत्रिका १०८।२, १५२।११, १५७।२, १८४।४, २४७।२; गीतावली ३।१२।४; कवितावली ७।१५०, दोहावली २४ आदि;

४. कवितावली ७।३८

असम्भव है ।[1] राम-भक्ति के इस माहात्म्य से शिव परिचित है ।[2] वे पार्वती से स्वानुभूति प्रकट करते हुए कहते है कि ससार स्वप्नवत् मिथ्या और एकमात्र राम की भक्ति ही सत्य है—

उमा कहउँ मै अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ।।

—मानस ३।३९।५

३१. राम-भक्ति प्रदायक

तुलसीदास ने विनयपत्रिका की प्रारम्भिक स्तुतियो में प्रायः सभी देवों के साथ शिव से भी राम-भक्ति याचित की है ।[3] परन्तु शिव के सम्बन्ध मे उनकी तद्विषयक धारणा किंचित् भिन्न है, क्योंकि वे कहते हैं—

बिनु तव कृपा राम-पद-पङ्कज, सपनेहुँ भगति न होई ।।—विनयपत्रिका ९।२

तथा—नातो नाते राम कें राम सनेहँ सनेहु ।

तुलसी माँगत जोरि कर जनम-जनम सिव देहु ।। – दोहावली ८९

इसी प्रकार दोहावली में एक स्थान पर (दोहा १३३) विश्वास के बिना भक्ति की प्राप्ति असम्भव बताई गई है और मानस के प्रारम्भ मे (श्लोक २) शिव को विश्वास-रूप कहा गया है । यह भी द्रष्टव्य है कि शिव रामकथा के अधिष्ठाता हैं और रामकथा-श्रवण से राम-भक्ति प्राप्त हो जाती है ।[4] रामकथा के सप्त सोपान राम-भक्ति के मार्ग हैं ।[5] कथा-श्रवण के बाद पार्वती स्वीकार करती है कि उनमें राम की भक्ति का अभ्युदय हो गया है ।[6] इससे निष्कर्ष निकलता है कि शिव राम-भक्ति प्रदान करने वाले हैं। शिव ने भी भुशुण्डि से कहा है कि मेरे प्रभाव से तुम्हारे हृदय मे राम की भक्ति उत्पन्न होगी ।[7] फिर स्वय राम कहते हैं कि—

---

१. विनयपत्रिका ८७।१
२. गीतावली २।८२।१
३. विनयपत्रिका ३, ६, ७, ९, १०, १४
४. मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास ।
   जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि बिस्वास ।।—मानस ७।१२६
   तथा—पुण्य पापहर सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
   —वही, उत्तरकाण्ड के अन्त में दूसरा श्लोक;
५. रामचरितमानस ७।१२९।३
६. वही ७।१२९।८ तथा दोहा,
७. वही ७।१०९।१०

औरउ एक गुपुत मत, सबहि कहउँ कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि ।।—मानस ७।४५

तथा—भगति मोरि तेहि संकर देइहि ।।—वही ६।३।३

३२. विष्णुलोक प्रदायक

राम ने सागर-सेतु पर शिवलिंग स्थापित किया था, जो रामेश्वर कहलाया। राम कहते है कि जो रामेश्वर पर गंगाजल अर्पित करेगा उसे मेरी सायुज्य मुक्ति और जो उसके दर्शन करेगा उसे सालोक्य मुक्ति अर्थात् मेरा लोक प्राप्त होगा।[१] इसी आधार पर तुलसीदास ने शिव को श्रीनिकेत देने वाला कहा है—

देत सम्पदा समेत श्रीनिकेतन जाचकनि ।—कवितावली ७।१६०

तुलसी-साहित्य में शिव तत्व के प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि उसमे शिव का महत्वपूर्ण एवं अपना एक विशिष्ट स्थान है। कवि ने शिव को आशुतोष, अवढरदानी, देवाधिदेव, जगद्गुरु, रामकथा का अधिष्ठाता तथा व्याख्याता, राम-भक्ति और विष्णु लोक प्रदायक दिखाकर उन्हे एक परमोच्च आसन पर आरूढ कर दिया है। उनके अनुग्रह के बिना कोई भी राम-भक्ति पाने में असमर्थ है। इतना ही नही उन्हे विष्णु से भी महान् दिखाया गया है। तुलसी ने यह अनायास नही सायास कहा होगा। तुलसी का अभिधेय रामकथा और राम-भक्ति का निष्पादन है, परन्तु यह दोनों शिव के अधिकार में हैं। यहाँ पर राम और शिव से सम्बद्ध कुछ ऐसी स्थितियों पर विचार किया जा रहा है, जिनके आधार पर यह कहना कठिन होगा कि उनमे कौन महान् है, और क्या वे दो सत्तायें हैं या एक ही सत्ता के दो विविध रूप अथवा दो सत्ताओं का एक ही समन्वित स्वरूप।

राम और शिव की सापेक्षता

यहाँ पर राम और शिव के ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध द्रष्टव्य हैं जिनमें दोनों एक ही भावभूमि पर अवस्थित हैं। कुछ विषयों मे दोनो की सहिष्णुता का बोध होता है तो कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें दोनों के एकात्म भाव का प्रदर्शन प्रतीत होता है।

१. नाम-प्रचार में अन्योन्याश्रय

राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हुए तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है—

---

१. रामचरितमानस ६।३।२

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पण्डित पुरारि रे ॥—६७।४

× ×

गावत वेद पुरान, सभु-सुक, प्रगट प्रभाउ नाम को।—६६।४

× ×

गति न लहै राम-नाम सों बिधि सो सिरजा को ?
सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजा को ॥—१५२।११

× ×

कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥—१५६।२

× ×

संभु-सिखवन रसनहूँ नित राम-नामहिं घोसु।—१५६।४

× ×

मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि।
राम-नाम को प्रताप हर कहैं, जपैं आप,
जुग-जुग जानैं जग बेदहूँ बरनि ॥—१८४।४

राम-विवाह के समय नगर के वैभव एवं ऐश्वर्य को देखकर देवगण आश्चर्य-चकित एव स्तम्भित रह जाते है। उस समय शिव राम की महिमा एवं यथार्थता का बोध कराते हुए राम-नाम को समस्त अमंगलनाशक बताते हैं।[१] शिव ने रावण द्वारा अपमानित एवं परित्यक्त विभीषण को कुबेर के यहाँ मिलने पर यही परामर्श दिया कि तुम्हे राम की शरण में जाना चाहिए क्योंकि उनका नाम तक दुख-सागर को सोखने के लिए अगस्त्य के समान है।[२]

दूसरी ओर विष्णु शिव के नाम-जप का उपदेश देते हैं। अपने मोह का परि-शमन होने पर नारद विष्णु से क्षमा-याचना करते हुए पाप-प्रक्षालन का उपाय पूछते हैं। तब विष्णु उन्हें शिव के नाम-जप का आदेश देते हैं जिससे हृदय को तत्काल शान्ति प्राप्त होगी।

जपहु जाइ संकर सतनामा। होइहि हृदयँ तुरत विश्रामा ॥
—मानस १।१३८।५

१. रामचरितमानस १।३१५।१
२. राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै।
जाको नाम कुभज कलेस-सिंधु सोखिबे को ॥—गीतावली ५।२७।२-३
तथा—मानस १।१६।३ कवितावली ७।७४; बरवैरामायण बरवै ५३, ५६

मानस के अनुसार विष्णु शिव के नाम-जाप का आदेश इसलिए देते हैं कि नारद ने उन्हे दुर्वचन कहते हुये शाप दे दिया था। परन्तु शिवपुराण में इसका कारण शिव के सुझाव की अवहेलना है। नारद ने काम-विजय की बात शिव को बताई तो शिव ने कहा था कि इसे विष्णु से मत कहना। परन्तु नारद ने विष्णु से कह दिया था, जिसके परिणाम मे स्वयवर तथा शाप की घटनाएँ घटित हुयी। शिवपुराण मे भी विष्णु ने शतनाम-शिवस्तोत्र के जप का आदेश दिया है। शिव के शतनाम शिवपुराण के अतिरिक्त शिवलिंगार्चनतन्त्र मे भी मिलते हैं।[1]

२. भक्ति-प्रचार में अन्योन्याश्रय

शिव ने रामकथा का उद्घाटन पार्वती के विमोह को दूर करने के लिए किया था। राम की लौकिक लीलाओं से भ्रमित होकर सती उन्हे सामान्य मनुष्य समझती हैं परन्तु शिव जब उनको निर्गुण और सगुण का भेद बता देते हैं कि निराकार ही साकार हो जाता है, तब पार्वती भी राम-भक्त हो जाती है।[2]

रामकथा कहते हुए बालि-वध, जटायु की मृत्यु, सेतुबन्ध, राम-रावण-युद्ध आदि कितने ही स्थलो पर शिव राम की भक्ति का महत्त्व बताते हुए भक्ति करने की प्रेरणा देते जाते हैं।[3] नाग-पाश मे आबद्ध राम को मुक्त करने पर गरुड विमोहित हो जाता है। तब शिव उसे सत्सग द्वारा राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए नीलगिरि पर भुशुण्डि के पास भेज देते है।[4] त्रेता युग में शिव अगस्त्य के आश्रम में इसी उद्देश्य से गए थे कि रामकथा का रसपान और राम-भक्ति का प्रचार कर सकें। अगस्त्य के पूछने पर शिव उन्हे राम की भक्ति बताते है।

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही सभु अधिकारी पाई॥

—मानस १।४८।८

तथा—भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई।—वही १।५१।७

राम तो शिव-भक्ति का प्रचार सप्रमाण करते है। सेतुबन्ध के समय वे पहले रामेश्वर नाम से शिवलिग की स्थापना तथा पूजन करते है, फिर शिव-भक्ति की

---

१. मानस पीयूष, बालकाण्ड, भाग २ ख, पृ० ७१५-७१६
२. रामचरितमानस १।११६।७-८ तथा ७।१२६ भी;
३. वही ३।१२।५, ३।३३।३, ६।३, ६।४५।४-५ आदि;
४ वही ७।६१; विनयपत्रिका में भी शिव ने द्वेषों के परित्याग तथा भगवत्कथा-श्रवण को भगवद्भक्ति का मार्ग बताया है (—पद २०५)।

महिमा बताते हैं। राम का कहना है कि रामेश्वर के दर्शन से विष्णुलोक और रामेश्वर पर जल समर्पित करने से सायुज्य मोक्ष प्राप्त होगा।[1]

पुराणों मे पद्म, भागवत तथा स्कन्द ने शिव को वैष्णव भक्ति के व्याख्याता रूप में चित्रित किया है तो शिवपुराण ने विष्णु को शैव भक्ति का प्रचारक दिखाया है। मत्स्य तथा गरुड पुराणो मे दोनों ही स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं।[2]

३. सेवक-स्वामि भाव

तुलसीदास ने रामचरितमानस के प्रारम्भ मे शिव से अपने तथा राम के विविध सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है—

सेवक स्वामि सखा सिय पी के।—१।१५।४

इनमें से प्रथम दो सम्बन्ध परस्पर विरोधात्मक दिखाई देते हैं क्योकि जो सेवक होगा वह अपने स्वामी का भी स्वामी कैसे होगा। परन्तु तुलसीदास ने दोनो मे अनन्यता एव समानता-बोध के लिए उनमें परस्पर सेवक तथा स्वामी दोनो भाव स्थिर किए हैं।

राम पार्वती से विवाह के लिए जब शिव को प्रेरित करते हैं तो शिव का यही उत्तर है कि अनुचित होते हुए भी मैं आप सदृश स्वामी के आदेश की अवमानना नहीं कर सकता हूँ।[3] आगे जब ब्रह्मा आदि देवगण विवाह हेतु प्रार्थना करते है उस समय भी शिव अपने 'प्रभु' का आदेश मानकर स्वीकृति देते है।[4] पार्वती से विवाह के बाद राम विषयक पार्वती के सन्देहो का शमन करते हुए शिव ने स्पष्ट कहा है—

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ।—मानस १।११६

तथा—कासीं मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अतरजामी॥

—वही १।११९।१-२

यही कारण है कि तुलसीदास ने कई स्थानों पर राम के चरणो को शिव द्वारा 'सेव्य'[5] तथा राम को शिव का जीवँनधन और 'साहेबु' कहा है।[6]

---

१. रामचरितमानस ६।३।२
२. देखिए—हरिहर-उपासना : उद्भव तथा विकास, पृ० ५९-६०
३. कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
—मानस १।७७।१
४. वही १।८९।५
५. वही ४।२५, ५।४७, ७। श्लोक २; विनयपत्रिका ४९।५, ६४।२
६. गीतावली २।२।३; कवितावली ४।१२५

यह सच है कि शिव, हनुमान, लक्ष्मण तथा भरत राम को स्वामिवत् मानते हैं, परन्तु राम का उनके प्रति दूसरा ही दृष्टिकोण है वे उन्हे क्रमशः स्वामी, सखा तथा बन्धु ही मानते है—

राम ! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत ।

× ×

आप माने स्वामी के सखा सुभाइ भाइ, पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत ।

—विनयपत्रिका २५१।१-२

सस्कृत मे शिवपुराण शिव को राम का स्वामी स्थिर करता है,[१] तो लांगूल उपनिषद् मे हनुमान-रूप कालाग्नि रुद्र राम के सेवक दिखाए गए हैं ।[२] रामेश्वर शब्द में षष्ठी तत्पुरुष समास—रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः—से ईश्वर राम के स्वामी और 'राम एव ईश्वरो यस्य स.' समास करने से राम शिव के स्वामी अर्थ निष्पन्न होता है ।

४ परस्पर प्रिय भाव

सेवक स्वामी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध दोनों को मैत्री के समकक्ष धरातल पर ले आता है । सत्यता तो यह है कि सच्ची मित्रता मे प्रत्येक अन्य का स्वामी भी होता है और सेवक भी । शिव को स्वामी मानकर राम के बात करने[3] से उनका प्रिय भाव ध्वनित होता है, परन्तु शिव द्वारा सती के परित्याग पर तुलसी ने स्पष्ट कहा है—

सिव सम को रघुपति व्रतधारी । बिनु अघ तजी सती अस नारी ।।
पनु करि रघुपति भगति देखाई । को सिव सम रामहि प्रिय भाई ।।

—मानस १।१०४।७-८

यहाँ पर शिव की ओर से राम के प्रति भक्ति-भाव है, जबकि राम उन्हे भाई के तुल्य मानते है ।

नारद के मोह का परिशमन होने पर राम उन्हें शिव-शतनाम के जप का आदेश देते हुए कहते हैं—

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे । असि परतीति तजहु जनि भोरे ।।

—मानस १।१३८।६

---

१. रुद्र संहिता, सती खण्ड, अ० २४

२. लांगूल उपनिषद् १-२

३. रामचरितमानस २।२६४।२

तथा सेतुबन्ध के समय शिवलिंग स्थापित करते हुए कहा है—सिव समान प्रिय मोहि न दूजा (-वही ६।२।६) । गुरु का अपमान करने के कारण शिव भुशुण्डि को शाप देते हैं, परन्तु भुशुण्डि के गुरु द्वारा क्षमा-याचना करने पर शिव कहते हैं कि क्षमाशील तथा परोपकारी ब्राह्मण मुझे राम के समान प्रिय है ।[१]

यही कारण है कि तुलसीदास ने कितने ही स्थलों पर राम के लिए कामारि-प्रिय, कामारि अभिरामकारी, अनग-अरि प्रिय, शिव-प्राण सदृश विशेषणों का प्रयोग किया है ।[२] बृहत्कोशलखण्ड में राम तथा शिव की मैत्री[३] तथा पद्मपुराण (३।५०। २०-२१), बृहन्नारदीय पुराण (२१।७०-७१) आदि में उनके समान भाव का प्रतिपादन है । 'रामेश्वर' शब्द में भी 'रामश्चासौ ईश्वरः' समास करने से राम और ईश्वर (शिव) की समता सिद्ध होती है ।

५. उपास्य-उपासक

भागवतपुराण (१२।१३।१६) तथा स्कन्दपुराण (कल्याणाक, वैष्णव, उत्कल, पृ० ३६३) में शिव को परम वैष्णव माना गया है और मत्स्य (अ० १७९), पद्म (४।३७, ४६), आदि (अ० १६), देवीभागवत (८।८) आदि पुराणों मे शिव नरसिंह, राम, कृष्ण, संकर्षण तथा विष्णु की स्तुति और भक्ति करते हैं । दूसरी ओर हरिवंश (विष्णु ७४।८-३८, ४६), पद्म (स्वर्ग, अ० २८, ३६, ३।३७), देवीभागवत (४।२५, १०।४), शिव (रुद्र, सृष्टि, अ० २), वायु (अ० २४), लिंग (अ० १८), स्कन्द आदि पुराणो मे कृष्ण, राम, नर-नारायण तथा विष्णु को शिव की स्तुति तथा पूजा करते दिखाया है । परवर्ती कृष्ण उपनिषद् के अनुसार कृष्ण ने शिव की भक्ति और उन्हे अपना एक नेत्र अर्पित करके शिव से चक्र प्राप्त किया था । शरभ उपनिषद् में भी विष्णु को शिव के चरणकमलों का अभिलाषी बताया है ।

तुलसीदास ने इन दोनों ही स्थितियो को ग्रहण करते हुए शिव तथा राम मे अन्योन्याश्रित भक्ति प्रदर्शित की है । परन्तु दोनों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि शिव को राम-भक्ति दिलाने के प्रति तुलसी अधिक जागरूक रहे हैं । इसीलिए राम को

---

१. छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ।।—वही ७।१०९।५

२. विनयपत्रिका ५०।६, ५५।१; रामचरितमानस १।१९८।२ आदि । मानस मे अरण्यकाण्ड की शैव स्तुति में शिव को 'श्रीरामभूपप्रियम्' कहा गया है और गीतावली (१।८०।२) मे मिथिलावासी सीता को पार्वती तथा राम को शिव का प्रिय बताते हैं ।

३ रामकथा पृ० १७

मनोजवैरिवन्दित, कामारिसेव्य, कामारिवन्दित, भवबन्ध[1] आदि विशेषणों से अभिहित किया है। इसी प्रकार कितने ही स्थानों पर राम के लिए मार-रिपु-हृदय-मानस-मराल, महेस-मन-मानस हंस, संकर-मानस-राजमराल, हर-हृदि-मानस बाल-मराल, मदनरिपु कंज हृदि-चंचरीक, शर्व-हृदि-कंज-मकरन्द-मधुकर रुचिर रूप, काम-अरि-हृदय-कंज-मकरन्द-मधुप, शंकर-हृदि-पुण्डरीक-चंचरीक सदृश काव्यात्मक शब्दावली का प्रयोग हुआ है।[2] शिव की नीलग्रीवता का कारण यही माना जाता है कि उन्होंने अपने हृदय में राम का निवास होने के कारण विष को कण्ठ में ही रोक लिया था। विनयपत्रिका (१५४।२) में राम को शिव के भक्ति-सरोवर और गीतावली (१।४२।३) में प्रेम-सरोवर का हंस कहा है।

शिव की राम-भक्ति का इससे अधिक पुष्ट प्रमाण क्या होगा कि इष्ट की शक्ति (सीता) का स्वरूप धारण कर लेने मात्र से वे अपनी पत्नी का परित्याग कर देते हैं। सती द्वारा राम की परीक्षा लेने पर शिव निश्चय करते हैं कि—

सती कीन्ह सीता कर वेषा। × × ।
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥
—मानस १।५६।७-८

और—एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माँही॥
—वही १।५७।२

उसी समय आकाशवाणी होती है—

× × । जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥
—वही १।५७।४-५

सती-त्याग के बाद शिव रामकथा का श्रवण करते हुए भ्रमण करने लगे। इस बीच उनकी राम-भक्ति और भी अधिक पुष्ट हो गई। शिव की अविचल भक्ति देखकर राम प्रकट होकर शिव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार के व्रत का निर्वाह करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।[3] आगे पुनः कहा गया है—

---

१. रामचरितमानस ३।४ मे अत्रि कृत स्तुति, ६। श्लोक १, विनयपत्रिका ५४।३, ५६।२ आदि;

२ विनयपत्रिका ५१।३, रामचरितमानस १।२८५।५, १।३४१।८, ३।८।१, ३११।८, गीतावली १।२९।३ तथा विनयपत्रिका ४६।२, ५३।१; रामचरितमानस ७।५१।२; गीतावली ७।३।६

३ रामचरितमानस १।७६।४-६

शिव सम को रघुपति व्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ।।
पनु करि रघुपति भगति देखाई । × × ।।
—मानस १।१०४।७-८

लंका-विजय के बाद शिव सजल नेत्र, पुलकित तथा रोमांचित तन, परम प्रीति-पूर्वक सबसे अन्त मे पहुँचकर राम की स्तुति करते हैं। शिव कृत इस राम-स्तुति मे हृदयस्पर्शिता और मार्मिकता है । वह मात्र औपचारिक नही । उसी समय शिव राज्याभिषेक मे पहुँचने की पूर्व-सूचना देकर अपनी अतिशय भाव-विभोरता का परिचय देते हैं। राज्याभिषेक के समय की स्तुति में शिव ने भयाकुल पाहि जन, सरनागत भागत पाहि प्रभो, तव नाम जपामि नमामि हरी, प्रनमामि निरन्तर श्रीरमन, महिपाल ! बिलोकय दीन जन आदि कहते हुए अन्त मे राम की अनपायनी भक्ति माँगी है—

बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ।।—मानस ७।१४ क;

शिव की राम भक्ति के दो रूप हैं—

क दास्य भाव : शिव राज्याभिषेक मे पहुँचने की सूचना देते समय राम को नाथ कहते हैं ।[१] इसी प्रकार कई स्थानो पर शिव के हृदय में राम के चरणों का निवास तथा राम के चरणकमलो के रसपान से शिव-रूप मधुप की अतृप्ति बताई है ।[२] गंगा विष्णु का चरणोदक है और शिव उसे सिर पर धारण करते हैं ।[३] सती का मानसिक त्याग करने पर शिव राम के चरणो मे सिर नमन करते है[४] और पार्वती से विवाह के समय स्वामी राम का स्मरण करते हैं ।[५]

ख बाल-रूप के उपासक : शिव की राम-भक्ति दास्य भाव की होते हुए भी शिव राम के बाल-रूप स अधिक आकर्षित और उसीके उपासक हैं । शिशु राम की क्रीड़ाओं पर मुग्ध होने के कारण[६] राम को बादलो में छिपकर देखते हैं ।[७] रामचरितमानस में

---

१. रामचरितमानस ६।११५
२. वही १।३२४ के ऊपर पहला छन्द, १।३२८।५, ३।४२।८; विनयपत्रिका २०६।४
३. विनयपत्रिका १७।१, १८।२; कवितावली २।५, २।६; रामचरितमानस १।२११।१३
४. रामचरितमानस १।५७।१
५. वही १।१००।४
६. गीतावली १।८।५
७ वही १ ७।७

ता उन्हे राम-जन्म के समय मनुष्य रूप मे उपस्थित-मात्र दिखाया है,[1] परन्तु गीतावली (१।१७) के अनुसार शिव वृद्ध ज्योतिषी के रूप मे आने पर भवन के अन्दर बुलाए जाते है। वहाँ कौशल्या राम आदि शिशुओं को भविष्य-कथन के लिए समर्पित करती है। उस समय—

नखसिख बाल बिलोकि बिप्र तनु पुलक, नयन जल छायो।
लै-लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो।।

कुण्डलिया-रामायण में राम-जन्म के समय शिव योगी के वेष में आते है।[2]

सम्भवत. वसिष्ठ भी शिव के उपासक भाव से परिचित है, इसीलिए वे शिव को यह बताना आवश्यक तथा उपयुक्त समझते हैं कि लक्ष्मण, भरत आदि चारो शिशुओ में राम कौन-से हैं—

बाल बिलोकि अथरवणी हँसि हरहिं जनायो।—गीतावली १।६।१८

राम के स्वरूप विषयक पार्वती के सन्देहो का समाधान तथा रामकथा प्रारम्भ करने के पूर्व शिव राम के बाल-स्वरूप की ही वन्दना करते है—

बन्दउँ बाल रूप सोइ रामू। सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू।।
मगल भवन अमंगलहारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

—मानस १।११२।३-४

सत्योपाख्यान में शिशु राम के दर्शनार्थ शिव के साथ भुशुण्डि भी आते हैं। इन दोनो का वेष ब्राह्मण का है।[3] मानस में भुशुण्डि ने स्वय कहा है कि मेरे इष्टदेव बालक राम हैं और जब-जब वे अयोध्या में अवतरित होते हैं, मैं वहाँ उनकी शिशु लीलाओ को देखकर सुख प्राप्त करता हूँ।[4] गीतावली (१।५।६) में पार्वती शिशु राम की परिचर्या से हर्षित दिखाई गई हैं। जिन्हे राम का बाल-रूप प्रिय नहीं है, तुलसी के अनुसार वे गधा, शूकर तथा श्वान से भी निकृष्ट हैं।[5]

राम की शिव भक्ति प्रायः कवि-कथनों में न मिलकर घटनात्मक रूपो में अधिक मिलती है। यह बताना महत्वपूर्ण होगा कि विनयपत्रिका (१२।२) मे शिव को 'विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्द' कहने के अतिरिक्त मानसेतर ग्रन्थों में शिव तथा राम

---

१. गीतावली १।१७
२. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृ० ७६
३. रामकथा, पृ० ३३७
४. रामचरितमानस ७।७५।५, ७।११४।१२-१४
५. कवितावली १।६

का उपास्य-उपासक रूप उपलब्ध नहीं होता है। मानस में राम को शिव का पूजन करते दिखाया गया है। इसे तीन रूपों में रखा जा सकता है—

क. मनसा-पूजन[1] : राम के वनवास जाते समय—

गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ।।—मानस २।८१।२

तथा गंगा-संतरण के बाद गुह के साथ प्रस्थान करते समय शिव का स्मरण करते हैं—

तब गनपति सिव सुमिरि, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ।।—वही २।१०४

राम लंका-विजय के बाद अवध आते समय सीता को रामेश्वरलिंग दिखाकर शिव को प्रणाम करते हैं (-वही ६।११९क)।

ख. अर्चा-पूजन :

राम लखन सिय जान चढि, संभु चरन सिरु नाइ।—मानस २।८५

ग. पार्थिव-पूजन : मानस मे यह चार स्थलों पर मिलता है—

अ. केवट द्वारा गंगा पार कराए जाने पर :—

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा ।।—२।१०३।१

आ. प्रयाग में संगम-स्नान करने के बाद :—

मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ।।—२।१०६।६

इ. भरत के चित्रकूट-आगमन के पूर्व सीता के दुःस्वप्न का परिशमन करने के लिए :—

पूजि पुरारि साधु सनमाने ।।—२।२२६।८

ई. सेतुबन्ध के समय :—यहाँ पर शिव की स्थापना तथा पूजन का विस्तृत वर्णन है और वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ग्रन्थों में शिव की शैलज, दारुज, मृण्मय, क्षणिक आदि विविध प्रकार की लिंग-प्रतिमाओं का विवरण मिलता है। उपरोक्त तीन सन्दर्भों में यह अनुमान लगाना नितान्त दुष्कर है कि राम ने किस प्रकार की लिंग-प्रतिमा का पूजन किया होगा। यहाँ भी तुलसी ने इस सम्बन्ध में कुछ भी संकेत नहीं दिया है, तथापि यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रतिमा शैलज रही होगी। राम परम रम्य स्थान देखकर लिंग की स्थापना कर रहे हैं इसलिए उनके मन में लिंग के स्थायित्व की भावना अवश्य रही होगी और तब स्थापित प्रतिमा मृण्मय, दारुज या क्षणिक नहीं हो सकती। फिर लौहज, रत्नज तथा शैलज तीन प्रकार की शेष रहती हैं। प्रसंग सेतुबन्ध का चल रहा है और उसके लिए वानरगण विशाल पर्वतों को ला रहे हैं। अतः राम द्वारा स्थापित रामेश्वर लिंग शैलज ही रहा होगा।

---

१ राम रात्रि को शयन के लिए शिव का स्मरण करके ही जाते हैं १।२५७

यहाँ राम शिवलिंग-पूजन एकाकी न करके मुनियों की उपस्थिति में करते हैं। पूजन के उपरान्त राम ने कहा है कि मुझे शिव के समान अन्य कोई प्रिय नहीं। शिव से द्रोह रखने वाला कोई व्यक्ति मेरा भक्त कहलाना चाहे तो यह उसका दम्भ ही होगा। ऐसे व्यक्ति मुझे स्वप्न में भी प्रिय नहीं हैं। हम दोनों में किसी का भी विरोधी होने पर कल्पान्त घोर नरक प्राप्त होगा। राम के इन कथनों से मुनियों का सहमत होना इस बात का प्रमाण है कि जन-भावना इसके पक्ष में थी। राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना तथा राम और शिव की समानता का प्रतिपादन मुनियों को पूर्णतया मान्य था।

शिवलिंग की स्थापना के बाद उसके विधिवत् पूजन करने से ज्ञात होता है कि तुलसीदास इस समस्त विधि-विधान से भलीभाँति परिचित थे।

कृत्तिवास रामायण में लिंग-स्थापना के समय शिव साक्षात् प्रकट होकर राम के दोनों हाथ पकड़ लेते है। दोनों हर्षित होकर प्रेमालिंगन करते है। उस समय शिव कहते हैं कि प्रभु किसकी पूजा करते हो। तुम मेरे इष्टदेव हो। राम कहते हैं—नहीं, तुम मेरे इष्ट हो और रावण-वध के लिए पुष्प-जल ग्रहण करो।[1] अध्यात्मरामायण (७।४।२७) में राम द्वारा करोड़ो शिवलिंग स्थापित करने का उल्लेख है। संथालों की रामकथा के अनुसार राम ने शिव के मन्दिर का निर्माण कराया था और वे सीता के साथ नित्यप्रति शिव-पूजन के लिए जाया करते थे।[2]

तुलसीदास ने पार्वती को महान् राम-भक्त[3] दिखाने के साथ-साथ सीता को शिव-पार्वती का स्मरण करते दिखाया है।[4] धनुष-यज्ञ के समय सीता प्रार्थना करती हैं कि धनुष की गुरुता कम हो जाय—

मन ही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

—मानस १।२५७।५-६

यह ध्यान देने योग्य है कि यहाँ सीता 'सेवकाई' की बात करती हैं, अर्थात् वे पहले से शिव-पार्वती की भक्त हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ के अतिरिक्त अन्य कोई स्थल ऐसा नहीं है जहाँ सीता को शिव की भक्ति करते दिखाया हो। हाँ, कवितावली (७।१३६) में सीता

---

१. कृत्तिवासी बँगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ७७

२ रामकथा, पृ० २८५

३. रामचरितमानस ७।५५।७, ७।१२६ आदि;

४. गीतावली १।६२।२; जानकीमंगल, मंगल १००

के द्वारा वट-वृक्ष की स्थापना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि तुलसीदास ने वट मे शिव का निवास माना है।[१] मानस मे कई स्थानो पर शिव को वट के नीचे ही बैठे दिखाया है।[२] इसी प्रकार सीता ने पार्वती का पूजन तो किया है[३], परन्तु पार्वती ने सीता का पूजन कही नहीं किया है।

६. एक के विरोध से अन्य की प्राप्ति दुर्लभ

तुलसीदास ने शिव और विष्णु में समान भाव दिखाने तथा राम-भक्ति के साथ शिव-भक्ति का परिपालन कराने के उद्देश्य से शिव-निन्दक को पुनर्जन्म में सहस्र वर्ष पर्यन्त दादुर रहने[४] तथा शिव-द्रोही को सम्पत्ति की अलभ्यता[५] और उसके कार्य की असम्पन्नता का प्रतिपादन किया है।[६] भारद्वाज को रामकथा सुनाने के पूर्व शिवचरित सुनाने में याज्ञवल्क्य का यही उद्देश्य निहित था कि शिव-भक्ति का ज्ञान हो सके।[७] शिवचरित के श्रवण से पुलकित भारद्वाज को देखकर याज्ञवल्क्य कहते है—

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाही। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाही।।
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।।

—मानस १।१०५।५-६

सेतुबन्ध के अवसर पर शिवलिंग की स्थापना करके यही बात स्वय राम ने कही है—

सिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।
संकरप्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास।।

—वही ६।२।७-८ तथा दोहा;

राम के इस कथन की संपूर्ति भुशुण्डि के उदाहरण में प्राप्त होती है, जो पूर्व-जन्म में अयोध्या के शूद्र थे। वह एक कट्टर भक्त और अन्य देवों के निन्दक थे। उनके गुरु शैव होते हुए भी परम सहिष्णु और समन्वयवादी थे। गुरु का कहना था

---

१. कवितावली ७।१४०
२. देखिए—१।५२।२, १।५८।७, १।१०६।२ आदि,
३. रामचरितमानस १।२२८।२, १।२३५।४ तथा नीचे; गीतावली १।७१।२ तथा १।७२
४. रामचरितमानस ७।१२१।२३
५. वही १।२६७।२
६. भै जगविदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई।।—वही १।६५।२
७. वही १।१०४

कि शिव-भक्ति का फल हरि-भक्ति होनी चाहिए और शैव को वैष्णव भक्ति भी करणीय है।[1] भुशुण्डि को गुरु का यह उपदेश रुचिकर नहीं लगा और वह गुरु से द्वेष भाव रखने लगे। भुशुण्डि को इसका दण्ड स्वयं शिव ने दिया।

देवीभागवत पुराण (वेंकटेश्वर प्रेस) में विष्णु ने कहा है कि मैं शिव को प्राणप्रिय हूँ और शिव मुझे प्राणप्रिय हैं। हम दोनो का चित्त गूढ़ भाव से परस्पर आसक्त है, अतएव हम दोनों मे कोई भेद नही। जो मनुष्य मेरा भक्त होकर शिव से द्वेष करता है, वह निश्चय ही नरकगामी होता है—

नरक यान्ति ते नून ये द्विषन्ति महेश्वरम् ।
भक्तामम विशालाक्षिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥—६।१८।४७

शिवपुराण में स्वय शिव ने कहा है कि विष्णु-निन्दक शैव के पुण्य का क्षय हो जाता है (-रुद्र, सृष्टि ९।८।९) तथा उसे शिव-भक्ति प्राप्त नहीं होती है (रुद्र, सती ४३)।

७ एक के भक्त को अन्य द्वारा फल-प्राप्ति

विनयपत्रिका (५६।२) में राम को 'भवभक्तहित' और कवितावली (७।१६७) मे शिव को राम-भक्तो के लिए कल्पवृक्ष कहा है। मानस (७।९६।१०) में राम-भक्त भुशुण्डि स्वय स्वीकार करते हैं कि मैं विविध जन्मों मे शिव की कृपा के कारण मोह में आविष्ट नहीं हुआ। मानस में किष्किन्धाकाण्ड का अन्तिम दोहा प्रायः इस रूप में मुद्रित मिलता है—

भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

त्रिसिरारि का पाठ-भेद त्रिपुरारि भी है। इस काण्ड के प्रारम्भिक दो सोरठो में काशी और शिव की वन्दना हुई है। इस आधार पर लाला भगवानदीन की धारणा है कि यहाँ अन्त में महादेव के विषय में लिखना संगत है। मानसपीयूष मे त्रिपुरारि पाठ के समर्थन में अन्य कई कथाकारों के मत भी उद्धृत हैं। यदि यहाँ कवि का अभीष्ट पाठ त्रिपुरारि है तो यही अर्थ होगा कि शिव राम-भक्तों की अभिलाषायें पूर्ण करते हैं।

वायुपुराण (अ० ६६) में एक की स्तुति को अन्य की स्तुति तथा एक की निन्दा को अन्य की निन्दा कहा गया है।

८. शिव और विष्णु दोनों के लिए समान विशेषणों का प्रयोग

संस्कृत ब्रह्मविद्या उपनिषद् तथा मत्स्य, हरिवंश, स्कन्द, वायु, भागवत, पद्म,

---

१. रामचरितमानस ७।१०६।२.

अग्नि आदि पुराणों में शिव को वैष्णव तथा विष्णु को शैव अभिधानो का प्रयोग करके उनकी एकात्मकता प्रकट करने का प्रयास किया गया है। तुलसीदास ने राम और शिव को जगत्-पिता तथा सीता और पार्वती को जगज्जननी माना है। सम्पूर्ण जगत् का जनक एक ही होना चाहिए और जगज्जननी भी एक ही सत्ता हो सकती है। शिव और राम के समान विशेषण निम्न हैं—

जगत् के माता-पिता :

सीता और राम

सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जियँ सीता।।
जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी।।

—मानस १।२४६।२-३

जगदम्बा जानकी जगतपितु रामचन्द्र।—कवितावली १।१५

× ×

एहि बिधि राम जगत पितु माता।—मानस १।२००।१

और राम शक्ति-संयुक्त है—

संजुक्त सक्ति नमामहे।—मानस ७।१३ के ऊपर स्तुति का पहला छन्द।

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बदउँ सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।—मानस १।१८

पार्वती और शिव

तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु।—मानस १।८१
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी।।

—वही १।१०३।४

जगदात्मा महेस पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।।—वही १।६४।५

मायापति :

राम

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।।—वही १।११७।७
मायाबस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।—वही ७।७८।६

शिव

तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु।—वही १।८१
तव मायाबस जीव जड़, सतत फिरइ भुलान —वही ७ १०८ ग

अन्तर्यामी-सर्वज्ञ :

राम

अंतरजामी रामु सिय, तुम्ह सरबग्य सुजान।—वही २।२५६

शिव

जद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
—वही १।५१।५

जगज्जननी :

सीता

जनकसुता जगजननि जानकी।—वही १।१८।७
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
—वही १।२४७।१

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥
—वही १।२४८।२

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
—वही २।१२६ के ऊपर छन्द;

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।—विनयपत्रिका ४१।४

पार्वती

जगत मातु सर्बग्य भवानी।—मानस १।७२।८
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय-जय जगदंबिके भवानी ॥
—वही १।८१।८

जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि ॥
—वही १।९८।४

जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ॥
—वही १।२३५।६-८

तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी।—विनयपत्रिका ५।५

लौकिक दृष्टि से, सीता राम की शक्ति या पत्नी हैं और पार्वती शिव की। तुलसीदास ने राम और शिव तथा सीता और पार्वती के लिए ऐसे समान विशेषणों

का प्रयोग किया है जो ससार मे किसी एक के लिए ही प्रयुक्त हो सकते है। इस प्रकार उनमें परस्पर एकात्मकता की स्थापना हो जाती है।

तुलसी और हरिहर

तुलसीदास ने रामवाचक हरि और शिववाचक हर शब्द हरिहर का कई स्थानो पर इस रूप में प्रयाग किया है जिससे इन दोनो की पृथक् एकात्म सत्ता का बोध होता है। समस्त तुलसी साहित्य मे हरिहर शब्द का प्रयोग निम्न स्थलो पर मिलता है :—

१. रामचरितमानस :

१. हरिहर कथा बिराजति बेनी । सुनत सकल मुद मगल देनी ।।
—बालकाण्ड २।१०

२. हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।—वही ४।३

३. हरिहर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ।।
—वही ६।६

४. नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ।।
—वही २६।३

५. अभिमत दानि देव तरुवर से । सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ।।
—वही ३२।११

६. हरिहर विमुख धर्म रति नाही । ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही ।।
—वही १०६।१

७. आन उपायँ निधन तव नाहीं । जौ हरिहर कोपहिं मन माही ।।
—वही १६६।४

८. जे परिहर हरिहर चरन, भजहि भूतगन घोर ।
तेहिं कइ गति मोहि देउ विधि, जौं जमनी मत मोर ।।
—अयोध्याकाण्ड १६७

९. जे न भजहि हरि नर तनु पाई । जिन्हहि न हरिहर सुजसु सोहाई ।।
—वही १६८।६

१०. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माझ ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवसु भइ साँझ ।।—वही ३१२

११. मुनि महिदेव साधु सनमाने । विदा किये हरिहर सम जाने ।।
—वही ३१७।४

१२. हरिहर निन्दा सुनइ जो काना । होइ पाप गोघात समाना ।।
—लङ्काकाण्ड ३२।२

२. गीतावली :

१३. 'अजर अमर होहु, करौ हरिहर छोहु',
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दये है ।—बालकाण्ड ११।४

१४. दिव्य-देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजे ।
हरिहर-सुजस सुनाइ, दरस दै, लोग कृतारथ कीजै ।।
—अरण्यकाण्ड १५।२

३. विनयपत्रिका :

१५ तथाकथित हरिशंकरी पद, स० ४६

१६. पांडु-सुत, गोपिका, विदुर, कुबरी, सबरि सुद्ध किये सुद्धता लेस कैसो ।
प्रेम लखि कृस्न किए आपने तिनहु को, सुजस संसार हरिहर को जैसो ।।
—१०६।४

४. दोहावली :

१७. तुलसी परिहर हरिहरहि पाँवर पूजहिं भूत ।
अत फजीहत होहिगे, गनिका के से पूत ।।—६५

१८. हरिहर जस सुर नर गिरहुँ बरनहि सुकवि समाज ।
हाँड़ी हाटक घटति चरु राँधे स्वाद सुनाज ।।—१६७

१९. सग सरल कुटिलहि भए, हरिहर करहि निबाहु ।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि, कियो उदर बिनु राहु ।।—३३६

२०. तुलसी किए कुसग थिति होहि दाहिने बाम ।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल गत हरिसकर नाम ।।—३६१

२१. पांडु सुवन की सदसि ते नीको रिपु हित जानि ।
हरिहर सम सब मानिअत मोह ग्यान की बानि ।।—४१६

५. कवितावली :

२२. आपु महापातकी हँसत हरि-हरहू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है ।—उत्तरकाण्ड ६६

६. हनुमानबाहुक :

२३. रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर
मीच मारिबे को ज्याइबे को सुधापान भो । ११

इनमें से प्रत्येक स्थल पर हरिहर का द्विवचनात्मक अर्थ विष्णु और शिव लिया जाता है, जबकि कई सन्दर्भों में तुलसी को हरिहर से एक समन्वित स्वरूप अभिप्रेय रहा हो सकता है। सम्भव है रामू की प्रेम-रामायण से कुछ विशेष तथ्यों का उद्घाटन हो सके। इस सम्बन्ध मे निम्न तथ्य विशेष द्रष्टव्य हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में विद्वज्जनो को अपनी तद्विषयक धारणा पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

क हरिहरैक्य भाव की दीर्घ परम्परा

१. मूर्ति, मन्दिर, चित्र, सिक्के, अभिमुद्रायें आदि पुरातात्विक प्रमाण।
२. औपनिषदिक प्रतिपादन।
३. पौराणिक आख्यान, व्रत, अनुष्ठान आदि।
४. सस्कृत स्तुतियाँ।
५. हिन्दी मे अन्य कवियो द्वारा हरिहर का वर्णन।
६. हिन्दीतर भाषाओ में हरिहर का वर्णन।

ख. तुलसी का समसामयिक समन्वयात्मक परिवेश

१. वाराणसी में इन्द्रद्युम्नेश्वर, कालमाधव, कृष्णेश्वर, गरुडेश्वर, जनकेश्वर, प्रह्लादेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, वाराहेश्वर, हनुमदीश्वर, हरिकेशेश्वर, चक्रपाणि भैरव, रामेश्वर, सीतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्वर, द्वारकेश्वर, लवकुशेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, श्रीकठलिङ्ग प्रभृति शैव प्रतिमाओ का पूजन।[1] लका के निकट एक हरिहर मार्ग भी है।

२. वाराणसी निवासी अद्वैत कवि द्वारा १६०८ ई० में रामलिङ्गामृत काव्य की रचना, जिसमें राम रूप विष्णु और शिव के एकात्म का प्रतिपादन है। उसके १०वें सर्ग में राम रावण को अपना शिव रूप दिखाते हैं और १८वे सर्ग मे राम की पूजा-विधि तथा राम के यश का वर्णन करने के अनन्तर कृष्ण, राम तथा शिव की अभिन्नता का निरूपण है।[2]

३, विश्वाधिक (यतीन्द्र) सरस्वती के शिष्य बोधेन्द्र सरस्वती द्वारा हरिहराद्वैत-भूषणम् ग्रन्थ का प्रणयन। इसमें कारिका तथा टीका दोनो को अलग-अलग तीन

---

१. देखिए—वाराणसी का आधिदैविक वैभव। यद्यपि लेखक ने प्रत्येक की प्राचीनता पर प्रकाश नही डाला है, तथापि यह आशा की जाती है कि इनमे से अधिकाश देवायतन तुलसी के समय अस्तित्व में रहे हो सकते हैं।
२ रामकथा पृ० १६१ १६३ १६४

भागों में विभाजित किया गया है। तृतीय भाग में उपनिषद्, पुराण आदि अन्यान्य ग्रन्थों के आधार पर हरिहर के एकात्म स्वरूप का प्रतिपादन है।[1]

४. तुलसी के मित्र या सहयोगी मधुसूदन सरस्वती[2] द्वारा रचित शिव-महिम्न-स्तोत्र की हरिहरपरक टीका।

५. गौतमचन्द्रिका से हरिहर विषयक निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है —

अ हरिहर एक देवतावाचक :

जगहित हेतु संत अवतरहीं। रुचि सुचि हरिहर जस विस्तरहीं ।।

× × ×

चतुर्दसी हरिहर छवि जोहै।

× × ×

मल्लमान हरिहर भजत तोडरमल्ल अमान।

× × ×

हरिहर नटवर बस बिसद कविता नटी बिकास।

× × ×

समरथ प्रभु सेवक सुखद हरिहर कृपानिकेत।

× × ×

हरिहर जस साका बिस्तारत। अमित भयो चिन्तामनि भारत ।।

आ. हरिहर के भक्त या उपासक होना :

जगहित हेतु संत अवतरहीं। रुचि सुचि हरिहर जस बिस्तरहीं ।।

× × ×

मल्लमान हरिहर भजत, तोडरमल्ल अमान।

इ. हरिहर-पूजन की तिथियाँ :

चतुर्दसी हरिहर छबि जोहै। तुलसी बिस्वनाथ सिर सोहै ।।

× × ×

कातिक कातिकेय आराधे। बिन्दुमाधवहिं तुलसी साधे ।।

श्रीफलदल संकरहिं चढाए। फल समर्पि हनुमत मन भाए ।।

---

१. बोधेन्द्र सरस्वती ने अप्पयदीक्षित (१५२०-१५९३) का उल्लेख किया है अतः उनका समय अप्पयदीक्षित से किञ्चित् परवर्ती है।

२. गोसाईं तुलसीदास, पृ० २५०

कार्तिक में वैकुण्ठ चतुर्दशी को हरिहर का पूजन किया जाता है और उसमें शैव-वैष्णव दोनों प्रकार के नैवेद्य---तुलसी तथा बिल्वपत्र का प्रयोग होता है।[1]

ई तुलसीदास हरिहर-उपासक :

कातिक धवल एकादसि आवै। तुलसी कृष्न विवाह रचावै।।
चतुर्दसी हरिहर छबि जोहै। तुलसी विस्वनाथ सिर सोहै।।
पूनो अन्नपूर्ना पूजै। गीन पंचगगा रस कूजै।।
श्रीपति तुलसी कृष्न उमासिव। नाम जपत मगल दिन रातिव।।

× × ×

कातिक कार्तिकेय आराधे। बिंदुमाधवहिं तुलसी साधे।।
श्रीफलदल सकरहिं चढाए। फल समर्पि हनुमत मन भाए।।
दीपावलि सजि तुलसी गावत। कृष्नदत्त दुदुभी बजावत।।

ग तुलसी की समन्वयात्मक प्रवृत्ति

१. शिव और विष्णु मे घनिष्ट सम्बन्ध दिखाया है।

२. तुलसी ने अयोध्या, चित्रकूट, वृन्दावन प्रभृत वैष्णव तीर्थों के अतिरिक्त नर्मदा, काशी, रामेश्वरम् और कैलास की भी यात्रा की थी।[2] उनका काशी-निवास अन्तःसाक्ष्य से भी प्रमाणित है।

३. उन्होंने शिव और विष्णु दोनों के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट की है।

घ. तुलसी द्वारा हरिहर के ऐक्य स्वरूप का वर्णन करने के कारण

१. तुलसीदास ने शिव तथा स्कन्दपुराण से मानस-रचना में पर्याप्त सामग्री का उपयोग किया है। इन दोनों में हरिहरैक्य स्वरूप का निरूपण है। इसी प्रकार विनयपत्रिका के मूल स्रोत स्तुतिकुसुमाजलि में ऐक्य स्वरूप की स्तुतियां है।

२. तुलसीदास विष्णु और शिव के विविध स्वरूपो से परिचित हैं और उन्होंने श्रीरंग, नर-नारायण, बिन्दुमाधव, भैरव, अर्धनारीश्वर आदि का स्तवन भी किया है।[3]

३. वे हरिहर के समन्वय की बात करते हैं, जो पौराणिक मान्यता है और उन्होंने स्वयं पुराणों का अध्ययन किया है।

४. यदि शुद्ध वैष्णव होते तो पचावतार—अर्चा, विभव, चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध), पर तथा अन्तर्यामी—का ही विस्तृत वर्णन करते।

---

१. हरिहर-उपासना : उद्भव तथा विकास, परिशिष्ट ङ पृ० २०५
२. गोसाईं तुलसीदास, पृ० २८४
३ विनयपत्रिका पद ५७-५९

५. जब रामेतर उपासना को व्यर्थ या उपासक को मूर्ख कहते हैं और स्वयं शिव के भक्त है, तो यही मान्यता है कि शिव राम में ही समाहित है । परवर्ती काल मे हरिहर को भी विष्णु का स्वरूप मानने की प्रवृत्ति विकसित हो गई थी ।

६. विनयपत्रिका के हरिशंकरी पद में आद्योपान्त वैष्णव-शैव क्रम से स्तुति है । पद की विषम संख्यक पंक्तियों को पृथक् करने से वैष्णव और सम संख्यक पंक्तियों के संग्रह से शैव स्तोत्र बन जायेगा, जिस प्रकार हरिहर विग्रह मे किसी पार्श्व को ढक देने से अन्य पार्श्विक देवांश एकाकी आभासित होगा । तुलसी ने इस स्तोत्र में विष्णु और शिव का समन्वय करते हुए यही सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है कि राम हरिशंकर रूप हैं ।[1] जिस प्रकार शिव की स्तुति (पदांक ४-१४) करते हुए उन्होंने भैरव तथा अर्ध-नारीश्वर का भी स्तवन उसी क्रम में किया है, उसी प्रकार ४२वे पद से राम-स्तुति प्रारम्भ करके ६०वें पद में नर-नारायण और ६१-६३ संख्यक पदों में बिन्दुमाधव का स्तवन है । यह दोनो विष्णु के अन्य रूप है । इस वैष्णव स्तुति-क्रम के मध्य (४९वें पद में) हरिशंकरी स्तोत्र की रचना से सिद्ध होता है कि तुलसी हरिशंकर को विष्णु का ही एक रूप मानते हैं, जिस प्रकार अर्धनारीश्वर को शिव का रूप माना जाता है । हरिशंकरी स्तोत्र की फलश्रुति में तुलसी ने कहा है कि यह विष्णु-शिव-लोक का सोपान है । आगे एक पद में तुलसी का स्वप्रबोधन निम्न रूप मे मिलता है—

राम सनेही सो तैं न सनेह कियो ।
अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहिं दियो ।।
दियो सुकुल जनम, सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को ।
जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि-मुरारि को ।।—१३५।१

यहाँ मनुष्य शरीर से राम-भक्ति के द्वारा शिव और कृष्ण-लोक प्राप्ति की बात कही गई है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम, कृष्ण और शिव में कोई अन्तर नही मानते थे । हरिहर के पृथक् लोक की कल्पना के अभाव में यही माना जा सकता है कि हरिहर-भक्ति से विष्णुलोक या शिवलोक अथवा दोनो लोको की संप्राप्ति हो सकती है । विनयपत्रिका के प्रस्तुत पद का क्रम-विधान देखकर तो ऐसा आभासित होता है कि कवि ने सम्भवतः उसकी रचना हरिहर-मूर्ति के सम्मुख बैठकर ही की है ।

प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य में हनुमानबाहुक के एक स्थल का अर्थ विचारणीय है । उसके सम्पूर्ण ११वें छन्द का पाठ निम्न है—

१. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ६३ ।

रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर,
मीच मारिबे को ज्याइबे को सुधापान भो ।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे को कृसानु, पोषिबे को हिमभानु भो ।
खल-दुख-दोषिबे को, जन-परितोषिबे को,
माँगिबो मलीनता को मोदक सुदान भो ।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर,
तुलसी को साहेब हठीलो हनुमान भो ।।

प० महावीरप्रसाद मालवीय ने इसके प्रथम चरण का अर्थ किया है—आप सृष्टि-रचना के लिए ब्रह्मा, पालन करने को विष्णु, मारने को रुद्र और जिलाने के लिए अमृतपान के समान हुए ।[1] स्पष्ट है कि टीकाकार ने चार पदों में विच्छेद करते हुए बिधि, हरि तथा मारिबे को के बाद विराम लगाया है—

रचिबे को बिधि (भो)
जैसे पालिबे को हरि (भो)
हर मीच मारिबे को (भो)
ज्याइबे को सुधापान भो ।

उक्त अर्थ में तृतीय पदांश के मीच शब्द का अर्थ आ ही नहीं सका है, जबकि मारने का काम उसी का है । दूसरे-तीसरे पदांशों का ठीक अन्वय होगा—

जैसे पालिबे को हरिहर (भो)
मीच मारिबे को (भो)

इस प्रकार यही अर्थ होगा—जैसे रचना के लिए ब्रह्मा, पालन के लिए हरिहर, मारने के लिए मृत्यु और जिलाने के लिए अमृतपान है । रचना के समानान्तर पालन और नाश के समानान्तर जीवन का वर्णन है, जिनके लिए क्रमशः ब्रह्मा, हरिहर, मृत्यु और अमृत का नाम लिया गया है । पौराणिक कल्पना के अनुसार पालन का दायित्व विष्णु का है और हरिहर विष्णु के ही एक रूप हैं । कुतारी (इलाहाबाद) की हरिहर प्रतिमा के साथ वामन, वाराह तथा संकर्षण के विग्रह एक ही शिलास्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं और परवर्ती काल में हरिहर में विष्णु को दक्षिणांश प्रदान करने से विष्णु की महत्ता तथा हरिहर को विष्णु का ही एक स्वरूप मानने की धारणा पुष्ट होती है ।

---

१. हनुमानबाहुक, पृ० १४

डॉ० उदयभानुसिंह का तो अभिमत है कि मानस के प्रारम्भिक श्लोको की छठी स्तुति हरिहरात्मक ही है। उन्होने 'रामाख्यमीश हरिं' में ईश शब्द शिव का व्यंजक माना है।[1] स्तुति मे जिन विशेषणो का प्रयोग हुआ है, मानस को देखते हुए, वे हरिहरात्मक ही है और उनका शिव से कोई विरोध नही है।

केशवदास

भक्तिकाल में होते हुए भी केशव को भक्त-हृदय नही मिला था। राज-दरबारो मे रहने के कारण उनकी प्रवृत्ति वही जैसी थी। इसी कारण उन्होंने पूर्व-परम्परा के अनुकूल वीरसिंहदेवचरित, रतनबावनी तथा जहाँगीरजसचन्द्रिका जैसे वीर-चारण काव्यो और उत्तरकालीन रीति काव्यधारा का आचार्यात्मिक प्रवर्तन करते हुए रसिकप्रिया, कविप्रिया तथा नखशिख जैसे काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो का प्रणयन किया। भक्ति-काव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका ही उनकी एकमात्र रचना है जिसमे उन्होने रामकथा को आधार बनाया है। मूलगोसाईंचरित के अनुसार केशव ने इसकी रचना एक रात मे की थी।[2] भले ही इस कथन में अतिशयोक्ति हो तथापि ग्रन्थ से स्पष्ट है कि यह रामचरितमानस जैसी धार्मिक अथवा दार्शनिक कृति नहीं है। रचनात्मक त्वरा या केशव की मनोवृत्ति के अनुकूल इसमें उन्ही अंशो को महत्व मिला है जहाँ अलंकार-कौशल तथा वाग्विलास-प्रदर्शन को अवसर है। प्रारम्भ मे रामावतार के कारणो तथा राम-जन्म के विशेष विवरण का अभाव केशव की रामकथा-वर्णन की उत्सुकता का प्रमाण है। औपचारिकता का निर्वाह मात्र करते हुए वे मार्मिक स्थलो को छोड़ते गए हैं और अपनी दरबारी अभिरुचि के अनुरूप नखशिख, ऋतु-वर्णन आदि को विस्तार से दिया है। ऐसे मे ग्रन्थ से कवि की धार्मिक तथा दार्शनिक प्रवृत्ति का दोहन सिकता से तेल निकालने सदृश है। तथापि रामचन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों से उनकी धार्मिकता पर जो प्रकाश पड़ता है उससे हम उन्हे सहिष्णु ही कह सकते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से केशव के राम सर्वव्यापक तथा निर्गुण परब्रह्म के अवतार है।[3] मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि भी उन्ही के रूप हैं।[4] वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र आदि सभी का अभिमान नष्ट कर सकते है,[5] क्योकि

१. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ६३, पादटिप्पणी ३
२. गोसाईंचरित, परिशिष्ट, दोहा ५८ की चौपाइयाँ।
३. रामचन्द्रिका १।२।६, १७।४३
४. वही २०।२०-२३
५. वही १८।१४

यह सब उन्ही के अंशावतार हैं ।[१] वे आदि-मध्य-अन्त में एकाकी होते हुए[२] भी सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने में समर्थ है ।[३] संसार में उनके सत्व गुण प्रधान रक्षक स्वरूप को विष्णु और तमोगुण प्रधान संहारक रूप को रुद्र कहा जाता है ।[४]

लौकिक स्तर पर राम तथा शिव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । मृत्यु के समय शिव काशी में राम-नाम प्रदान करने[५] के अतिरिक्त स्वयं भी राम का स्मरण करते हुए उन्हे हृदय मे धारण करते हैं ।[६] शिव ने राम द्वारा लंका-विजय के बाद आकर राम का स्तवन किया है ।[७] दूसरी ओर धनुष-भंग के बाद राम-परशुराम विवाद के समय शिव के आने पर राम उन्हे प्रणाम करते हैं[८] और लंका-विजय हेतु समुद्र-सन्तरण के अवसर पर सेतु के मूल में शिवलिंग स्थापित करके कहते है कि जो व्यक्ति इनके दर्शन या स्पर्श करेगा उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी ।[९]

विविध वैष्णव उपमानों के साथ विन्ध्याचल की विभूतियुक्त शिव[१०] तथा वीरसिंह के ग्यारह पुत्रो की एकादश रुद्रो से उपमा[११] और चतुर्भुजदेव के नग्न दरबारियो की दिगम्बर महादेव[१२] तथा अश्वारूढ़ वीरसिंह भूपति की पशुपति,[१३] भारद्वाज-वाटिका की महादेव-वाटिका,[१४] भारद्वाज आश्रम की शिव के समाज,[१५] कोपीनधारी तपस्वियों की शेषधारी शिव से समानता,[१६] वर्षा के श्लिष्ट वर्णन मे

१ रामचन्द्रिका २०।४५
२. वही १३।३
३. वही ११।१५
४. वही २०।१८
५. वही १२।४४
६. वही १।१४
७. वही २०।२४
८. वही ७।४४
९. वही १५।३४
१०. वीरसिंहदेवचरित्र २।६
११. वही २।४८
१२. वही १६।२६
१३. वही १९।२
१४. रामचन्द्रिका २०।३४
१५. वही २०।४०
१६ वही २०।४१

मे कालिका के अधिग्रहण से उनकी धार्मिक सहिष्णुता ही प्रकट होती है। केशव द्वारा विद्या माया को अक्षर ब्रह्म से सम्बद्ध बताये जाने में[1] शैवमत का प्रभाव होना भी महत्वपूर्ण है,[2] क्योकि केशव की रचना शैव न होकर वैष्णव है।

इसी प्रकार शिव के भक्त बाण द्वारा वैष्णवी सीता को माँ कहकर मिथिला के धनुर्ष-यज्ञ से उठ जाना,[3] विश्वामित्र के साथ आगत राम-लक्ष्मण का तपोवन में हरि और हर का जाप होते सुनना,[4] वीरसिंहदेव के नगर मे शिव का शासन होते हुए भी सभी के द्वारा राम-नाम का स्मरण[5] तथा वीरसिंहदेव द्वारा समस्त देवों का पूजन[6] सहिष्णु पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते है।

केशव ने एक स्थान पर शिव को ससार-सागर का केवट बताकर[7] वीरसिंह-देवचरित के प्रारम्भ में उसका स्तवन भी किया है। परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि स्तुत्य शिव के 'उर चतुर चारु चक्की बसतु' कहकर केशव ने विठोवा के समानान्तर एक हरिहरात्मक स्वरूप उपस्थित कर अपनी समन्वयात्मक परिदृष्टि का परिचय दिया है। अन्तर यही है कि विठोवा या पाण्डुरंग समग्रतः विष्णु विग्रह है, जिसके मस्तक पर शिवलिंग लाञ्छित है और केशव के स्तुत्य उमेश्वर शकर हैं, जिनके हृदय में चक्रपाणि का निवास है।

सेनापति

सेनापति की एकमात्र उपलब्ध कृति कबित्तरत्नाकर है, जिसकी पाँच में से दो तरगों में राम तथा रामकथा का वर्णन है। रामकथा के विषय में कवि ने कहा है—

एती रामकथा, ताहि कैसे कै बखानैं नर,
जातैं ए बिमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
सेनापति यातैं कथाक्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं ॥—तरंग ४।६

---

१. जनु माया अच्छर सहित देखिये—वही १३।८१
२. मध्यकालीन हिन्दी-कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १७०
३. रामचन्द्रिका ५।२८
४. वही ३।२
५. वीरसिंहदेवचरित १८।५
६. वही ३१।२७
७. रामचन्द्रिका १५।३५

इस प्रकार सेनापति द्वारा रामकथा के कतिपय प्रसगो को ही आधार बनाने के कारण तत्सम्बन्धी चतुर्थ तरग में उनकी भक्ति विषयक कुछ विशिष्ट परिचय अनुपलब्ध ही है। इस सम्बन्ध में रामरसायन-वर्णन नामक पाँचवीं तरंग विशेषतः द्रष्टव्य है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ श्लेष-वर्णन की तरग से होता है। परन्तु सेनापति ने इसके मगलाचरण में राम-स्तवन अश्लिष्ट ही किया है। 'सियापति का सेवक' होकर उन्होने राम की आराधना तथा चर्चा की है। उनके इष्ट भगवान् राम भक्तवत्सल है। भक्तो का सदैव ध्यान रखने के कारण उन्हें धीवर (केवट) का सखा, वनचरों का स्नेही, जटायु का बन्धु, शबरी का अतिथि, पाण्डवो का दूत तथा अर्जुन का सारथी होना पडा। सहिष्णुतावश उन्होने भृगु की लात के आघात को सहन किया, व्याध के अपराध को क्षमा कर दिया, श्वान को निर्णय दिया तथा बलि की दरबारदानी भी की।[1] ऐसे भक्तवत्सल प्रभु की खड़ाऊँ तक पूज्य हैं।[2] जिनके चरण-स्पर्श से शिला-रूप अहल्या को मोक्ष मिल गया और जिन्होने प्रह्लाद की हिरण्यकशिपु तथा गज की ग्राह से रक्षा की, जिनके नाभि-कमल पर ब्रह्मा का वास है, जिनका सनक आदि ध्यान करते हैं और वेद जिनके यशगायक है, शेष-सूर्य-चन्द्र-पवन से सेवित उन धनुषधारी श्याम वर्ण राम के अतिरिक्त सेनापति को अन्य किसी का आश्रय नहीं है।[3] राम के प्रति कवि की आस्था तथा एकनिष्ठता उसके निम्न कथनो मे व्यक्त मिलती है—

१. और न भरोसौ, जिय परत खरो सौ, ताही
राम-पद-पकज कौ पूरन भरोसौ है ॥—१।२

२. राम महाराज जाकौ सदा अविचल राज,
बीर बरिबड जो है दलन दुवन कौं।
× ×
दुख तैं बचाउ, जातैं होत चित चाउ, मेरे
सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौ ॥ —४।७३ (५।२)

३. कपट बिहीन, ऐसौ कौन परबीन, जासौं
हूजियै अधीन सेनापति मान घन है।
जगत-भरन, जन-रजन करन, मेरौ
बारिद-बरन राम दारिद-हरन है ॥—५।४

---

१ कवित्तरत्नाकर ५।१६
२. वही १।२ तथा ४।१
३ वही ५।३

४. तुम ही हमारे धन, तोसौं बाँध्यौ पेम-पन
और सौ न मानै मन, तोही सुमिरत है ।।—५।५

५. कीजै न गहर, बेग मेरो दुख हर, मेरे
आठहू पहर आस रावरे चरन की ।।—५।१५

ऐसी एकनिष्ठता में वह प्रौढता है कि कवि अपने कर्मों को परे रख केवल शरणागति के आधार पर ही मोक्ष का औचित्य समझता है। वह कहता है—

तुम करतार जन रच्छा के करनहार,
पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ
हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के।
जौ कौहू कहौ कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक है सुकृति भगति रस लाहे के।
आपने करम करि हौ ही निबहौंगो, तौब
हौ ही करतार, करतार तुम काहे के ।। —५।२९

यह अधिकार भावना अपनों के ही प्रति होती है और अपने कभी विस्मृत नहीं करते हैं। इसीलिए वह राम की शरण में आकर निश्चिन्त हैं और—

सोवै सुख सेनापति, सीतापति के प्रताप,
जाकी सब लागै पीर ताही रघुबीर ही ।।—५।१६

सेनापति के उपास्य सामान्य मानव राम नहीं। जिसने जीव को तन, मन, ज्ञान तथा बुद्धि देकर ससार में उत्पन्न किया है और जिसकी सृष्टि-रचना निस्सीम है। जो विश्वरूप, निराकार तथा निराधार है और हर स्थान पर जिसका तेज परिव्याप्त है,[१] उस पूर्ण पुरुष के राम पूर्ण अवतार हैं।[२] इसीलिए वे राम के नृसिंहावतार का स्तवन[३] और कृष्ण की जन्मभूमि वृन्दावन में निवास की कामना भी बड़े मनोयोग से करते हैं।[४] राम के चरणों से निःसृत होने के कारण वे गगा की भक्ति को भी राम-भक्ति के समतुल्य रखते है।[५]

---

१. कवित्तरत्नाकर ५।१
२. वही ४।७
३. वही ५।३६, ३७
४. वही ५।२१
५. वही ५।५५

श्लिष्ट रचना के लगभग आठ छंदों में उन्होंने चन्द्र,[1] सूर्य,[2] हाथी,[3] गंगा,[4] तथा स्त्री[5] के साथ-साथ राम, रामकथा और राम की तलवार का वर्णन किया है और दो कवित्तों में एक साथ राम तथा कृष्ण की समानता दिखाई है।[6] इसी प्रकार कम-से-कम तेरह छन्द ऐसे हैं जिनमें मेघ,[7] मोती,[8] राजा[9], रोगी[10], केश[11], कुबेर[12], गोपी-विरह[13] एवं हरिणी[14] के साथ कृष्ण, कृष्णकथा तथा गोपी-विरह को परिग्रहीत किया है।

एक ओर जहाँ कवि वैष्णवत्व की दृष्टि से इतनी दूर तक पहुँचा है कि वह राम के अन्य अवतार नृसिंह ही नहीं, राम के खडाऊँ तथा कृष्ण, कृष्णकथा, गोपी-विरह आदि तक को अपने काव्य का लक्ष्य बनाता है वहीं वह अपने पिता की तुलना शिव से करता है—

गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौ।—१।५

सेनापति के अनुसार शिव देवाधिदेव (५।४५) तथा जगद्गुरु (५।४४) हैं। सांसारिक विद्या से अविद्या का नाश तो हुआ नहीं इसलिए क्यों न शिव से ही गुरुमन्त्र लिया जाये, जिसे पाने से काम-क्रोध का नाश होकर जीव चिदानन्द में लीन हो जाता है। शिव आशुतोष तो है ही, क्योंकि वे—

१. लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेलपात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल हैं।—५।४५

---

१. कवित्तरत्नाकर १।११, ७६
२ वही १।५८, ७४, ७५
३ वही १।६८
४ वही १।५५
५. वही १।७०
६ वही १।५७, ६९
७. वही १।१२, ६३, ६७
८. वही १।६२, ८१
९. वही १।५६
१० वही १।८०
११. वही १।७१
१२. वही १।९२
१३. वही १।६६
१४ वही १।८४

२ चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक
जिन्हैं लेत कोई, कहूँ भूलि हू न हटकै ।
सेनापति सेवक कौं चारि बरदानि, देव
देत हैं समृद्धि जो पुरंदर के खटकै ।।—५।४६

जब इतनी शीघ्रता और सरलता से इष्ट को प्रसन्न किया जा सके तो फिर क्यों न उसी की शरण मे जाया जाये । कवि अपने मन को प्रबोधित करता है—

१. कहा भटकत ! अटकत क्यों न तासौं मन,
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै ।।—५।४५
२. हित उपदेस लेह, छाँडि दै कलेस, सदा
सेइयै महेस, और ठौर कहा भटकै ।।—५।४६
३. बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है ।।—५।४४

तीसरे उदाहरण में सेनापति ने काशी में मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर शिव से राम-नाम प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की है । काशी शिव की नगरी है और वहाँ जाकर शिव से राम-नाम प्राप्त करना है । इससे ज्ञात होता है कि सेनापति भी शिव को राम-नाम का अधिष्ठाता मानने में परम्परा का ही अनुसरण करते हैं ।

सहिष्णुता का एक स्तर वह भी है जहाँ रामकथा के रचयिता कवि को कुच देखकर शिव का स्मरण हो आता है[1] तथा अहल्या के लिए वह एक साथ सीता और पार्वती की उपमा देता है ।[2] अर्धनारीश्वर आख्यान से भी कवि का परिचय है (५।४५, ६०) । एक कवित्त मे उसने सूर्य का वर्णन करते हुए शिव को उपमान बनाया है । यही नहीं उस छन्द में श्लेष से भी शिव का वर्णन हुआ है ।[3]

शिव के प्रति पर्याप्त इष्ट भाव होते हुए भी वह उन्हे राम की श्रेणी में नहीं रखता है । उसने अंगद द्वारा रावण को कहलाया है कि—

सूलधर हर तैं न ह्वै है परहरि, कुम्भ-
करन, प्रहस्त, इन्द्रजीत की कहा चली ।।—४।५६

---

१. प्यारी के नयन अंसुवान बरसत, तासौं
भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यौ है ।
सेनापति मानौं प्रानपति के दरस-रस
शिव कौ जुगल जलसाई करि राख्यौ है ।।—कवित्तरत्नाकर २।२३

२. वही ५।४८

३. वही ३।२४

एक स्थान पर तो शिव को भगवान् राम का पौत्र बताया है—

लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत, जाकौं
नन्दन बिधाता, हर नाती जाहि भायौ है ।।—५।६

गगा भगवान् राम (विष्णु) का चरणोदक हैं और शिव को कालकूट सहन करने की शक्ति गगाजल से ही प्राप्त हुई है।[1] इसी प्रकार शिव के घोर रूप को शान्ति का कारण भी गगाजल है—

काल तैं कराल कालकूट कठ माँझ लसै
ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समै ।
ब्याधि के अरंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधौ अंग
रह्यौ आधौ अग सो सिवा की बकसीस मै ।।
ऐसे उपचार तैं न लागती त्रिलात बार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं ।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जौ पै गगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं ।।—५।६०

राम के प्रति शिव का ऐसा सौहार्द भाव है कि उनकी लीला रूप सफलताओ से शिव को उत्कट आनन्द प्राप्त होता है। रावण के उपास्य होते हुए भी राम द्वारा सेतुबन्ध-निर्माण (४।४५) तथा राम की लंका-विजय के समय शिव प्रसन्न हो जाते है (४।६६)। शिव राम-नाम के अधिष्ठाता तो हैं ही (५।४८) जो उनके लिए निधि तुल्य है (४।७५)।

इसी प्रकार ज्ञात होता है कि वैष्णव होते हुए भी सेनापति का शैव धर्म के प्रति अत्यन्त उदार भाव है और उस उत्साह मे वे शिव की आराधना को तत्पर हो जाते हैं। एक कवित्त मे तो उन्होंने श्लेष से शिव और विष्णु का वर्णन एक साथ किया है—

सदा नन्दी जाकौं आसा-कर है बिराजमान
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं ।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं ।
जो है सब भूतन कौ अतर निवासी रमै
धरे उर भोगी भेष धरत नगन कौं ।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं ।।—१।३८

---

१ कवित्तरत्नाकर ५।५१

विष्णु : जो सर्वदा आनन्दमय है, जिसका वरद हस्त विराजमान है और जिसके शरीर का वर्ण कपूर से भी अधिक सुन्दर है। जो क्षीरसागर में आनन्दपूर्वक शयन करता है और अमृत की द्युतियुक्त शेष जिसके ऊपर छाया रखता है, जिसकी कीर्ति कल्याणकारी है तथा जो मदो को नष्ट करने वाला है। वह समस्त प्राणियो में व्याप्त है और लक्ष्मी को हृदय में धारण करता है। जो सांसारिक भोगियों के समान आभूषण सम्पन्न है और जिसे ज्ञानी बिना कहे ही जान लेते हैं, ऐसे विष्णु का वर्णन सेनापति भेद-बुद्धि त्यागकर प्रायः करता है।

शिव: जिसके साथ दण्डयुक्त नन्दी सदैव प्रस्तुत रहता है, जो कपूर वर्ण है और योगनिद्रा में लीन रहता है। जिसके मस्तक पर चन्द्रमा तथा हृदय में पार्वती का प्रेम है और जो कामदेव को नष्ट करने वाला है। जो समस्त प्राणियों के मध्य निवास तथा रमण करने वाला, हृदय पर सर्पधारी तथा दिगम्बर है और ज्ञानी जिसे बिना बताये ही जानते हैं, सेनापति उस शिव को भेद-बुद्धि त्यागकर प्रायः कहा करता है।

अन्तिम दो पंक्तियों से ज्ञात होता है कि शैवो और वैष्णवो अथवा शिव और विष्णु का विभेदात्मक भाव किसी न किसी रूप में सेनापति के समय विद्यमान अवश्य था। जा बुद्धिमान लोग थे वे तो इनमें कोई भेद नही करते थे, परन्तु कुछ ऐसे कट्टर-पन्थी भी थे जो दोनो को पृथक् समझकर अपने इष्टेतर देव मे अविश्वास रखते थे।

देखा जाये तो सेनापति को यह धार्मिक उदारता अथवा सहिष्णुता अपने पैतृकों से विरासत में प्राप्त हुई थी। उनके परिवार में शिव या विष्णु के प्रति किसी प्रकार का विद्वेष भाव न होने के कारण ही उनके दादा का नाम परशुराम और पिता का नाम गगाधर था।[१] परशुराम विष्णु के अवतार हैं और गगाधर शिव को कहा जाता है। इस श्रृंखला में स्वय कवि का यथार्थ नाम खोज का विषय है।

वर्णन-शैली की दृष्टि से चन्द्रक कवि के एक स्तोत्र से शिव तथा विष्णुपक्षीय अर्थ निकलता है और मधुसूदन सरस्वती ने शिवमहिम्नस्तोत्र का शिव के अतिरिक्त विष्णुपरक अर्थ भी किया था। हिन्दी में सेनापति द्वारा शैव-वैष्णव श्लिष्ट स्तुति सम्भवतः अद्वितीय है।

● ●

---

१ कवित्तरत्नाकर १।५

३

उपसंहार

अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति की एक विशेषता उसकी समन्वयशीलता तथा सहिष्णुता है। भारत इतना विशाल देश है कि कितनी ही बाह्य संस्कृतियों का यहाँ आगमन हुआ और साथ रहते हुए वे पल्लवित-विकसित हुई। कालान्तर में वे अपने विकास के साथ अन्यान्य संस्कृतियों से प्रभाव ग्रहण करती रहीं। समन्वयशीला इस पुण्यभूमि में आर्य-अनार्य तथा विविध जनजातीय संस्कृतियों के अतिरिक्त यूनानी, शक, कुषाण, मुस्लिम प्रभृति विदेशी संस्कृतियो के मध्य आर्य संस्कृति का विकास हुआ।

यहाँ की प्राचीनतम संस्कृति के अभिज्ञान स्वरूप हमें दो प्रकार के प्रमाण उपलब्ध होते हैं—साहित्यिक और पुरातात्विक। प्रथम के अन्तर्गत विशाल वैदिक साहित्य को समाविष्ट किया जा सकता है, तो पुरातात्विक प्रमाणों में सिन्धुघाटी के अवशेष आर्य-अनार्य संघर्ष का साक्ष्य उपस्थित करते हैं। ऋग्वेद मे शंबर और दिवोदास के महान् युद्ध का वर्णन है जिसमे आर्यों ने शबर के निन्यानवे दुर्गों तथा वर्चिन् के लाखो वीरों का विनाश कर दिया। यही त्रित् द्वारा त्रिमुखी दास के वध का भी वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता मे त्रिशीर्ष को त्वष्टा का पुत्र तथा असुरो का भागिनेय कहा गया है। आर्यों ने इन अनार्य विजितों को दास बनाकर अपने समाज में समाविष्ट कर लिया। प्रस्तुत संघर्ष की अभिपुष्टि सैन्धव अवशेषो से भी हो जाती है। इस प्रकार वैदिक काल मे आर्य और अनार्य संस्कृतियो का अस्तित्व स्वतः सिद्ध है। कुछ लोग असुरो को भी आर्यों का ही एक रूप मानते हैं और अनार्य के स्थान पर आर्येतर शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक समझते हैं।

आर्य संस्कृति यज्ञ-प्रधान थी, जिसमे देवमण्डल की संख्या तैंतीस से लेकर तीन हजार तीन सौ उन्तालीस तक मिलती है (ऋग्वेद १।३४।११, १४१।२ ८।३५।३,

८।३६।६), परन्तु यास्क ने त्रिधा विभाजन के आधार पर तीन ही देवों को प्रमुखता प्रदान की—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानः । वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्ष स्थानः । सूर्यो द्युस्थानः ।—निरुक्त ७।५

अर्थात् नैरुक्तों के अनुसार वेद मे तीन ही देवता होते हैं—पृथ्वी स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष स्थानीय वायु अथवा इन्द्र और द्युलोकीय सूर्य ।

अनार्य जननेन्द्रियोपासक थे, इसका प्रमाण वैदिक शिश्नदेवा. (लिंगोपासक) शब्द है । आर्यों ने इन शिश्नदेवाः शत्रुओं को यज्ञस्थल से दूर रखने की प्रार्थना की है । सैन्धव सस्कृति में ऐसे अवशेष प्राप्त भी हुए हैं, जो पुरुष तथा नारी जननेन्द्रिय के प्रतीक है । इन प्रतीको तथा वहाँ के भग्नावशेषो से सिद्ध हो जाता है कि सैन्धव सस्कृति अनार्य थी, जिसे अन्य उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर द्रविड़ कहा गया है । इन सैन्धवों का एक देवता योगी के रूप मे मान्य था, जिसका पशुओ से भी सम्बन्ध था ।

आर्यों द्वारा अनार्यों को समाज में समाविष्ट करने पर कालान्तर मे यह स्वाभाविक हो गया कि वैदिक संस्कृति अनार्यों की इस अधिक सुगठित एवं समृद्ध सस्कृति से अत्याधिक रूप मे प्रभावित होती । इस प्रभाव का एक रूप वैदिक देवमडल मे मिलता है क्योकि अनार्यों के पशुपति की आर्य लोग अवहेलना नही कर सके । उनके यहाँ का ऋग्वेदिक रुद्र आगे चलकर इसी देवता से प्रभावित होकर ताम्र वर्ण, लोहित, कृत्तिवासी (वाजसनेयी संहिता १६।७) तथा पशुपति (वही ३९।८) ही हो गया । प्रस्तुत सन्दर्भ में तमिल भाषा के शिवन् और शेम्बू शब्द द्रष्टव्य है । तमिल मे शिवन् का अर्थ लाल और शेम्बू का अर्थ ताम्र (लाल धातु) होता है । इस आधार पर उक्त प्रमाणो के परिप्रेक्ष्य में इन्हीं शब्दों से सस्कृत के शिव और शम्भु की व्युत्पत्ति मानना पर्याप्त सगत प्रतीत होता है । यह अर्थ रुद्र की रक्तवर्णीयता से भी साहचर्य रखता है ।

ऋग्वेदिक रुद्र मे अनार्य पशुपति की समाहिति के कारण परवर्ती आर्य रुद्र-शिव को ससम्मान आहूत नही करते हैं । वाजसनेयी तथा तैत्तिरीय सहिताओ के त्र्यम्बक होम मे रुद्र को यज्ञ का भाग देने के पश्चात् उन्हे मूजवत् पर्वत के उस पार चले जाने को कहा गया है । इससे लगता है कि स्तोता को उनकी उपस्थिति अभीष्ट नही । इसी प्रकार रुद्र-यज्ञ का पुरोडाश खाया नही जाता अपितु उसे एक बाँस में लटकाकर उत्तर दिशा के किसी पेड़ में बाँध आने का विधान है । इसके बाद यजमान जल का स्पर्श कर पवित्र होता है और घर आकर केश मुँडवाता है तथा वेदिका-स्थल परिवर्तित करता है । शतरुद्रिय स्तोत्र में रुद्र-शिव के तक्षक, रथकार, कर्मकार, कुलाल, निषाद, श्वनि (कुत्तापालक), मृगायु (व्याध) आदि गणों का उल्लेख है । स्पष्ट ही यह उनके उपासक

रहे होगे जो समाज के सम्भ्रान्त वर्ग से आये नहीं लगते है। अथर्ववेद मे शिव को भूत पिशाचो का अधिपति मान लिया गया है क्योंकि स्तोता इनसे रक्षा के लिए शिव का आह्वान करता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य मे पौराणिक शिव का प्रायः समस्त स्वरूप स्थिर हो चुका था। पुराणो में देवासुर संग्राम, असुर द्वारा वेदो के अपहरण, दक्ष-यज्ञ मे शिव-भाग के अभाव तथा शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस को लेकर विविध आख्यानो की सर्जना हुई है। इनका मूल भी वैदिक साहित्य मे उपलब्ध हो जाता है। वैदिक काल के प्रधान देवता इन्द्र का विष्णु मे समाहार होने पर आगे चलकर तीन ही देवता प्रमुख रह गए—विष्णु : रक्षक, समस्त भुवनो के धारक, संसार के स्थापक होने तथा इन्द्र और सूर्य को समाहित कर लेने के कारण; रुद्र : भेषज, शुचि, पीयूषपाणि के साथ रौद्र होने और अनार्य पशुपति को समाहित कर लेने के कारण तथा प्रजापति ब्रह्मा : यज्ञ के देवता होने के कारण। इन्ही तीनो का एकात्म स्थापित करते हुए कालिदास ने कहा है—

> एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषा प्रथमावरत्वम्।
> विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥
>
> —कुमारसम्भव ७।४४

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही मूर्ति के तीन रूप हो गए है। ये परस्पर अन्यान्य से छोटे-बड़े हुआ करते हैं। कभी शिव विष्णु से बढ जाते हैं, कभी ब्रह्मा इन दोनों से बढ़ जाते है और कभी यह दोनों ब्रह्मा से बढ जाते हैं। परन्तु ब्रह्मा बहुत काल तक स्थिर न रह सके। चिन्तन प्रधान उपनिषदो मे यज्ञो पर सन्देह किया जाने लगा और आगे यज्ञों के साथ ब्रह्मा का भी महत्व घट जाता है और अन्ततः उनका लोप हो गया। उस समय नवीन देवो का अभ्युदय होते हुए भी विष्णु और शिव ही प्रधान रह गए जिनमें से प्रथम आर्य माने जाते हैं और दूसरे अनार्य। किन्तु विष्णु का नील वर्ण अनार्य प्रभाव का द्योतक माना जाता है और रक्तवर्णी शिव का शुभ्र वर्णी रूप आर्य प्रभावित। शिव का हिमालय से एकात्म हो जाना भी उनके गौर रूप का कारण हो सकता है।

वैदिक काल में मरुतो का इन्द्र तथा रुद्र दोनो से योग रहा है। शिव-विष्णु की एकता में मरुतों का भी विशेष स्थान है। पौराणिक साहित्य में मरुत् पुत्र हनुमान राम के अन्यतम सहायक सिद्ध हुए और उन्हे रुद्र-रूप, रुद्र-पुत्र, अथवा दोनों रूपो में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि दोनों का सीधा सम्बन्ध तो प्रतीत नही होता है, तथापि परम्परागत साम्य अवश्य दिखाई देता है दक्षिण भारतीय आगमन्ति से हनुमान का जो रूप

सम्बद्ध किया जाता है उसमें उनके पवन से सम्बद्ध होने का कोई सन्दर्भ नही मिलता। अत यह वैदिक परम्परा से ही सम्बद्ध एव उद्भूत लगता है। जिन विदेशी विद्वानो ने रामकथा को प्रतीकात्मक रूप मे ग्रहण किया है उन्होंने राम को मेघ, हनुमान को पवन और सीता को कृषि का द्योतक माना है।

वैदिक आर्य-अनार्य सघर्ष की अनुगूँज पुराणों मे भी अनेक रूपो में परिव्याप्त मिलती है। यहाँ विष्णु के विविध अवतारो की कल्पना के साथ शिव के भी विभिन्न स्वरूपो और सन्ततियों का अस्तित्व मिलता है। वैदिक सघर्ष की पृष्ठभूमि मे पुराणो ने शिव और विष्णु की पारस्परिक महत्ता के द्योतक विविध आख्यानो की रचना कर डाली। शिव नाग और गङ्गा धारण करते है तो विष्णु शेषशायी है और गगा उनके वामनावतार का चरणोदक मात्र है। सम्भवत नाग शिवोपासक होने के कारण अपने इष्टदेव को अलकृत रूप में पूजते थे इसीलिए उन्होंने अपने प्रतीक नागों को भी शिव का अलकरण मान लिया। विष्णु कृष्ण रूप मे कालिय नाग का दमन करते हैं। नाग-दमन का अन्य उदाहरण जनमेजय के नागयज्ञ के रूप मे देखा जा सकता है जो यज्ञ प्रधान आर्यों द्वारा शिवोपासक नागों के नाश का प्रतीक है। शिव के काम-दहन की प्रतिस्पर्द्धा मे कृष्ण द्वारा रासलीला मे काम-विजय का आख्यान रचा गया। इसी प्रकार शिव के तृतीय नेत्र मे अग्नि का निवास माना जाने पर कृष्ण को अग्निपान करते दिखाया गया। शिव समुद्रोद्भूत हलाहल का पान करते हैं तो कृष्ण कालिय के विष का दमन और पूतना के विष को पीकर उसका वध करते है। शिव पशुपति हैं तो कृष्ण गोपालक। शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप के आधार पर वैष्णवों ने विष्णु के अर्ध-लक्ष्मीश्वर स्वरूप की भी कल्पना कर ली। राम द्वारा रावण-विजय, जनक के यहाँ शिव-धनुष भग करने तथा परशुराम को पराभूत करने के मूल मे भी शैव-वैष्णव सघर्ष और शैवों पर वैष्णवो की विजय निहित है। रावण के सेनानी असुरो का स्वरूप शिव के गणो जैसा ही है। प्रस्तुत आख्यानो में शैव धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म की महत्ता का प्रतिपादन उद्दिष्ट है। परन्तु ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें विष्णु की अपेक्षा शिव का उत्कर्ष दिखाया गया है। एक आख्यान के अनुसार विष्णु ने जब अपने नेत्र से शिव का पूजन किया तो उन्हे चक्र प्राप्त हुआ। अन्य आख्यान मे चक्र की उत्पत्ति शिव के पादागुष्ठ से मानी गई है। कृष्ण मोर मुकुटधारी हैं तो मोर शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन है। शैव और वैष्णव संघर्ष के इन आख्यानों की चरम परिणति शरभेश आख्यान है, जिसमे विष्णु-विरोधी असुर का नृसिंह रूप विष्णु द्वारा वध करने पर शिव शरभेश रूप में नृसिंह का वध करते हैं।

परन्तु संघर्ष और विद्वेष की कोई सीमा नही। समाज मे एक साथ रहने के लिए पारस्परिक सौहार्द और सहिष्णुता आवश्यक है। इसलिए ऐसे भी आख्यान

सृजित हुए जिनमें शिव और विष्णु का सामंजस्य प्रकट किया गया। उषा-अनिरुद्ध आख्यान के अनुसार पहले शिव और विष्णु में भीषण संग्राम होता है, फिर ब्रह्मा द्वारा उनकी एकात्मता बताने पर दोनों परस्पर एकात्म हो जाते हैं। लिंगोद्भव आख्यान मे ब्रह्मा और विष्णु का विवाद होने पर प्रकाश पुञ्ज के आविर्भाव और ब्रह्मा को अपूज्यता का शाप मिलने तथा शिव और विष्णु के समन्वय के मूल में ब्रह्मा का लोप और हरिहरैक्य भाव ही अन्तर्निहित है। पौराणिक काल मे शिव और विष्णु के समन्वयपरक यह स्थितियाँ कई रूपों में मिलती हैं। कही शिव और विष्णु की अन्योन्याश्रित भक्ति प्रदर्शित है तो कहीं उनमे स्वामी-सेवक, मैत्री तथा समानता भाव और एक के अभाव मे अन्य की भक्ति असम्भाव्य प्रतिपादित की गई है। एक के पूजन से अन्य की प्राप्ति हो सकती है, एक के हृदय में अन्य का निवास है तथा प्रत्येक सयुक्त स्वरूप धारण करता है। पारस्परिक समन्वय की सर्वोच्च स्थिति वह है जहाँ शिव या विष्णु को अकेले अथवा सम्मिलित रूप मे हरिहर बताया गया है और उनकी पूजा-पद्धति का पृथक् विधान हुआ है।

हरिहर का एकात्म स्वरूप स्थिर हो जाने पर उनके स्तोत्र तथा मूर्ति-मन्दिरो की रचना प्रारम्भ हो गई। ऐसे प्राचीनतम स्तोत्र हरिवंश पुराण (२।१२५।२६-५८) तथा भारवि के है। हर्षकालीन बाण ने नीलम-जटित कुण्डल तथा मौक्तिक-जटित त्रिकण्टकधारी राजकुमार की उपमा हरिहर के समन्वित स्वरूप से दी है (हर्षचरित, उच्छ्वास ४), जो श्याम (नील) तथा श्वेत वर्णी होते हैं। कुषाणकाल से हरिहर के समन्वय भाव के शिल्पशास्त्रीय प्रमाण भी उपलब्ध होने लगते हैं, जहाँ कनिष्क के एक सिक्के पर शिव को गदाधारी प्रदर्शित किया है और राजघाट की अभिमुद्रा पर वृषभ के अतिरिक्त चक्र एव शंख भी निरूपित हैं। कनिष्क के सिक्कों पर भी शिव को गदा, चक्र, त्रिशूल और दाम धारण किए दिखाया गया है। हरिहर की सम्पूर्ण प्रतिमाओ का निर्माण गुप्तकाल से मिलने लगता है। अब तक यह मथुरा, इलाहाबाद, मध्यप्रदेश, बिहार तथा पूर्व में भुवनेश्वर और दक्षिण मे बीजापुर तक मिली हैं। इसी काल की अहिच्छत्र (बरेली, उत्तरप्रदेश) तथा सुनेत (पजाब) मे प्राप्त मोहरों का हरिहर के मन्दिरों से सम्बद्ध होना हरिहर-उपासना की व्यापकता एव दृढ़ता का प्रमाण है। गुप्तकाल से ही हरिहर के मूर्तिशास्त्रीय लक्षण भी उपलब्ध होने लगते हैं।

शिल्पशास्त्र में हरिहर का मूर्ति-विधान प्रायः शैव प्रतिमाओ के अन्तर्गत समाविष्ट मिलता है और हरिहर मूर्ति में विष्णु को वामार्ध मे प्रदर्शित करने का विधान है। अर्धनारीश्वर में शिव भाग प्रधान होने के कारण उसे शैव प्रतिमा माना जाता है और उसमें नारी भाग वामार्ध में रहता है इससे लगता है कि हरिहर की

सूत्रपात मूलतः शैवो की ओर से हुआ होगा । इसी प्रकार लक्ष्मी और अंबिका के रूप भी तात्विक समानता से युक्त मिलते हैं जो उनसे सम्बद्ध सूक्तो से प्रकट हैं । मुण्डमालातन्त्र,[1] कालीतत्व,[2] कथासरित्सागर (मंगलाचरण) आदि मे शक्ति को नारायण रूप कहा गया है, जिससे अर्धनारीश्वर भी शिव और विष्णु का समन्वित रूप सिद्ध होता है । निश्चय ही यह प्रयास शैवों की कल्पना है । दक्षिण भारत में शैव-वैष्णव समन्वय के एक रोचक आख्यान की कल्पना हुई है । विष्णु के मोहिनी रूप पर शिव आकर्षित हो गए और उनके संयोग से सन्तान भी उत्पन्न हुई । दक्षिण में इसे शास्ता अथवा हरिहरपुत्र आयंगार कहा जाता है और वहाँ इसकी उपासना का पर्याप्त प्रचार है । नाक पर अँगुली रखे विचारमग्न शास्ता का कहना है कि—

उमामहं मातरमाह्वयामि
पत्न्यः पितुर्मातिर एव सर्वाः ।
कथं नु लक्ष्मीमिति चिन्तयन्त
शास्तारमीडे सकलार्थसिद्ध्यै ॥

अर्थात् शिव मेरे पिता है, इसलिए उमा को तो मैं माँ कह सकता हूँ परन्तु विष्णु के मोहिनी रूप से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी को क्या कहकर सम्बोधित करूँ ।

७वी-८वी शती से हरिहर-उपासना ने प्रबल और सार्वदेशिक रूप ग्रहण कर लिया, क्योंकि इस काल में ओसिया मे पंचायतन शैली के हरिहर-मन्दिरों का निर्माण हुआ है । इसी काल से हरिहर की मूर्तियाँ धुर दक्षिण के अतिरिक्त कम्बुज आदि पूर्वी द्वीपों से भी मिली है । आगे निरन्तर क्षेत्र की व्यापकता होती गई और पश्चिम में गुजरात तथा राजस्थान, पूर्व में असम तथा दक्षिण मे केरल-तमिलनाडु तक हरिहर की मूर्तियाँ, मन्दिर, अभिलेख आदि मिलते हैं । ऊपर सम्भावना प्रकट की गई है कि हरिहर समन्वय का प्रयास शैवों की कल्पना से अनुस्यूत होने के कारण हरिहर मे शैव तत्व की प्रधानता है । परन्तु इस समन्वय को मान्यता शैव-वैष्णव दोनों धर्मों से मिली । हाँ, जिन मूर्तियो मे दक्षिणार्ध मे वैष्णव लक्षण मिलते हैं, उनकी वैष्णव प्रकृति प्रधान हो सकती है । इस दृष्टि से कुतारी (इलाहाबाद) का एक शिलापट्ट भी महत्वपूर्ण है जिसके चार पार्श्वों में वामन, संकर्षण तथा वाराह के साथ हरिहर

---

१. डॉ० बृजेन्द्रनाथ शर्मा, अघोररूपा पंचमुखी स्वच्छन्द भैरवी, हिन्दुस्तान (५ जनवरी, १९६९), पृ० २७
२ हिन्दुस्तान (१३ नवम्बर, १९६९), पृ० ७

प्रतिमा उत्कीर्ण है । विष्णु के तीन अन्य रूपों के साथ हरिहर को निरूपित करना इस तथ्य का प्रमाण है कि शिल्पी हरिहर को विष्णु का ही एक रूप समझता है । इसकी अभिपुष्टि पुराणों से भी होती है । इसी प्रकार अन्य कई प्रतिमाओं में शैव लक्षण दक्षिणार्ध में प्रदर्शित है । मध्यकाल में वैष्णव धर्म की प्रधानता के बाद तो विष्णु को हरिहर में प्रायः दक्षिणार्ध ही मिल गया है क्योंकि आधुनिक चित्रों में उन्हे अधिकांशतः ऐसा ही दिखाया जाता है ।

हरिहरपरक व्यक्ति,[१] क्षेत्र,[२] नगर[३] तथा ग्राम[४] नाम हरिहर सम्प्रदाय की व्यापकता एवं प्रबलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं । हरिहर के वामविष्णु (अहिच्छत्र की मृण्मुद्रा), शंकरनारायण (शिल्परत्न, मुनेत की मोहरें), हर्यर्ध (काश्यपशिल्प, उत्तर-कामिक, सुप्रभेद तथा पूर्वकारण आगम), अर्धनारायण (शिल्परत्न), हरिशंकर, रुद्रकेशव (अग्निपुराण), हर्यर्धहर, हरमर्धहर, हरि (काश्यपशिल्प), प्रद्युम्नेश्वर (विजयसेन की देवपाडा प्रशस्ति), शम्भुविष्णु, हरअच्युत (कम्बुज) आदि विविध पर्याय भी सम्प्रदाय की लोकप्रियता के परिचायक हैं । इसी प्रकार हरिहर के मन्दिरों और प्रस्तर प्रतिमाओं के अतिरिक्त उपकरण रूप में काष्ठ, धातु, मृत्तिका और कागज का प्रयोग तथा अभिलेखों-स्तुतियों की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण है । आधुनिक काल में बंगाल में हरिहर का उपयोग पटचित्र के रूप में होता है । नागपुर में हरिहर के यथार्थ स्वरूप से किंचित् भिन्न एक मन्दिर का निर्माण आधुनिक काल में हुआ है जिसमें समस्त आचार हरिहर मन्दिरों के समान होते हुए भी मन्दिर में हरिहर की समन्वित मूर्ति के स्थान पर शिव और विष्णु के द्वैत स्वरूप की एक साथ पूजा होती है । हरिहर के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण ही श्री बलदेव उपाध्याय ने भागवत सम्प्रदाय में हरिशंकर मूर्ति को चतुर्मुखी तथा बीस-भुजी कह दिया है । वस्तुतः विष्णु की विश्वरूप मूर्ति को चतुर्वक्त्र तथा बीस-भुजी बनाने का विधान है ।[५]

---

१. विजयनगर राज्य के संस्थापक महाराज बुक्क प्रथम के उत्तराधिकारी महाराज हरिहर (१३७९-१३९९) । आज भी कितने ही लोगों के नाम हरिहरपरक मिलते हैं ।

२. हरिहर क्षेत्र, सोनपुर ।

३. हरिहर नगर, तुङ्गभद्रा का तटवर्ती; कम्बुज में भी ।

४. वाराणसी, चित्रकूट, गाजीपुर, बरेली आदि में कितने ही हरिहरपुर नामक गाँव आज भी विद्यमान

५ अपराजितपृच्छा, सूत्र २१९ २८ ३२

साहित्यिक क्षेत्र में हरिवंश पुराण तथा भारवि से प्रारम्भ हरिहर स्तोत्रों की परम्परा को आगे चलकर तुङ्गोक, राजशेखर, जलचन्द्र, भवानन्द, हरि, आर्याविलास, त्रिपुरारिपाल, योगेश्वर, मल्लिनाथ आदि ने विकसित किया। जगद्धर भट्ट ने स्तुतिकुसुमाजलि मे कितनी ही हरिहरात्मक स्तुतियों को समाविष्ट किया है और स्तोत्रसमुच्चय में भी कई हरिहर स्तुतियाँ मिलती है। संस्कृत के स्तोत्र साहित्य के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो में भी हरिहर स्तुतियाँ तथा हरिहरैक्य भाव का समावेश हुआ है। अभिनन्द (९वीं शती) कृत रामचरितम् में हरिहरात्मक श्लोक है और जैमिनीय अश्वमेध (१२वी शती) में अर्जुन सुधन्वा से कहते हैं कि हे वीर ! इस बाण से किरीट सहित तुम्हारा सिर अभी न गिरा दूँ, तो विष्णु और शिव में भेद-बुद्धि करने से जो पाप होता है, वह सब मुझे प्राप्त हो—

अनेन बाणेन न पातयामि
शिरस्त्वदीय सकिरीटमद्य ।
विभेदनाद्विष्णुगिरीशयोर्यत्
पापं समग्र मम चास्तु वीर ॥[1]—१९।६४

प्रसन्नराघव (१३वीं शती ई०) के भरत-वाक्य में सुग्रीव विष्णु तथा शिव मे अभेद-बुद्धि की कामना करते है और आनन्दरामायण, धर्मखण्ड (१५वी शती) रामलिंगामृत (१७वीं शती) प्रभृति संस्कृत के धार्मिक तथा ललित काव्यों में राम तथा शिव के अभेद का प्रतिपालन है।[2] १७वी शती की तत्वसंग्रह रामायण में तो राम को विष्णु, शिव, ब्रह्मा, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म के अतिरिक्त हरिहर का भी अवतार कहा है।[3]

नवी-दसवी शती से संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओ में भी हरिहरैक्य भाव मिलता है। तमिल में शैव कंबन ने रामायण की रचना की है और मलयालम में निरणम कवि (१४-१५वी शती) ने शिवरात्रि माहात्म्य के साथ भागवत दशम स्कन्ध का भी प्रणयन किया। तुन्चत्तु रामानुजन एजुत्तच्छन (१६वीं-१८वीं शती ई०) को राम, कृष्ण तथा शिव बराबर थे,[4] इसीलिए उन्होंने ब्रह्म को नारायण, जनार्दन, विष्णु, गोविन्द, मुकुन्द के साथ सदाशिव, त्रिलोचन आदि विशेषणो का प्रयोग

१ कल्याण (श्री विष्णु अक, जनवरी, १९७३ ई०), पृ० २४० से उद्धृत।
२. रामकथा, पृ० ३२१
३. वही, पृ० ४७१
४. हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति-काव्य, पृ० ५३

किया है।[१] कन्नड़ के सर्वप्रथम कृष्णकाव्य जगन्नाथविजय (१२वीं शती ई०) में रुद्रभट्ट ने शिव के मुँह से 'द्वय भाव नमगिल्ल बल्लवरे नानुं नीनुं' अर्थात् हम में द्वय भाव नहीं है, यह हम दोनों जानते हैं—कहलाकर हरिहरैक्य भाव प्रदर्शित कराया है।[२] १३वीं-१४वीं शती में आन्ध्र में शैवमत अत्यन्त प्रबल था। ऐसी परिस्थिति में १३वीं शती के तिक्कन सोमयाजी दो शताब्दी पूर्व नन्नयभट्ट द्वारा प्रारम्भ किए गए 'आन्ध्र महाभारत' को तभी पूरा कर सके, जब उसमें हरिहर को मान्यता दी।[३] इसी शती के बुद्धनाथ ने रंगनाथरामायण में राम के अन्तर्गत शिव का रूप भी समाविष्ट करने का प्रयास किया है। राज्याभिषेक के समय राम ऐसे लग रहे थे मानो वे ही शिव हों और वे ही विष्णु हों—

मान्वित वेदोक्त मन्त्रपूर्वकमुगा-
अभिषेकबु करमोप्पि चेय
परिकिंप रामभूपालकुण्डपुड्ड
हरुडु विष्णुड्डु तान यनु माडिक नुंडे।[४]

गुजराती रामायण में राम द्वारा विविध स्थानों पर शिवलिंगों की स्थापना कराई गई है और किष्किन्धा काण्ड में राम-हनुमान भेंट को हरिहर के रूप में चित्रित किया गया है।[५] उड़िया रामायण में भी शैव-वैष्णव समन्वय का प्रयास हुआ है[६] और मराठी की भावार्थ रामायण में एकनाथ ने भी हरिहरैक्य भाव का प्रतिपादन किया है।[७] बंगला की कृत्तिवासी रामायण में राम द्वारा शिव-स्थापना के समय शिव स्वयं उपस्थित होकर राम के हाथ पकड़ लेते हैं। तब दोनों हर्षित होकर प्रेमालिंगन करते हैं। शिव कहते हैं कि प्रभु किसकी पूजा करते हो। तुम तो मेरे इष्टदेव हो। राम कहते है कि तुम मेरे इष्टदेव हो और रावण-वध के लिए पुष्प-जल ग्रहण करो।[८]

---

१. हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति-काव्य, पृ० ८०
२. कन्नड़ का सर्वप्रथम कृष्णकाव्य : जगन्नाथविजय, हिन्दी-अनुशीलन (वर्ष १४, अंक २), पृ० २१
३. रामचरितमानस : तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १७४
४. वही, पृ० १७६ से उद्धृत।
५. वही, पृ० ३६४-३६५
६. वही, पृ० २६३
७. वही, पृ० ३५६, ३६५
८. कृत्तिवासी-बंगला-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० [illegible]

इस प्रकार एको नियान बह्वो रथासा: के आधार पर एक ही बात विविध रूपों में कही गई मिलती है।

जहाँ तक हिन्दी-साहित्य में हरिहरैक्य निरूपण का प्रश्न है, निर्गुण काव्य एकेश्वरवादी रहा है। इसकी ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दोनों ही शाखाओं में इसी पर बल दिया गया है, जो प्रसंगात द्वैत भाव का निराकरण है। साथ ही यहाँ वैष्णवी भक्ति के साथ शैव योग-साधना का मणिकांचन संयोग है। सहजोबाई ने एक पद में हरिहर-भक्ति का प्रबोधन किया है और मलिक मुहम्मद जायसी ने हरिहर को उपमान रूप में ग्रहण किया है। कृष्ण-काव्य में विद्यापति हरिहर-उपासना से अधिक प्रभावित लगते हैं, जबकि सूरदास तथा रसखानि ने भी हरिहरात्मक छन्दों का प्रणयन किया है। इन तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में भी हरिहर विद्वेष के स्थान पर सहिष्णुता की ही परिव्याप्ति है। राम-काव्य में सेनापति ने शिव और विष्णु दोनों के प्रति समान भाव रखा है तथा एक छन्द में श्लेष से शिव और विष्णु का एक साथ वर्णन किया है। हरिहरैक्य समन्वय की व्याप्ति सर्वाधिक रूप में तुलसी के साथ मिलती है। तुलसी ने राम-रूप विष्णु को इष्ट और शिव को अपना आध्यात्मिक गुरु मानने के साथ दोनों के समन्वय को विविध प्रकार से प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने कई स्थलों पर हरिहर के एकात्म स्वरूप की भी स्थापना और उसका वर्णन किया है। विनयपत्रिका का हरिशंकरी पद ऐसी ही रचना है। उन्होंने राम-भक्त होकर शिव को जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है तथा बहिर्साक्ष्य से उनकी जो सम्मिलित शैव-वैष्णव भक्ति प्रमाणित होती है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे प्रच्छन्न हरिहर उपासक थे। जैसाकि प्रारम्भ से कहा गया, हरिहर वस्तुत: शैव रूप है, इसलिए मध्यकालीन वैष्णव कवि उसे यथोचित रूप में ग्रहण नहीं कर सके, क्योंकि आधुनिक काल तक हरिहर की स्वरूप-निर्मिति तथा पूजा-उपासना होने पर भी साहित्य में एकात्म स्वरूप की व्याप्ति उस रूप में नहीं है जैसी अपेक्षित थी। इस सन्दर्भ में हिन्दी का शैव-काव्य स्वतन्त्र अनुसन्धान का विषय हो सकता है।

मध्यकालीन समाज में हरिहर-उपासना की प्रबलता का प्रमाण यही है कि विद्यापति, सूर, तुलसी, रसखानि, सेनापति आदि के अतिरिक्त बिहारी, वल्लभ, घन-आनन्द, देव, बोधा आदि रीतिकालीन कवियों ने भी हरिहरैक्य भाव को मान्यता दी है। विद्यापति के समसामयिक भीषम कवि ने हरिहर की उपासना हेतु प्रबोधित किया है[1] तथा सोलहवीं शती विक्रमी के उत्तरार्ध और सत्रहवीं के पूर्वार्ध में विद्यमान अल्पज्ञात गद्द कवि ने हरि-हर की तुलना करते हुए लिखा है—

१. मित्र-मजूमदार द्वारा सम्पादित विद्यापति, पृ० ६१६

उनके कंठ वनमाल कठ रुण्डमाला इनके ।
उनके पीताम्बर वसन बसनअगछाला इनके ।
उन गोपियन संग रवन गवर संग इनके सजै ।
उन मुष सोहै बंस नाद मुष इनके गजै ।
इनपै गरुड़ उनपै धवल कवि विचार बधू चरण ।
मन एक तन दोय है भेष एक न्यारो वरण ।।[1]

बिहारी ने खण्डिता नायिका के प्रसंग मे नायक को हरिहर से उपमित किया है—

प्रानप्रिया हिय मे बसै, नखरेखा-ससि भाल ।
भलो दिखायो आइ यह, हरिहर रूप रसाल ।।

—बिहारी रत्नाकर, दोहा २९७

महाकवि वृन्द के पुत्र बल्लभ कवि ने बल्लभ-विलास के मंगलाचरण में गणेश और शारदा के साथ हरिहर का स्तवन[2] तथा देव ने श्लेष से शिव और कृष्ण का एक साथ वर्णन किया है—

इन्दु-कलित सुन्दर बदन, मनमथ-मथन-बिनोद ।
गोबरधन-गिरि जासु वन, बिहरत गोपति गोद ।।

—देवसुधा, भूमिका, छन्द १

घनआनन्द ने शिव को कृष्ण रूप माना है—

संकर गिरिजापति नन्दीसुर चंद्रचूड़ गंगाधर ।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय-हर ।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर ।
आनंदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित-वृन्दावन-घर ।।

—घनआनन्द, पदावली, ३२४

तथा बोधा ने विरहवारीश में एक साथ कृष्णशंकर की वन्दना की है ।[3]

मध्यकाल से इतर कवियो के काव्य में भी हरिहर-विद्वेष न होकर उनका सहिष्णु भाव ही प्रधान है । उस काल की अनुगूंज आज तक इस रूप में व्याप्त है कि हरिहर का शिल्पाश्रित स्वतन्त्र स्वरूप विस्मृत होते हुए भी हरिहरैक्य भाव विद्यमान है ।

---

१. ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ७७७
२. वही, पृ० ४३१
३. विश्वभारती-पत्रिका (खण्ड ७, अंक ४), पृ० १५७

मानसपीयूष[1] में पचतत्वो के आधार पर शिव और विष्णु की समानता निम्न रूप मे प्रदर्शित की गई है—

तत्व	शैव	वैष्णव
पृथ्वी	विभूति	गदा
जल	गगा	पद्म
अग्नि	भाल-नेत्र	सुदर्शन
वायु	सर्प	पाचजन्य
आकाश	डमरू	नन्दक

वैयाकरणों ने—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवद्भाति ।
कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेद विना शास्त्रम् ।।

अर्थात् हरि तथा हर शब्द एक ही 'हृ' धातु मे क्रमशः इ तथा अ प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न हुए है परन्तु मूर्खजन शास्त्रो से अनभिज्ञ होने के कारण उनको लेकर परस्पर कलह करते हैं, कहकर दोनो में एकात्म प्रदर्शित किया है। अमृतलाल नागर एकदा नैमिषारण्ये में पौराणिक काल का वर्णन करते समय हरिहरैक्य की भी स्थापना कराते हैं।[2] एक स्तोत्र ग्रन्थ के नितान्त वैष्णव होते हुए भी उसे हरिहर स्तोत्र कहा गया है।[3] इसके प्रारम्भ में त्रिदेवों को एक स्वरूप मानते हुए विष्णु के विविध अवतारों का स्तवन है। इलाहाबाद में ऐसे कई आधुनिक देवालय हैं जिनका हरिहर मन्दिर नाम होते हुए भी उनमे हरिहर का एकात्म विग्रह न होकर एकमात्र शिव प्रतिमा का पूजन होता है। यह हरिहर की परम्परागत शैव प्रकृति का अधुनातन प्रमाण है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल में हरिहर-उपासना का प्रचलन होते हुए भी उसी काल से वैष्णव-धर्म की प्रधानता के कारण हरिहर का यथार्थ स्वरूप लोक में प्रायः विस्मृत हो गया। आज इसके स्थानापन्न रूप मे उत्तर भारत में हनुमत उपासना और दक्षिण भारत में शास्ता की उपासना मानी जा सकती है। शास्ता तो हरिहर-पुत्र ही हैं, हनुमान राम के सेवक होकर शिव के स्वरूप हैं। हनुमान की कुछ बहुमुखी मूर्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनके एकाधिक मुखो मे शैव और वैष्णव तत्वों को समाहित किया गया है।

---

१. भाग १, पृ० २०१-२०२ की पादटिप्पणी।

२. देखिए—पृ० २२५-२२६

३. प्रकाशक—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, देहली

समग्र स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि मध्यकालीन भक्ति-साहित्य मे अनेक रूपों में परिव्याप्त हरिहर-उपासना एक सुदीर्घ परम्परा से सम्बद्ध ऐसा सत्य है जिसका वास्तविक रूप तत्सम्बन्धी इतर दिशाओं के अध्ययन, अनुशीलन के बाद ही स्पष्ट होता है। उसकी महत्ता भी इस नये परिप्रेक्ष्य में कहीं अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि वह सांस्कृतिक एकता की गहरी प्रवृत्ति का द्योतक सिद्ध होता है।

परिशिष्ट क

प्रेममार्गी काव्य-धारा

इस प्रकार दार्शनिक दृष्टि से हिन्दी के सूफी कवियो ने इस संसार को उस आदि ब्रह्म की रचना माना है, जो सृष्टि के आरम्भ से अब तक विद्यमान है और ससार के अन्त में भी रहेगा। वह निराकार, निर्गुण तथा सर्वशक्तिसम्पन्न है। ससार की रचना मे उसने किसी की सहायता नही ली। ससार के पालन तथा सहार में भी उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा ब्रह्म बिना किसी विशिष्ट स्थान के सम्पूर्ण ससार मे परिव्याप्त है। जायसी ने उसे प्राप्त करने के असख्य मार्गों मे से किसी को भी अपनाने की स्वतन्त्रता दे दी है।

बौद्धिक अथवा वैचारिक दृष्टि से भी सूफी कवियो ने पूरी उदारता का परिचय दिया है। जायसी सूफियों के अतिरिक्त गोर पथियों, हठयोगियों, वेदान्तियों आदि से प्रभावित थे। इन सबके लिए शैव-वैष्णव एक सदृश हैं। कुतुबन ने मृगावती (१८२।२,३,५) में विष्णु तथा शिव दोनो से सम्बद्ध दृष्टान्तों का प्रयोग किया है।[1] इन कवियो ने शैव-वैष्णव उपमानो का भी प्रयोग किया है।[2] दाऊद ने गोवर नगर मे भागवत तथा शैव दोनों का निवास दिखाया है[3] तथा चाँदा की दासी बृहस्पति लोरिक से कहती है कि वह शिव तथा विष्णु की उपासना करे तो चांदा उससे अवश्य प्रेम करने लगेगी।[3] पद्मावत (२६४) में शिव तथा विष्णु दोनो ही रत्नसेन की सहायता करते हैं। रत्नसेन सिंहलद्वीप मे शिव-मडप में शिव को नमोनारायण कहकर

---

१. मृगावती १२३।४; २२८।१ तथा १५३।४; ३५१।४ आदि; मधुमालती १६६।२ तथा ६१।६ आदि, पद्मावत ३६।८, ४८।१ तथा १०२।३-४; १०४।२; २१६।२, ३५५।४ आदि।

२. चांदायन २०।२-३

३. वही १७८।३

अभिवादन करता है[१] तथा उसी में नागमती-पद्मावती विवाद के समय रत्नसेन की उपमा हरिहर से दी गई है। पूर्व प्रसग से पद्मावती स्वय को ऐसी कमलिनी बताती है जो मानसर में विकसित हुई है (कडवक ४३८)। नागमती उसे कमलिनी स्वीकार करते हुए भर्त्सना करती है कि वह अपने कमलगट्टो (व्याज से कुचों) को छिपाकर नहीं रखती है (४३९।२)। वह पद्मावती से कहती है कि कमल की पँखुड़ियो की तेरी फटी हुई चोली है और ज्यों ही तू सूर्य (व्याज से रत्नसेन) को देखती है उसे हँसकर खोल देती है (४३९।३)। पद्मावती मानती है कि वह कमलिनी है और सूर्य रूपी रत्नसेन की जोड़ी है। यदि प्रिय अपना है तो उसमे चोरी क्या हुई? कमलिनी (स्वयं पद्मावती) के हृदय में जो गट्टा (कुच) होते हैं उनको हरिहर (रत्नसेन) ने हार बनाया (अपने हृदय पर धारण किया) तो इसमे क्या घट गया (४४०।१,५)। यहाँ डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अर्थ किया है, कमलिनी के हृदय मे जो गट्टा होता है उसको हरि और हर ने हार (बनाकर धारण) किया तो इससे क्या घट गया?'[२] सन्दर्भ रत्नसेन का चल रहा है और पद्मावती स्वय को उसी का उपभोग्य बता रही है। ऐसे में हरिहर रत्नसेन के लिए आया है जो एकवचन में है। हरिहर को द्विरूप मानने से, जैसाकि डॉ० गुप्त ने अर्थ किया है, पद्मावती अनेकचारिणी ठहरती है, जिसके गट्टे रूपी कुचों का उपयोग दो व्यक्तियों के द्वारा होता है। स्पष्ट है पद्मावती स्वयं को ऐसा नहीं कहेगी और फिर जब वह सपत्नी से अपनी प्रशंसा कर रही है। हरिहर की मूर्तियों तथा चित्रों मे उन्हे एक ही माला धारण किए भी दिखाया जाता है। लगता है डॉ० गुप्त हरिहर के शिल्पगत स्वरूप स अनभिज्ञ हैं इसीलिए उन्होने ऐसा अनर्थ किया है।

१ पद्मावत, कडवक १६५।४
२- वही ४४०।५

परिशिष्ट ख

ज्ञानमार्गी काव्य-धारा

हिन्दी के मध्यकालीन सन्त कवि निर्गुण के उपासक हैं। उनका यह इष्ट सर्वशक्तिमान, सर्वगुणसम्पन्न किन्तु निराकार और घट-घट व्यापी है। महत्वपूर्ण यह है कि समस्त सृष्टि मे एकमात्र उसी का अस्तित्व है। ब्रह्मनिष्ठ साधक की दृष्टि को समतावादी होना चाहिए, तभी उसके लिए आत्मोत्थान एवं लोककल्याण कर सकना सम्भव है। इस दृष्टि से वह लोकग्राही भी होता है और लोक में जो भी सत्यं-शिवं-सुन्दरम् होता है उसको वह आत्मसात् करता चलता है। यही कारण है कि निर्गुणोपासक होते हुए भी सन्त-कवियो में हमें सांख्य, योग, वेदान्त आदि दर्शन तथा शैव, वैष्णव आदि धर्मों की प्रवृत्तियो का स्पष्ट प्रभाव मिलता है। जहाँ उन्होने ब्रह्म के लिए मुरारी, गोपाल, शारगपाणि, गोविन्द, रघुनाथ, केशव आदि वैष्णव अभिधानो का प्रयोग किया है; वैष्णवों की सदाचारप्रियता के अन्तर्गत शील, क्षमा, सन्तोष, धैर्य, दैन्य, दया, सत्य, विवेक, साधु-सेवा, अहिंसा, जाति-बहिष्कार आदि को मान्यता दी है। वैष्णव भक्तिसूत्रो से निःसृत विषयासक्ति के त्याग, समता भाव से भगवद्भजन, भगवद् गुणो के श्रवण-कीर्तन, सत्सङ्ग, काम-क्रोध-मद-मत्सर आदि के त्याग, एकान्तवास, कर्मफल के त्याग, भगवद् अनुराग, समर्पण और कारुण्य भाव, पवित्रता आदि को प्रश्रय दिया है, वही चित्त और प्राण-निरोध, पिण्ड और ब्रह्माण्ड के ऐक्य की भावना, वायु-साधना, नाड़ी-साधन, मुद्रा, षट्चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी-जागरण, सुरति-निरति, सहज की प्रवृत्ति आदि योग साधना के तत्वो, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योग के अष्टांग साधनों पर बल दिया है। योग की परम्परा शैव है क्योंकि एक ओर सिन्धुघाटी की मुद्राओं मे हमें शिव के आदिरूप पशुपति योगमुद्रा में मिलते हैं, दूसरे ओर साहित्यिक प्रमाणों से भी इसकी पुष्टि होती है। हठयोग-प्रदीपिका की टीका (१-५) में ब्रह्मानन्द ने कहा है कि सब नाथो में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं

शिव हैं।[1] सिद्धसिद्धान्त-पद्धति में भी आदिनाथ को शिव ही माना गया है।[2] नाथ सम्प्रदाय समग्रतः शैव ही है,[3] जिसे सिद्धमत, योगमार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत, अवधूत सम्प्रदाय आदि नामों से भी जाना जाता है।[4] कबीर ने 'अवधू' (अवधूत) को सम्बोधन करते समय इस मत को ही बराबर ध्यान में रखा है।[5] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की धारणा है कि अद्वैत भाव में द्वैत भाव की कल्पना और निर्गुण भाव में भी सगुण भाव का काल्पनिक आरोप कश्मीरी शैव सम्प्रदाय के प्रत्यभिज्ञा दर्शन की विशेषता है जिसे किसी न-किसी रूप में सन्तों ने भी स्वीकार किया है।[6] इसी प्रकार भगवान् की करुणा मे अटूट विश्वास, मुक्त काव्य-रूप की प्रवृत्ति, प्रेम और आनन्द की अभिव्यक्ति, पर्यटनशीलता तथा रहस्याभिव्यक्ति को दक्षिण के सामजस्यवादी शैवों से आया समझा गया है।[7] सम्प्रति कुछ सन्त-कवियों की एतद्विषयक धारणा के परिप्रेक्ष्य में उनकी समन्वयवादी दृष्टि पर विचार करना उपयुक्त होगा।

कबीर

कबीर के विचारों को देखने से लगता है कि वह तो शंकर के अद्वैतवाद, योगियों के हठयोग, वैष्णवों की शरणागति—सभी का आपानक है। जहाँ उन्होंने रामानन्द के चरणों में बैठकर उनकी सन्तवाणी से हृदय को आप्लावित किया था, वहीं नाथ-सम्प्रदाय से प्रभाव ग्रहण कर औंधे कुएँ से प्रस्रवित अमृत-रस का पान किया था। उस समय नाथ-सम्प्रदाय अपनी परिव्याप्ति पर था और फिर मगहर से गोरखपुर निकट भी है। नाथों से प्रभावित होने के कारण ही गढ़वाल में कबीर नाम के साथ 'नाथ' शब्द संलग्न मिलता है।[8] कबीर ने अपने एक पद में बाह्याडम्बर की निन्दा करते हुए गोरखनाथ की प्रशंसा भी की है।[9] जब शिव-शक्ति का जन्म तक नहीं

---

१. आदिनाथः सर्वेषां नाथाना प्रथमः, ततो नाथसम्प्रदायः प्रवृत्त।

२. देदीप्यमानस्तत्वस्य कर्तासाक्षात् स्वयं शिवः।
    संरक्षन्तो विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः॥

३. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ४

४. वही, पृ० १

५. वही, पृ० २

६. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ८७

७. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३७३

८. योग प्रवाह, पृ० १६७ तथा २०३ के आधार पर कबीर, पृ० १९३-१९४

९. कबीर-ग्रन्थावली, पद १७५

हुआ था कबीर ने तभी से योग की शिक्षा प्राप्त कर ली थी ।[१] अष्टांग योग-साधना के यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि रूपों का उनकी वाणी में विस्तृत वर्णन मिलता है । कबीर ने पिण्ड में स्थित चक्रों की कल्पना भी हठयोग के अनुसार ही की है । वे ध्यान के धनुष पर ज्ञान का बाण रखकर षट्चक्रों का बेधन कर डालते हैं जिससे शून्य मण्डल में प्रकाश होने लगता है ।[२] शरीर रूपी यह गढ अत्यन्त दुर्गम है । इसमे जहाँ (ब्रह्मरन्ध्र) पर ब्रह्म का निवास है वहाँ विद्युत् जैसा प्रकाश तथा अनहद शब्द की ध्वनि होती रहती है : वहाँ सूर्य-चन्द्र नही होते । ऐसे स्थान पर अगम, अगोचर, निरंजन का वास है जो वर्णहीन हैं ।[3] पिण्ड मे ही ब्रह्माण्ड की कल्पना करते हुए कबीर कहते हैं कि हे अवधूत तुम जिसकी खोज करते फिरते हो वह तो तुम्हीं में अन्तर्निहित है । तुममें ही वनखण्ड, गिरिवर, सप्तसिन्धु, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्र आदि सब परिव्याप्त है और ममत्व का नाश कर सत्य की मुद्रा, शील के आसन, क्षमा की झोली, ज्ञान की विभूति, उल्टी पवन की जटा तथा अनहद नाद की किंगरी द्वारा परब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सकता है ।[४] इस अलक्ष्य पुरुष के निवासस्थल पर बिना वाद्य के झकार तथा बिना चन्द्रमा के प्रकाश रहता है । उस गगन गुफा में अमृत नि सृत होता है और काम, क्रोध, मद, लोभ वहाँ भस्म हो जाते हैं । काल की वहाँ गति नहीं तथा अजपाजाप से प्राणी अमर हो जाता है ।[५] अमृत रूपी इस फल का वृक्ष बहुत लम्बा है जो विकट, चिकना तथा दुर्गम है । तन-मन का विस्मरण कर शील तथा सत्य की खूटियों पर पैर रख गुरु-ज्ञान की डोरी द्वारा ही उस फल को प्राप्त किया जा सकता है ।[६] कबीर ऐसे ही सिद्ध हैं जो सीमा को तोड असीम में पहुँच गए हैं और जिन्होंने शून्य मे स्थान बना लिया है ।[७] यह स्थान पिपीलिका मार्ग से ही गम्य है ।[८] उनकी गग-जमुन इड़ा और पिंगला नाडियाँ हैं ।[९]

---

१. कबीर-ग्रन्थावली, पद १४३
२. वही, पद १२१
३. वही, पद १३०
४. वही, पद १४२
५. वही, पद १४५
६. वही, पद १४६
७. वही, परचा को अंग, साखी २१
८. वही, सूखिम मारग को अग, साखी २
९. वही, सूखिम मारग को अग, साखी ७

परन्तु कबीर की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है।[१] भक्तमाल, अगस्त्य संहिता आदि से उनका रामानन्द का शिष्य होना ज्ञात होता है और उन्हीं से कबीर ने भक्ति का पाठ सीखा था। प्रसिद्ध है कि—

भक्ती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट करी कबीर ने सात दीप नौ खण्ड ।।

कबीर स्वयं 'जब लगि हीन पड़ नहिं बानी। तब लगि भजि मन सारंगपानी ।।—(पद ६३।४) का प्रबोधन करते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने राम भक्ति का आश्रय नहीं लिया उसकी जन्म लेते ही मृत्यु क्यों नहीं हो गई। कैसा भी स्वरूपवान व्यक्ति हो राम-भक्ति के बिना वह कुरूप ही है।[२] संसार में भक्ति के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है,[३] इसलिए विषय-रसों को त्यागकर हरि-भक्ति करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलता है।[४] जिसने रघुपति का स्मरण कर नारदी भक्ति नहीं की उसका जन्म व्यर्थ नष्ट चला गया।[५] इस भक्ति के बिना मथुरा, द्वारिका, जगन्नाथ आदि की तीर्थयात्रा बाह्याडम्बर है।[६] स्वयं कबीर को राम के चरणों से अनुराग हो गया है, अब उनके लिए तुलसी का बिरवा ही सम्पत्ति और शार्ङ्गधर ही स्वामी हैं।[७] वे निष्काम भक्ति को ही श्रेष्ठ मानते हुए[८] उसे ज्ञान और योग दोनों से श्रेष्ठ घोषित करते है।[९] उनके तो संसार में दो ही मित्र हैं—वैष्णव और राम। अभीष्ट राम ही हैं इसलिए वैष्णव तो राम का स्मरण कराने के कारण मित्र हैं।[१०]

अपनी इस वैष्णव भक्ति के परिप्रेक्ष्य में कबीर ने अजामिल, गज, गणिका, सनक, सनन्दन, जयदेव, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, शुकदेव आदि भगवद् भक्तों

१. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० १५२
२. कबीर ग्रन्थावली, पद ६४
३. वही, पद ६७, ६६
४. वही, उपदेस चितवनी कौ अंग, साखी ४८
५. वही, पद ८६
६ वही, साध महिमा कौ अंग, साखी २३
७. वही, पद १३१
८ वही, उपदेश चितवनी कौ अंग, साखी ४६, पद ५४
९ वही, करनी कथनी कौ अंग, साखी २
१० वही साध महिमा कौ अंग, साखी ५

का स्मरण किया है । इस सूची में ब्रह्म और शिव का सम्मिलित किया जाना महत्व-पूर्ण है ।[1] नरसिंह अवतार की सम्पूर्ण कथा के अधिग्रहण से तो उनका अवतार की भावना में विश्वास परिलक्षित होता है ।[2] उन्होंने अपने इष्टदेव को राम, हरि, गोकुलनायक,[3] नरहरि,[4] शार्ङ्गपाणि,[5] गोविन्द,[6] रघुनाथ,[7] माधव,[8] केशव,[9] चतुर्भुज,[10] मुरारी,[11] विट्ठल[12], दामोदर,[13] नारायण,[14] रघुपति,[15] कमलाकान्त[16] आदि नामों से अभिहित किया है ।

भक्ति के कई भावों, रूपों तथा आवश्यक अंगो का उनकी रचना में उपलब्ध होना उनकी भक्ति विषयक विस्तृत दृष्टि का परिचायक है । समुद्र से कितनी ही लहरें निःसृत होकर प्रत्यावर्तित होती रहती हैं, महत्वपूर्ण तो वह है जो जाकर उसी में समाविष्ट हो जाए ।[17] समुद्र तथा ऊर्मि के रूपक से कबीर ने यहाँ सायुज्य मुक्ति का महत्व प्रकट किया है ।

उनकी रचना में दास्य भाव तो परिव्याप्त ही है,[18] वात्सल्य तथा माधुर्य भाव भी मिल जाता है । कबीर का निवेदन है कि हे हरि आप जननी हैं और मैं

---

१. वही, पद २०, ४८
२. वही, पद २६
३. वही, पद १०
४ वही, पद १०, १२३
५. वही, पद २१, ६३, १५५
६. वही, पद २३, ४०, ६३, ७३
७. वही, पद २४
८ वही, पद ३०, ३६, ३९, ४३, ७७
९ वही, साच चाणक कौ अंग, साखी ९
१०. वही, पद ७७
११. वही, पद ८२, १७१ आदि ।
१२ वही, पद ३९
१३ वही, पद ४०
१४. वही, पद १०१
१५. वही, पद ८६
१६ वही, पद १२०
१७. वही, साध महिमा कौ अंग, साखी ३२
१८ वही, पद १८, साखी ६।१७ ८।१६, ११।८, १४।३८, १९। ६, १४ आदि ।

आपका पुत्र, फिर मेरे अवगुणों को क्षमा क्यो नहीं कर देते । पुत्र कितने ही अपराध करता रहे, माँ के केश पकडकर आघात भी कर दे परन्तु माँ उस पर ध्यान नही देती है । बालक के दुखी होने पर माँ को भी दुःख होता है फिर मुझ पर ही कृपा दृष्टि क्यो नही ।[1]

इसी प्रकार पति-पत्नी का माधुर्य भाव स्थापित करते हुए कबीर स्वय को बहुरिया और हरि को पिउ बताते हैं । वधू वासक सज्जा है परन्तु क्षण-भर में उसकी स्थिति खण्डिता अथवा प्रोषितपतिका की हो जाती है और यही कहकर धैर्य रखती है कि वही सुहागिन धन्य है जो स्वामी को प्रिय हो ।[2] परन्तु बाल्यावस्था होने से सन्तोष कब तक किया जाए ।[3] कहना पडता है कि हे प्रिय हमारे पास आओ, तुम्हारे बिना शरीर दुखी है । जिस प्रकार कामी को नारी और तृषावन्त को जल की लालसा होती है उसी प्रकार तुम्हारे दर्शन बिना व्याकुल होकर मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ।[4] मैंने तुममे लवलीन हो गृह त्याग दिया, सेज बैरिन हो गई है, जलहीन मछली के समान तालाबेली हो रही है । अब यदि तुम अपनी इच्छानुसार चलकर दर्शन नहीं देते हो, तो हम प्राणों को त्याग रहे हैं ।[5] परन्तु सच्चा प्रेम होने पर प्रिय कब तक आँख-मिचौनी खेलेगा । अभाव तो वास्तविक शृङ्गार का था और जब प्रेम के वस्त्र, शील-सतोष के कगन, कुमति-भस्म के काजल से शरीर को आभूषित किया तो प्रियतम का आगमन आवश्यक हो गया ।[6] फिर तो इतनी प्रसन्नता हुई कि मगलाचरण गाने के लिए सखियो को उद्बोधित करना पडा । यहाँ परकीया भाव नहीं है, विधिवत् विवाह सम्पन्न होगा जिसमें शरीर-सरोवर की वेदी होगी, ब्रह्मा वेद-मन्त्रों का पाठ करेंगे, तैंतीस करोड देवता और अठासी सहस्र मुनि साक्षी होंगे ।[7]

नवधा भक्ति मे से कबीर-काव्य में सख्य भाव का निरूपण नही मिलता है । यह भाव अधिकतर लीला-वर्णन में ही मिलता है और लीलाओं का चित्रण कबीर मे

---

१. वही, पद ३७
२. वही, पद ११
३. वही, पद १९
४. वही, पद १३
५. वही, पद १५
६. वही, पद १७
७. वही, पद ५

या तो अपवाद रूप में मिलता है या प्रतीकात्मक रूप में। शेष आठों भावों के उदाहरण अल्पाधिक मात्रा में देखे जा सकते हैं :—

श्रवण : ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का मीत।
तन मन सौंपे मिरिग ज्यों, सुने बधिक का गीत ।।—क० ग्रं०, साखी ५।६

कीर्तन : इस भाव में कबीर की उन पंक्तियों को देखा जा सकता है जिनमें या तो उन्होंने स्वयं राम-नाम के जाप की बात कही है या दूसरों को उसके जाप हेतु उद्बोधित किया है।[1]

स्मरण : कबीर के अनुसार एकमात्र हरि का नाम ही भक्ति और भजन है शेष तो अपार दुःख के मूल अथवा कालस्वरूप हैं। इसलिए मन, वचन और कर्म से स्मरण करने पर राम की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।[2]

पादसेवन : राम के चरण मन को भा गए हैं।[3] इसलिए कबीर ने गृह-परिवार त्याग दिया और प्रेम-प्रीति के साथ चरणों की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया है।[4]

अर्चना : जहाँ एक ओर कबीर मूर्ति-पूजा जैसे बाह्याचारों के कट्टर विरोधी हैं, वहीं उनके काव्य में कतिपय उदाहरण पूजन के भी मिल जाते हैं।[5]

वन्दना : कबीर की वन्दना शुद्ध साम्प्रदायिक न होकर आध्यात्मिक और अशरीरी है।

कबीर सबद सरीर में, बिन गुन बाजे तांति।
बाहरि भीतरि रमि रहा, तातैं छूटि भरांति ।। क० ग्र० साखी, ९।३७

दास्य : इसका उल्लेख पूर्व-प्रसंग में भी हो चुका है। कबीर उस सामर्थ्यवान का दास है, जिसके कारण कभी अहित नहीं हो सकता। वह तो राम के कुत्ते तुल्य है जिधर स्वामी चाहता है, ले जाता है।[6]

---

१. वही, पद ६६।४; ७२।१; १११।४; १३८।१, साखी ३।२, ३, ४, १६, २५; ३२।१४ आदि।
२. वही, साखी ३।७, १४, १५ तथा पद ७१।१; ७४।१, साखी ३।२३ आदि।
३. वही, पद १३१।१
४. वही, पद १५।२; ७।२; तथा पद १०।७; साखी २५।११ आदि
५. वही, पद ४०।४; ८४।१
६. वही, साखी ११।८; ९।१

आत्मनिवेदन : कबीर का कहना है कि अहंभाव समाप्त हो जाने प अगम्य स्थिति प्राप्त हो गई है। हे ईश्वर अब आपके अतिरिक्त मेरा अन्य को आश्रय नही है तथा मुझमे अपना था ही क्या, जो कुछ था वह तुम्हारा ही था फिर 'त्वदीय वस्तु गोविन्द त्वमेव समर्पयामि' मे मेरे पास से क्या जाता है।[१]

जब स्वय को पूर्णरूपेण इष्ट के आश्रित छोड दिया जाता है तो भक्ति की यह अनन्यता प्रपत्ति भाव कहलाती है। शरणागति की इस स्थिति के छह प्रकार माने गए है :—

१. अनुकूलता का सकल्प (आनुकूलस्य संकल्पः);
२. प्रतिकूलता का त्याग (प्रातिकूलस्यवर्जनम्);
३. भगवान् के रक्षण भाव में विश्वास (रक्षिष्यतीत विश्वासः);
४. भगवान् के रक्षक रूप का वरण (गोप्तृत्ववरणम्);
५. आत्मसमर्पण (आत्मनिक्षेपः);
६. दैन्य (कार्पण्यम्);

कबीर को एकमात्र उस इष्ट की ही आशा है, वही उनका कल्याण कर सकता है इसलिए उन्होने अहंभाव त्यागकर अगम्य निवास प्राप्त कर लिया है।[२] काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, कपट, आशा और तृष्णा भक्त के लिए अष्ट विकार है जो उसे भक्ति मार्ग मे आगे नही बढ़ने देते। विषय-वासना, दुर्जन तथा ससार भी भक्त को त्याज्य होते हैं। कबीर ने काम, मद, विषय-वासना, असत्य, दुर्जन, तृष्णा आदि को स्वय त्यागने का सकल्प करके दूसरो को भी ऐसा ही करने के लिए उद्बोधित किया है।[३]

स्वामी महान् एव असख्य गुणों से सम्पन्न है। समस्त पृथ्वी को आधार बनाकर सबसे बडे वन की लेखनी द्वारा सातो समुद्र की स्याही से भी उन्हे लिखा नही जा सकता। वह सभी प्राणियों की चिन्ता करता है, जन्म के साथ ही पालन-पोषण का प्रबन्ध करता है।[४] कबीर को अपने इष्ट के रक्षण भाव से अटूट विश्वास है, इसीलिए वे अब किसी अन्य की आशा नही करते हैं, ठीक भी है त्रैलोक्य अधिपति

---

१. वही, साखी ३२।११; ६।२ तथा साखी ६।१, ८।११, १५।७१; पद ४३।१, १८६।१ आदि।
२. वही, साखी ३२।११
३. वही, साखी ३०।७; २६।१६-१७, १५।४८, ४।२८ आदि।
४ वही, साखी ११।८; ९।१२ २।४८ ८।१; ३२।१ ५, ८ ६

जिसका स्वामी हो वह याचना करने अन्यत्र कहाँ जाये ।[1] यही कारण है कि राम नाम से कबीर का एकात्म हो गया है और वह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि अब उन्हें नरक तक का कोई भय नहीं है ।[2] नवधा भक्ति के सन्दर्भ में आत्मनिवेदन का भाव देख चुके है । कार्पण्य इतना है कि स्वय को दासानुदास तथा पैरो तले की घास के समान समझा जाता है ।[3]

इसी प्रकार भक्ति के अन्य आवश्यक अगो में से न्यास,[4] परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग,[5] निरभिमानता,[6] विश्व भर में भगवत् स्वरूप के दर्शन[7], सत्संग, अहिंसा, गुरु-महत्त्व आदि के प्रचुर उदाहरण कबीर में मिल जाते हैं। इसीलिए डॉ० मुन्शीराम शर्मा ने कहा है कि वस्तुतः कबीर के जीवन मे वैष्णव सम्प्रदाय की सदाचार सवलित प्रेमा भक्ति और भगवान् राम दोनो का ही प्राधान्य अन्तिम समय तक बना रहा ।[8]

समन्वयात्मक दृष्टि से कबीर ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को एक ही सत्ता के तीन रूप माना है। उसका रजोगुण-प्रधान रूप ब्रह्मा, तमोगुण-प्रधान रूप शिव और सत्वगुण-प्रधान रूप विष्णु है ।[9] प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी भावना के अनुरूप विभिन्न रूपो में समझता है ।[10] (—एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति), परन्तु वह एक ही ज्योति सब जगह परिव्याप्त है और उसके अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है ।[11]

नानक

कबीर के समान नानक ने भी योग और भक्ति दानो के प्रति आस्था प्रकट की है। अमृत धारि, अमृत रस, अनहद सब्द, अलिप्त गुफा, उलटिओ कमल,

---

१ वही, पद ३८
२. वही, साखी ३२।७, १९।१५
३. वही, साखी १९।१४ तथा पद ३९, ४०, ४२
४ वही, साखी ११।१६, १५।४९
५. वही, साखी ३।६, ४।१६ आदि ।
६ वही, साखी ६।१, २, ६।१, १५।७१ आदि ।
७. वही, पद ३९।४; ५४।२, साखी ३।६, ४।३५, ६।३७ आदि ।
८ भक्ति का विकास, पृ० ४२९
९. कबीर ग्रन्थावली, पद १८१।३
१०. वही, साखी ३।१९
११. वही, पद १०५।४

गगनि, दस दुहारि, सहज गुफा, सुन मण्डल, सुन समाधि जैसे हठयोग के शब्दों का उन्होंने प्रचुर प्रयोग किया है। एक पद में योगी की प्रशसा करते हुए उन्होंने कहा है कि जो योगी निर्भय है, वह निरंजन का ही ध्यान करता है और ऐसा योगी मेरे मन को अच्छा लगता है।[१] परन्तु वेशधारी योगियों की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है।[२] उनका 'शून्य' समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है और इस शून्य में मन को नियोजित करना सबसे बड़ा योग है।[३] इसी प्रकार एक पद में भक्ति के रूपक द्वारा योग का वर्णन किया है।[४]

भक्तिमार्ग में वैधी भक्ति के तिलक-माला आदि विधि-विधानों को उन्होंने निस्सार बताते हुए[५] रागात्मिका भक्ति को प्रश्रय दिया है। वह कहते हैं कि गुरु की सेवा के साथ भक्ति करूँगा और हरि के नाम में अनुरक्त होऊँगा। हरि का प्रेम ही मेरी शिक्षा-दीक्षा और भोजन है।[६] राम की भक्ति से ही मुझे सुख प्राप्त होता है[७] और अहर्निश हरि की उपासना करता रहता हूँ।[८] हरि के प्रति उनकी यह अनन्यता तथा प्रीति जल और कमल सदृश है। जिस प्रकार जल रहित कमल का अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार हरि के बिना नानक का जीवित रहना भी दुष्कर है।[९] उनकी कामना है कि यदि सारी नदियाँ गायें, झरने दूध-घी तथा पृथ्वी शक्कर बन जाये और उनके भोग से मैं नित्य प्रसन्न होऊँ, पर्वत मणिजटित स्वर्ण-रजत के, समस्त वनस्पतियाँ सुस्वाद रसयुक्त मेवा, आवास अटल तथा सूर्य-चन्द्र मेरी सेवारत हो जाएँ, तब भी, हे प्रभु। मैं तुम्हारी प्रशंसा तथा स्तुति से विरत न हो जाऊँ। दैविक तापों में भी तुम्हारे प्रति मेरी अनन्यता में किसी प्रकार का अभाव न हो।[१०] यही नहीं, पुनर्जन्म में यदि कोकिल आदि पक्षी की योनि

---

१. नानक वाणी, पृ० २२६, असटपदीआं ७।२
२. वही, पृ० ५०३, असटपदीआं २
३. वही, पृ० ५५६, पद ५१-५२
४. वही, पृ० ५१५, पद ६
५. वही, पृ० ८०२, सलोक १
६. वही, पृ० २१६, असटपदीआ १।६
७. वही, पृ० २३४, गउड़ी, १३।८
८. वही, पृ० ११६, सबद १६।२
९. वही, पृ० १४६, असटपदीआं ११।१
१०. वही, पृ० १८२, सलोम १४-१६

प्राप्त हो, तब भी मुझे मेरा प्रियतम प्राप्त हो और मैं उसके अपार रूप का दर्शन करूँ।[1] इस प्रेमाभक्ति से ही मोक्ष सम्भव है[2] और भक्तिविहीन प्राणी दुखी होते हैं;[3] इसलिए नानक दूसरो को भी हरि-भक्ति के लिए उद्बोधित करते हैं।[4]

भक्ति के उपकरणों मे नानक ने निम्न विषयो का व्यापक वर्णन किया है :—

१ सद्गुरु की प्राप्ति, उसका अनुग्रह तथा उपदेश;

२. सत्संगति,

३. परमात्मा का भय और उसकी आज्ञा,

४ नाम—नृसिंह, हरि, राम, मुरारी, वासुदेव, बनमाली, शार्ङ्गपाणि आदि[5]

५. आत्मनिवेदन तथा आत्मसमर्पण,[6]

६ दैन्य,[7]

७. परमात्मा का स्मरण और कीर्तन;[8]

८. भगवदानुग्रह ।

इसी प्रकार भक्ति के माध्यम रूप में नानक ने जिन भावों को ग्रहण किया है, वे हैं—

१. भिखारी तथा दाता,

२. सेवक तथा स्वामी,

३. सखा;

४. पुत्र तथा माता-पिता,[9]

५. पत्नी तथा पति ।[10]

---

१. वही, पृ० २१६, सबद १९।३,

२. वही, पृ० २०६, सबद १२।२, पृ० ३४४, सलोक २६

३. वही, पृ० १४३, असटपदीआं ७।७

४. वही, पृ० १६४, असटपदीआं ५।१-२

५. वही, पृ० २०४, सबद ६।१ आदि ।

६. वही, पृ० १२६, पद ३१।१,३; पृ० २९७ असटपदी १४।१; पृ० ३६५, असट० ५।८ आदि ।

७. वही, पृ० १२७, सबद २९

८. वही, पृ० १५७, असटपदी १५।८, पृ० २३७, गउडी १६।२

९. वही, पृ० २५०, चउपदा ५।१

१० वही, पृ० १३८, असटपदी ४।७, पृ० १३९, असटपदी ५।३, पृ० १५३ असटपदी १३।१ आदि ।

अपने इष्ट का स्वरूप बताते हुए नानक कहते हैं कि वह अगम, अपार, अवर्ण, अनादि, अक्षर तथा सर्वव्यापक है। वाणी उसका वर्णन नही कर सकती। वह स्वय ही करण तथा कर्त्ता, गोपी-गोपालक और नदी है। सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाला वह सर्वशक्तिमान ब्रह्म अद्वितीय और बहुत ही दयालु है। उसके नाम, रूप और गुण अनन्त हैं।[१] तीर्थ, व्रत तथा तप उसी मे सन्निहित हैं[२] और गंगा-यमुना, केदार, काशी, कांची, जगन्नाथपुरी, द्वारका, गंगासागर, त्रिवेणी सहित पृथ्वी-आकाश, स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल लोक उसी के विराट् अंक में समाहित हैं।[३] देवताओ तक को वह रहस्यमय है[४] और वे उसके सेवक है।[५] एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की रचना उसी ने की है।[६] वह एक ही है जिसने धरती और आकाश का निर्माण किया।[७] अनन्त नामधारी[८] वह एक ही सत्ता[९] विभिन्न रूप धारण करती है।[१०] उस वसुदेव परमेश्वर ने देखने के निमित्त अनेक वेश धारण किए है[११] जिन्हे देखकर नानक को कहना पड़ता है कि प्रभु तेरी मूर्ति तो एक ही है किन्तु उसके स्वरूप बहुत होने के कारण धूप आदि पूजा की सामग्री किसे अर्पित करूँ।[१२] वेदो ने भी कहा है

---

१ वही, पृ० २७२, पद ३३।१, पृ० २९३, असटपदी ११।१

२. वही, पृ० ४९९, सबद, १०।३

३. वही, पृ० ६०९-६१०, मारू सोलहे २।

ब्रह्म के प्रस्तुत स्वरूप की तुलना भगवद्गीता (११।६-२५) के विराट् स्वरूप से की जा सकती है जहाँ द्वादश आदित्य, अष्टवसु, एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार द्वय, उन्चास मरुद्गण, पद्मासीन ब्रह्मा, महादेव आदि देवो तथा ऋषियो, गन्धर्वों, यक्षो, राक्षसों आदि चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् को भगवान् में अंतर्निविष्ट देखा गया है।

४. वही, पृ० ७७८, सबद ३।१

५. वही, पृ० ६२८, मारू सोलहे ८।१५, पृ० ६४६, मारू १४।३

६. वही, पृ० ५१६, रामकली दखणी ९।१२

७. वही, पृ० ४८२, बिलावलु १।१,३

८. वही, पृ० ४९३, सबद ३।३

९. वही, पृ० ८९, जपु २२, पृ० १०३, सबद ३।३, पृ० १४१, असटपदी ६।८, पृ० १८७ सलोक २४-३०, पृ० २२४; गउड़ी ५।७; पृ० २३७, गउड़ी १५।५; पृ० २५०, चउपदा ५।१ आदि।

१०. वही, पृ० ३६७, चउपदा २५।४; पृ० २६९, दुपदा ३०।१; पृ० २५० चउपदा ५।४

११. वही, पृ० ३१४, रागु आसा ३२

१२. वही, पृ० ७०१, सबद २।२

कि सृष्टि के रचयिता उस एकेश्वर का ही जाप [illegible] ।[1] [illegible] आकाश, दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, सृष्टि-संहार, [illegible] में भी एक ब्रह्म ही विद्यमान था ।[2]

मलूकदास

डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनके दो ग्रन्थों का [illegible] और रामावतार-लीला । रामावतार-लीला में रामायण के [illegible] है और ज्ञानबोध में ज्ञान, वैराग्य [illegible] निवृत्ति का विस्तार से निरूपण है ।[3] [illegible] जाती है । उन्हें कहना पड़ता है कि [illegible] ज्ञानी भूल गए हैं परन्तु तुम्हारी अद्भुत लीला का [illegible] तीर्थाटन से अपने को महान् समझते हैं [illegible] मैं तुम्हारे विषय में क्या कहूँ । मुझ [illegible] जो अनहद नाद हो रहा है मैं भी उसको [illegible] है ।[4] [illegible] से उन्होंने 'अलख पुरुष' के दर्शन किए हैं, [illegible] मुनि-गन्धर्व उसके सेवक और दास हैं । उसके [illegible] अगम्य और अदृश्य [illegible] है [illegible] नहीं आता है । फिर [illegible] को प्राप्त करने के [illegible] ।[5] मलूकदास ने सृष्टि में चार पदों की कल्पना की है[6] :

१. देवी-देवता;

२. नियम-आचार;

३. माया-मोह;

४. अपरम्पार ।

इनमें से वह पहले तीनों से विरत होकर [illegible] और ठाकुरद्वारा जाने की बात कहते हैं, [illegible] मलूकदास को अन्य कुछ दिखाई नहीं देता है । [illegible]

---

१. वही, पृ० ७१३, [illegible]
२. वही, पृ० ६४६-६४७, [illegible]
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० [illegible]
४. मलूकदास जी की बानी, [illegible] बानी, शब्द [illegible]
५. वही, उपदेश, शब्द १
६. वही, मिश्रित, शब्द १

शून्य महल में स्थान बना लिया है। इस शिव नगरी में उनकी सहज से लय लगी हुई है और ज्ञान की लहरे उठने से मोतियो की रिमझिम वर्षा हो रही है। वहाँ वे अनहद नाद के साथ जगमग ज्योति के दर्शन कर रहे हैं। 'आतम' के जागने पर अब वे सीम से असीम मे पहुँच गए हैं।[१]

परन्तु मलूकदास के अविगत और निरञ्जन ने सन्तो के कल्याणार्थ विविध अवतार (रूप) भी धारण किए है।[२] उसने पाँचों पाण्डवो को जलने से बचाया था और द्रौपदी की लाज रखी थी।[३] शबरी और गज ने जिसका कल्याण किया था, जटायु ने कौन-सा विद्यार्जन, व्याध ने कौन-सा न्याय तथा अजामिल ने क्या पुण्य किया था परन्तु भगवान् ने इन सभी का उद्धार कर दिया।[४] फिर वह मलूकदास का हित-साधन क्यो न करेगा। इसी आस्था से मलूकदास को कहना पड़ता है कि—

हरि हजरत मोहि माधव मुकुन्द की सौं,
छाडि केसवराय मेरो दूसरो न कोई है॥[५]

कहा जाता है कि एक बार भगवान् ने इनकी गठरी घर पहुँचा दी थी, तभी से यह विरक्त हो गए। बाद में दिन-रात अष्टयामी उपासना में निरत रहते थे और इन्होंने भगवान् को पान के बीडे का भोग भी लगाया था।[६] एक किंवदन्ती के अनुसार यह जल-समाधि लेकर जगन्नाथ पहुँचे थे और वहाँ जगन्नाथ की जल-प्रणालिका के निकट अपने विश्राम की प्रार्थना की थी, जिसे स्वीकार कर लिया गया।[७] परन्तु आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसका खण्डन करते हुए उसे दो मलूकदासों के व्यक्तित्व को मिलाने के लिए गढ़ी गई कपोल-कल्पित घटना माना है।[८]

वैष्णव भक्ति के विविध तत्वों में से गुरु-महिमा[९], दया[१०], अहिंसा[११], विषय-

---

१. वही, उपदेश, शब्द १३।२-५
२. वही, साखी २३
३. वही, विनती, शब्द ३।२
४. वही, कवित्त, १०
५. वही, कवित्त ५।४
६. रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० २११
७. मलूकदास जी की बानी, जीवन-चरित्र, पृ० ४, ५
८. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५०४
९. मलूकदास जी की बानी, उपदेश, शब्द ५।८
१०. वही, साखी ४६, ५१-५३; ५७-५८
११. वही, साखी ५४।५५

निन्दा[1], शरणागति अथवा आत्मसमर्पण[2] आदि के प्रचुर उदाहरण मलूकदास की रचना में मिल जाते हैं। उन्हे एकमात्र मुरारी का ही आश्रय है क्योंकि उसके समान दूसरा कोई नही है।[3] राम और रहीम ही क्या? वह क्षण मात्र में विविध स्वरूप धारण कर लेता है और क्षण मात्र में एकाकी रह जाता है।[4]

दादूदयाल

सृष्टि का निमित्त 'शब्द' है, जिससे सब लोग बँधे हैं। इसीसे सब कुछ उत्पन्न होकर इसीमें स्थित रहता है और अन्तत. इसीमें समाहित हो जाता है। इस शब्द से ही निर्गुण और निर्मल ज्ञान उपलब्ध होता है।[6] इसीसे पंच तत्व उत्पन्न हुए हैं।[7] इसलिए दादू भी उससे मोहित हैं।[8] परन्तु उस तक पहुँचने का मार्ग अत्यन्त दुष्कर है। वहाँ पैरों से नहीं पहुँचा जा सकता क्योंकि उसका निवास आकाश के शिखर पर है जहाँ विकट और अवघट घाट है। वहाँ जाने के लिए मनरूपी घोड़े की सवारी, लौ की लगाम तथा गुरु-ज्ञान के चाबुक की आवश्यकता है।[9] अलक्ष्य देवाधिदेव के उस स्थान पर निरन्तर अनहद नाद, सूर्य और चन्द्रमा के अभाव में भी अत्यन्त आज्वल्यमान प्रकाश तथा मेघों के बिना वर्षा होती रहती है, जिससे अनन्त आनन्द प्राप्त होता है।[10] उस शून्य रूपी सरोवर में मन रूप हस राम-रत्न चुगता रहता है और निर्झर नीर पीता रहता है।[11] विचार करने पर ज्ञात होता है कि उस अनहद नाद में ही राम का निवास है।[12]

---

१. वही, चेतावनी, शब्द २।२, उपदेश; शब्द ५।५, साखी ७३ ७४
२. वही, मिश्रित, शब्द ४।४, ८।४
३ वही, कबित्त १४।२
४. वही, कबित्त ३।५
५ वही, सतगुरु और निज रूप की महिमा, शब्द २।४
६. दादूदयाल की बानी, भाग १, सबद को अग २-४
७. वही, सबद को अग १५, समग्राही को अग ३७
८. वही, सबद को अग २३
९. वही, गुरुदेव को अग १३५-१३६
१० वही, परचा को अग ३; १८-१९; ९०-९१; ११३
११. वही, परचा को अंग, ५७; ६४; ६७
१२. वही, सबद को अंग २७

यह राम दादू को वैसे ही प्रिय है जैसे वीर को संग्राम, निर्धन को धन, चातक (स्वाति का) और मछली को जल, चकोर को चन्द्र, भौंरे को सुगन्ध, मृग और श्रवण को संगीत, पतंग को दीपक, नेत्रों को सुन्दर वस्तु, जिह्वा को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ और प्राणी को शरीर के प्रति मोह तथा आकर्षण होता है।[1] वह नेत्रों के बिना देखता, वाणी के बिना बोलता, कानों के बिना सुनता, पैरों के बिना चलता और चित्त के बिना कार्य करता है।[2] ऐसा स्वामी घट में ही व्याप्त है इसलिए काशी, मथुरा, द्वारिका आदि की तीर्थ-यात्रा व्यर्थ है।[3] दादू की कामना है कि उसकी कथा सुनने के लिए अनन्त श्रवण, उसके दर्शन हेतु अनन्त नेत्र तथा उसके प्रति अनन्य प्रेमाभक्ति दृढ हो जाए।[4] हरि की भक्तिविहीन प्राणी को पश्चात्ताप करना पड़ता है।[5] इसलिए दादू हरि के भक्तों तक पर अपने को न्यौछावर करते हैं।[7] जब उसका अनुग्रह होता है तो वह समस्त व्याधियों को नष्ट करके अपनी अविचल भक्ति के साथ दर्शन भी देता है।[8] दादू ने 'भाव-भगति' के द्वारा उसके दर्शन प्राप्त कर लिए हैं।[9] अब उनके लिए ऋद्धि-सिद्धि, स्वामी-गुरु, ज्ञान-ध्यान, पूजा-पाती, तीर्थ-वैराग्य, योग-भोग, वेद-पुराण, जप-तप, शील-सन्तोष, शिव-शक्ति, इष्टदेव और मोक्ष आदि सब कुछ वही है।[10] गोविन्द,[11] केशव,[12] मोहन[13], आदि ही क्या, उसके तो अनन्त नाम हैं, चाहे जिस नाम का प्रयोग किया जाये।[14] वह राजसी प्रकृति से रचना,

---

१. वही, बिरह को अंग २०-२६
२. वही, परचा को अंग १६४; २१६; भागवत १०।४३।१७ में यही वर्णन कृष्ण और रामचरित मानस १।११८।५-७ में राम के सम्बन्ध में हुआ है।
३. वही, कस्तूरिया मृग को अंग ८
४. वही, परचा को अंग ३२०-३२१
५. वही, साध को अंग २८
६. वही, बिनती को अंग २३
७. वही, साध को अंग ४६
८. वही, बिनती को अंग ३०
९. वही, परचा को अंग ३५३
१०. वही, निहकर्मी पतिव्रता को अंग ५-१२
११. वही, परचा को अंग ३५२; बेसास के अंग १७ आदि
१२. वही, निहकर्मी पतिव्रता को अङ्ग १५ आदि
१३. वही, निह० पति० को अंग २३
१४. वही, सुमिरन को अङ्ग २३

सात्विक प्रकृति से पालन और तामसिक प्रकृति से संहार करता है।[१] सशय की आरम्भ में अन्य भाव दिखाई देता है परन्तु भ्रम तथा द्विविधा नष्ट हो जाने पर एक-मात्र वही रह जाता है।[२] उस एक को पहिचान लेने पर अन्य कुछ शेष नही रहता।[३] चर्म-चक्षुओं से अनेकत्व भाव लगता है परन्तु आत्म दृष्टि से देखने पर एक का ही अस्तित्व सिद्ध होता है।[४] मनीषियों ने भी एकेश्वर को ही मान्यता दी है।[५] इसलिए दादू चीख-चीखकर कहते हैं कि मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार से विचार करने पर वह अगाध अगोचर ब्रह्म एक ही ठहरता है।[६] यदि आराध्य को प्राप्त करना है तो उस एक की ही उपासना करली चाहिए।[७] जिन लोगों को वह प्राप्त हो चुका है उनका कहना यही है कि साध्य एक हो है उसकी प्राप्ति के साधन अनेक हैं। विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय उनके लिए हैं जो अभी साधना के मार्ग में है।[८]

परब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना ने दादू का प्रमुख उद्देश्य यही था कि प्रचलित परस्पर विरोधी धर्मों तथा सम्प्रदायों में सहिष्णुता के साथ समन्वय लाया जा सके।[९] हम देखते हैं कि इसके लिए उन्होने कथनी ही नहीं करनी का भी प्रयोग किया है। जहाँ एक ओर अल्लाह और राम को एक ही शक्ति के दो नाम बताया,[१०] वही स्वय शैव योग-मार्ग और वैष्णव प्रेमा भक्ति को प्रश्रय दिया। यही नही 'एकं नियानं' बहवो रथास:' के अनुसार विविध मत-मतान्तरों को उसी एक की प्राप्ति का माध्यम बताकर सम्प्रदाय-स्थापना के अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनसा, वाचा हर प्रकार से प्रयास किया है।

---

१. वही, साखीभूत को अङ्ग ७
२. वही, दया निर्वैरता को अङ्ग ६
३. वही, निहकर्मी पतिव्रता को अङ्ग ८२
४. वही, हैरान को अङ्ग २६
५. वही, बिनती को अङ्ग १७
६. वही, निहकर्मी पतिव्रता को अङ्ग १६; २४; ४६; सुमिरन को अङ्ग २०; पीव पिछाण को अङ्ग १२; काल को अङ्ग ६२; उपजणि को अङ्ग ५, साखीभूत को अङ्ग २, आदि
७. वही, माया को अङ्ग १८५
८. वही, माया को अङ्ग १६०-१६१
९. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ४३७
१०. दादूदयाल की बानी, भाग १, सुमिरन को अङ्ग २१

सुन्दरदास

सन्तों में सम्भवतः एकमात्र सुन्दर ही सुशिक्षित, बहुश्रुत तथा बहुभाषाविद् हुए हैं। संस्कृत के पाण्डित्य तथा हिन्दी के प्रकाण्डत्व के साथ उन्हें फारसी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषाओं का भी ज्ञान था।[१] उन्होंने ११ वर्ष की अवस्था से काशी में रहकर १९ वर्ष तक संस्कृत, वेदान्त, पुराण, योग आदि की शिक्षा प्राप्त की थी।[२] यद्यपि उनकी रचना में वेदान्त के अतिरिक्त सांख्यादि अन्य दर्शनों की बातें भी मिलती हैं तथापि उनकी अधिक रुचि वेदान्त में ही है। घटाकाश, स्वर्णाभूषण, लौहास्त्र, मृत्तिका-भाजन, बूँद-समुद्र, रजत-सीप, सर्प-रज्जु, मृग-मरीचिका आदि के उदाहरणों द्वारा उन्होंने वेदान्त का ही प्रतिपादन किया है। चन्द्र से ज्योत्स्ना और सूर्य से रश्मियों को अलग करके देखना भ्रम ही है। बहुवर्णी किरणें वस्तुतः सूर्य का ही अंश होती हैं,[३] उसी प्रकार विविध जीव ब्रह्म के ही अंश हैं। परन्तु वेदान्तिक दृष्टि से सुन्दरदास द्वैताद्वैत आदि ही नहीं तान्त्रिक अद्वैतवाद से भी प्रभावित हैं। जहाँ शंकर केवल ब्रह्म तत्व का अस्तित्व मानते हुए अन्य सब कुछ मिथ्या मानते हैं, तान्त्रिक अद्वैतवाद के अनुसार परम शिव एकाकी नहीं है। जिस प्रकार एक बीज में दो दालें अन्तर्निहित रहती है उसी प्रकार परम शिव मे शिव और शक्ति दोनों सन्निहित हैं।[४] इससे प्रभावित होकर सुन्दरदास ने ब्रह्म और माया में वही सम्बन्ध बताया है जो शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति तथा बीज और उसकी दो दालों मे है।[५]

इसी प्रकार जहाँ उन्होंने योग का अध्ययन किया था और अजपाजाप आदि हठयोग की शब्दावली[६] तथा शून्य मण्डल के रूपक[७] का प्रयोग किया है; वहीं मोक्ष-प्राप्ति के लिए भक्ति को ही मान्यता दी है। विष्णु के अवतारों में उनका विश्वास है[८] और अनादि तथा जगतपति अपने इष्टदेव के लिए उन्होंने राम,[९] गोविन्द,[१०]

---

१. सुन्दर बिलास, सुन्दरदास जी का जीवन-चरित्र, पृ० ४

२. वही, जीवन-चरित्र, पृ० २

३. वही, अद्वैतज्ञान को अङ्ग २३,

४. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २३८

५. सुन्दर बिलास, अद्वैतज्ञान को अंग १९

६. वही, शब्द सार को अंग ४

७. वही, विपर्जय को अंग ११-१२

८. वही, निर्गुण उपासना को अंग १।२

९. वही, गुरुदेव को अंग १७, उपदेश चिंतामणि को अङ्ग १ आदि

१० वही, गुरुदेव को अंग २२, उपदेश चिंतामणि को अङ्ग १ आदि

हरि,[१] केशव,[२] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी कामना है कि प्रभु से स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर ऐसी अनन्यता एवं प्रगाढ़ता रहनी चाहिए जैसी मीन की जल, सर्प की मणि, सीप और चातक की स्वाति—बूँद, कमल की सूर्य तथा चकोर की चन्द्र के प्रति होती है।[३] उस राम का भजन करने से ही कल्याण सम्भव है।[४]

सुन्दर के अखण्ड, शाश्वत, सर्वव्यापक आराध्य के विविध स्वरूप वैसे ही हैं जैसे वृक्ष की छाया।[५] छाया का अस्तित्व सत्य होते हुए भी वह वृक्ष तथा परिस्थितियों के वश है। उसका निर्माण सूर्यादि के प्रकाश की मात्रा तथा दूरी के आधार पर वृक्ष से ही होता है। इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर ही वह स्वरूप धारण करता है। उसे तत्व-अतत्व, शून्य-अशून्य, ज्योति-अज्योति, शुद्ध-अशुद्ध की परिधि में बाँधना अनुचित होगा।[६] क्योंकि एक कहने पर वह अनेक-सा दिखाई देता है जबकि ऐसा नहीं है। आदि कहने पर अन्त तथा गोप्य कहने पर अगोप्य का भाव आ जाता है परन्तु वह इनमें से कैसा भी नहीं है और जैसा भी कहा जाये वह असत्य है।[७] सत्य तो यह है कि—

एक को कहै जु कोऊ, एक ही प्रकासत है,
दोऊही जु कहै जु कोऊ, दूसरोहू देखिए।
अनेक कहै जु कोऊ, अनेक आभासय ताहि,
जाके जैसो भाव तैसो ताकू ही बिसेसिए॥[८]

वेद-पुराण आदि ग्रन्थों, वशिष्ठ जैसे मुनियों और अर्जुन-उद्धव आदि को कृष्ण ने एकेश्वर का ही उपदेश दिया है[९] परन्तु वह भक्त की भावना के अनुसार सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत् आदि के रूप में प्रकट होता है[१०] और दुष्टों का संहार करने बाहर आता है।[११]

---

१. वही, गुरुदेव को अंग २४, उपदेश चिंतामणि को अंग १, १२, आदि
२. वही, शब्दसार को अंग २ आदि
३. वही, पतिव्रता को अंग ७
४. वही, उपदेश चिंतामणि को अंग ३६, कालचिंतामणि को अंग ५, ६, १६ आदि
५. वही, निर्गुण उपासना को अंग ५।३
६. वही, आश्चर्य को अंग ७
७. वही, आत्म अनुभव को अंग ६
८. वही, आत्म अनुभव को अङ्ग ७
९. वही, अद्वैतवाद को अङ्ग ८
१०. वही, अपने भाव को अंग ८,
११. वही, अपने भाव को अंग ६।२

अक्षरअनन्य

अक्षरअनन्य के भाव एक शैव मतानुयायी जैसे लगते हैं क्योंकि इन्होने शैवा की पारिभाषिक शब्दावली के अतिरिक्त शिव-शक्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट कर उनकी भक्ति की कामना की है। एक पद में वे कहते हैं कि हमारा ध्यान सदैव शिव से लगा रहे। सोते-जागते, आते-जाते, रात-दिन उसी का नाम जपते रहें। त्रिभुवन का सार होने के कारण सिद्ध-मुनि ही क्या राम तक उनका ध्यान करते हैं। शिव-शक्ति की भक्ति बिरले को ही उपलब्ध होती है।[1]

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से उनके ग्रन्थों को निम्न वर्गों में बाँट सकते हैं—

१. शाक्त

क. उपासना बोध : इसमें शाक्तागमों द्वारा मान्य ३६ तत्वों में से शुद्ध-विद्या तत्व का विस्तृत वर्णन है।

ख. ज्ञान पंचासिका : इसमें रचना प्रकृति अथवा माया शक्ति का विस्तृत विवेचन है।

ग. सिद्धान्त बोध : इसकी रचना विभिन्न साधना-पद्धतियो के विवेचन और सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए हुई है।

घ. अनन्यप्रकाश : इसमें सृष्टि का वर्णन शाक्त मान्यता के अनुसार किया गया है।

ङ. भवानी स्तोत्र : यह २० स्फुट छन्दों में रचित स्तोत्र ग्रन्थ है।

च. उत्तम चरित्र : यह एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें दुर्गासप्तशती का भाषानुवाद है।

छ. अक्षरअनन्य के चिट्ठा : यह साधना सिद्धान्त, ज्ञानयोग तथा राजयोग के साथ शिव-शक्ति के अभेद और शाक्त-तन्त्र में प्रतिपादित साधना सिद्धान्तों का निरूपण है।

२. शिव-शक्ति समर्थक

क. शिव-शक्ति—पचीसी : इसमें देव शक्ति के रूप में शिव-शक्ति का वर्णन है।

ख. साखी : ज्ञानाश्रयी परम्परा से हटकर अक्षरअनन्य ने इन साखियों की रचना क्रमबद्ध रूप में की है। इनमें शिव-शक्ति के अभेद तथा साधना सिद्धान्तों का निरूपण है।

---

1. अक्षरअनन्य, गुणनबत्तीसी २६; विवेकतरंग ८।३, ९।३।
सिद्धान्त बोध—४६; साखी—५७ आदि।

ग. गुणनबत्तीसी : यह शिव-शक्ति को चेतन ब्रह्म मानकर उनके स्तवन में रची गई है ।

३. शैव कथानक

महिमा समुद्र : यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें शिवपुराण के काशी खण्ड का कथानक ग्रहण किया गया है । इसमें जलन्धर-वध तथा ध्रुव-कृष्ण आदि की शिव-भक्ति विषयक कथाओं द्वारा शिव को सर्वश्रेष्ठ देवता और उनकी भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है ।

४. योग

क. ज्ञानयोग : इसकी रचना साधना, सम्बोधन, धारणा, अनहद नाद और विराद्-ब्रह्म नामक पाँच प्रकरणों में हुई है । साधना प्रकरण में परावाक् को सूक्ष्म तथा विराट् रूप में सर्वव्यापक बताते हुए अनहद आलाप को सुनना ही ज्ञानयोग माना है । यह परावाक् या अनहद नाद ही शिव नाद है । सम्बोधन प्रकरण में मनोनिग्रह पर बल है । धारणा में बाह्य चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा चित्त के समाधिस्थ होने का वर्णन है । आगे अनहद (शिव) नाद के भासित होने की स्थिति में है । तब ब्रह्म की अनुभूति और पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड के एकात्म का प्रतिपादन है । जब साधक को यह अनुभूति होने लगती है कि मूलाधार चक्र ही पृथ्वी, मणिपूर चक्र नीर, उदर की रिक्तता आकाश, नाभिकमल में अग्नि, प्रत्येक अंग में वायु का सचार है तथा नेत्रद्वय सूर्य-चन्द्र, रोमावली वनस्पतियाँ, रक्तवाहक धमनियाँ सरितायें त्रिगुण सृजक-पालक-संहारक शक्तियाँ और आत्मा ही निर्गुण ब्रह्म है तब वह पूर्ण स्थिति प्राप्त कर लेता है ।

ख. सिद्धान्तबोध : इसमें शक्ति-सिद्धान्तों, भक्ति तथा ज्ञानयोग बताने के अतिरिक्त अष्टांग योग के साथ षट्चक्रों का विशद वर्णन है ।

ग. शृङ्गार योग : इसमें अक्षरअनन्य ने योग को सर्वग्राही बनाने के लिए उसका वर्णन सरस तथा आकर्षक रूप में किया है । इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों के माध्यम से महा-कुण्डलिनी रूप शक्ति का सहस्रार में स्थित शिव से संयोग ही अभीप्सित है । यही सामरस्य तथा निर्वाण की स्थिति है ।

जिस प्रकार पति के साथ सोई पत्नी स्वप्न में बिछुड़कर भटकती है उसी प्रकार अज्ञानावस्था में साधक पिण्ड स्थित कुण्डलिनी-शक्ति को विस्मृत कर इधर-उधर दिग्भ्रमित होता फिरता है । ग्रन्थ में मुग्धा तथा नवागता की प्रेम-क्रीड़ाओं और अभिजातवर्गीय शीलवती नायिका की चेष्टाओं की शृंगारिक शैली में ही साधना की विविध स्थितियों का वर्णन है । आराध्य के प्रति साधक का प्रेम कामी और कामिनी के समान ही होना चाहिये ।

घ. हरिहर-संवाद : इसे 'योगशास्त्र' भी कहा गया है। योग विषयक जिज्ञासाओं के समाधान हेतु कृष्ण कैलास पर शिव के पास जाते हैं और उन दोनों के संवाद रूप में ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। २२५ छन्दो की इस कृति में कृष्ण को शिव द्वारा योग-शिक्षा प्राप्त करते चित्रित किया गया है। मनुष्य देवों की, देव ईश्वर की और ईश्वर नाद की उपासना करते हैं। यह नाद भी अनहद में विलीन हो जाता है इसलिए मनुष्य को वही ध्यातव्य है।

ङ. अष्टांग योग : ब्रजभाषा गद्य मे रचित इस ग्रन्थ में अष्टांग योग का वर्णन है।

५. भक्ति

क. सिद्धान्त बोध : भक्ति, योग और ज्ञान मार्गों को एक ही लक्ष्य सिद्धि का माध्यम बताते हुए[1] अक्षरअनन्य ने भक्ति को कायिक, वाचिक और मानसिक—त्रिधा विभाजित किया है। इनमें से किसी भी मार्ग का आश्रय लिया जा सकता है। भक्ति के दस लक्षणों मे उन्होने गुरु-आस्था, तन्मयता, शील, सन्तोष, धैर्य, उत्साह, सत्य, दया, दम तथा आराध्य मे चित्त के स्थिरीकरण को रखा है।

ख. निरधारशतक : यह ज्ञान, नीति और भक्तिपरक १०० दोहो का संग्रह है। भक्ति का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं कि शरीर तथा संसार क्षणभंगुर हैं और मानव जीवन का लाभ भक्ति ही है।[2]

६. गणेश स्तुति

गणेशाष्टक : यह गणेश के स्तवन में ८ त्रिभङ्गी छन्दो की रचना है।

७. ब्रह्म-निरूपण

क ज्ञानतरंग : इसके अन्तर्गत स्थावर-जंगम, देव-असुर, राम-रावण, कृष्ण-कंस आदि सबको ब्रह्म का ही रूप मानकर ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व का निरूपण है।

ख. विवेकतरंग : इसमें अखिल विश्व में एक ही शक्ति की परिव्याप्ति विवेचित है।

८. नीति एवं ज्ञान

क. उत्तर-मालिका : यह कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद रूप में रचित नीति एवं ज्ञानपरक कृति है।

---

१. वही, सिद्धान्त बोध, १५५
२. वही निरधारशतक, ३२

ख. भक्ति भावना : इसमें राजाओ की नीति का उपदेश है ।

ग. वैराग्य तरंग : रागादि दोषों का विकार बताकर उनसे विरक्ति के लिए इसकी रचना हुई है ।

९. भ्रमर गीत

प्रेमदीपिका : कृष्ण, उद्धव और गोपियो को लेकर हिन्दी के बहुत-से कवियो ने भ्रमरगीत-काव्य रचे हैं । इनकी रचना प्रायः स्फुट काव्य के रूप मे हुई है परन्तु अक्षरअनन्य ने परम्परा से हटकर अपने भ्रमरगीत को प्रबन्ध काव्य के रूप में रचा है । इसकी अन्यतम विशेषता है गोपियों के प्रेम-भाव का उसी अनन्यता वर्णन से जिससे निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया । वेदान्त में सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्तियाँ मानी गई हैं । प्रथम तीन मे पुनर्जन्म भी सम्भव है जबकि सायुज्य मुक्ति मे साधक की आत्मा का ब्रह्म में विलय हो जाता है । प्रेमदीपिका में अक्षरअनन्य ने उसी की प्राप्ति पर बल दिया है ।

अक्षरअनन्य की रचनाओं के प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जहाँ शिवपुराण के कथानक को लेकर महिमा समुद्र का प्रणयन किया है वहीं श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर प्रेमदीपिका रची है । एक ओर सिद्धान्त बोध तथा निरधारशतक में भक्ति का निरूपण है तो ज्ञान योग, शृंगार योग, हरिहर सवाद, अष्टागयोग में योग का प्रतिपादन है । शैव धर्म से विशेष प्रभावित होने के कारण ऐसे ग्रन्थों की अधिक सख्या होते हुए भी वे कट्टर शैव नही हैं । शिव और विष्णु के समन्वय भाव को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने शिव को (वैष्णव) चक्र धारण किए दिखाया है ।[१] इतना ही नहीं शिव प्रेममुग्ध होकर कृष्ण से वार्ता-सुख प्राप्त करने के लिए नारी रूप में उनके पास आते हैं ।[२] हरिहर सवाद की रचना तो कवि ने हरिहर के ही अनुग्रह से की है ।[३] त्रिदेव तो एक ही सत्ता के त्रिगुण भेद से तीन रूप विशेष हैं । वे एक से ही तीन हो जाते हैं और तीनों एक हैं—जैसे यज्ञोपवीत के तीन धागे । ज्ञानी उन्हें एक और अज्ञानी भिन्न मानते हैं ।[४] वह एक ही ब्रह्मा रूप से सृष्टि, विष्णु रूप से पालन और रुद्र रूप से सहार करता है ।[५]

---

१. वही, महिमा समुद्र, २५१

२. वही, प्रेमदीपिका ३४-३५

३. "जोग शास्त्र सिद्धान्त मत, निज हरिहर सवाद ।
सो भाषा करि कहत हौं, हरिहर कृपा प्रसाद ।।"—वही, हरिहर-संवाद, ४

४. वही, अक्षरअनन्य के चिट्ठे, ४।६

५. वही, ज्ञान पंचासिका, २५

वे ब्रह्मचारी-सन्यस्त वैरागी, वानप्रस्थी-गृहस्थ, शैव-वैष्णव, ब्रह्मा, राम अथवा कृष्ण के उपासक आदि कोई न होकर निष्पक्ष हैं और सबको मानने वाले भी हैं।[१] शून्य, शब्द, ज्योति, महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण आदि उसी एक के विविध नाम तथा रूप है।[२] ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति, लक्ष्मी, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य आदि छोटे-बडे न होकर उस एक परब्रह्म के अग स्वरूप हैं, इसलिए किसी एक की उपासना और अन्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[३] अन्य देवता की निन्दा का उन्होंने कट्टरता से खण्डन किया है।[४] फिर भी उनका परब्रह्म तो विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि सबसे परे[५] शब्द रूप है।[६] शिव, विष्णु आदि तो अपने-अपने लोक के अधिपति हैं, जो जिसकी भक्ति करता है उसे वही मिल जाता है।[७] देवता, अवतार, मनुष्य, पत्थर आदि जिसे इष्ट मान लो उसीसे फल की प्राप्ति हो जाती है[८]

१. नही ब्रह्मचारी न बिरागी न संन्यासी हम,
नही वानप्रस्थ न ग्रहस्थ अनुसारे हैं।
× × ×
आतम प्रकास ग्यान अनुभो 'अनन्य' भने,
हम हैं निपच्छ पच्छ सबई हमारे हैं।।—वही, वैराग्य तरंग, १३

२. वही, ज्ञान तरंग १, अक्षरअनन्य के चिट्ठा २।१४, ज्ञान पचासिका १६, निरधार-शतक ८८

३. वही, अक्षरअनन्य के चिट्ठा, १३।६-१३

४. वही, अक्षरअनन्य के चिट्ठा, ४।३; १२।१ (उपासना बोध-१८)

५. वही, विवेकतरग, १४

६ वही, ज्ञानयोग, अनहदनाद प्रकरण-५

७. "भागवत में क्रिस्नजू सों ईस्वर कहत हैं। रामायन में रामजू सों ईस्वर कहत है। बिस्नुपुरान में बिस्नु सों ईस्वर कहत है। सिवपुरान में महादेवजू सों ईस्वर कहत हैं।' जु जाकी भक्ति और सु ताही मिले। अरु जु आसंका होइ के इन सब सों ईस्वर काहे तें कह्यो सु जैसे अपने-अपने देस के राजा तैसे अपने-अपने लोक के देवता। ता लोक को सोई ईस्वर है। अरु या लोक में सबकी ही भक्ति है। कोउ काहू को भक्त कोउ काहू को भक्त। जु जाको भक्त है, सु ताही मिलत है।"
—वही, अष्टाग योग, पृ० ५००

८. "देवता सों अवतार सो मनुष सो पाथर सों जासों मानि लीजे के येही हमारे इष्ट हैं, ईस्वर है तो वही ईस्वर फलदाता है।, जो यह मानि लीजे के सब ही में है तो वही है। जो एक में मानो तो एक भयो अरु सब में एक मान्यो तो एक भयो यह तो एक है, मानि मनी
—वही, अष्टाग योग, पृ० ४९८

क्योंकि इन सबमें वही एक परिव्याप्त है।[1] एक से अनेकत्व भाव तो उसकी लीला है।[2] ज्ञानियों को तो अनेकत्व में भी एकत्व परिलक्षित होता है[3] फिर वेद-वेदान्त में भी तो एक का ही प्रतिपादन है।[4] वह तत्वस्वरूप तो एक ही है।[5]

सहजोबाई

सहजोबाई ने 'सतगुरु महिमा का अंग' में अपनी गुरु-परम्परा बताते हुए 'हरि ते गुरु की विशेषता' शीर्षक अंग में अपने गुरु चरनदास को भगवान् से भी अधिक प्रिय माना है। वे हरि को त्यागने के लिए तैयार हैं, परन्तु गुरु को नहीं।[6] गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने चरनदास को ज्ञान, योग तथा भक्ति-तीनों में निष्णात बताया है। जिस प्राणी की जैसी अभिरुचि होती है, उसको वे वैसी ही शिक्षा देते हैं।[7] गुरु-भक्त सहजो ने चरनदास के चरणों में बैठकर योग तथा भक्ति दोनों का उपदेश प्राप्त किया था। यही कारण है कि उनकी रचना में दोनों मार्गों का वर्णन मिलता है। दुष्टों के तानों द्वारा योग और भक्ति की दृढ़ता होने का विश्वास करने से उनकी इन दोनों के प्रति आस्था प्रकट होती है।[8] एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है—

जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्ति सूँ, जाके प्रेम अधार॥[9]

योग की दृष्टि से सहजो ने जिह्वा और तालु के बिना ऐसा जाप करने का आह्वान किया है जिसमें 'सहज' से ध्यान लगा रहे।[10] उनका कहना है कि निर्वाण प्राप्ति के लिए मन और इन्द्रियों को बस में करके धैर्यपूर्वक अनहद नाद की

---

१. वही, ज्ञान पंचासिका, ५०
२. वही, विवेकतरंग, ४
३. वही, ज्ञानतरंग, ७-८
४. वही, अनन्य प्रकाश, ४४
५. वही, अष्टांग योग, पृ० ४८७
६. चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ।
—सहजोबाई की बानी, हरि तें गुरु की विशेषता १२।६
७. वही, सतगुरु महिमा का अंग—६ मिश्रित पद, पृ० ४६, राग मलार १
८. वही, दुष्ट लक्षण—१८
९. वही निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग ११
१०. वही, अजपा गायत्री का अंग, १

वे ब्रह्मचारी-सन्यस्त वैरागी, वानप्रस्थी-गृहस्थ, शैव-वैष्णव, ब्रह्मा, राम अथवा कृष्ण के उपासक आदि कोई न होकर निष्पक्ष है और सबको मानने वाले भी हैं।[1] शून्य, शब्द, ज्योति, महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण आदि उसी एक के विविध नाम तथा रूप है।[2] ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति, लक्ष्मी, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य आदि छोटे-बड़े न होकर उस एक परब्रह्म के अंग स्वरूप हैं, इसलिए किसी एक की उपासना और अन्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[3] अन्य देवता की निन्दा का उन्होंने कट्टरता से खण्डन किया है।[4] फिर भी उनका परब्रह्म तो विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि सबसे परे[5] शब्द रूप है।[6] शिव, विष्णु आदि तो अपने-अपने लोक के अधिपति हैं, जो जिसकी भक्ति करता है उसे वही मिल जाता है।[7] देवता, अवतार, मनुष्य, पत्थर आदि जिसे इष्ट मान लो उसीसे फल की प्राप्ति हो जाती है[8]

१. नही ब्रह्मचारी न बिरागी न संन्यासी हम,
नही वानप्रस्थ न ग्रहस्थ अनुसारे हैं।
× × ×
आतम प्रकास ग्यान अनुभो 'अनन्य' भने,
हम हैं निपच्छ पच्छ सबई हमारे हैं॥—वही, वैराग्य तरंग, १३

२. वही, ज्ञान तरंग १, अक्षरअनन्य के चिट्ठा २।१४, ज्ञान पचासिका १६, निरधार-शतक ८८

३. वही, अक्षरअनन्य के चिट्ठा, १३।६-१३

४. वही, अक्षरअनन्य के चिट्ठा, ४।३; १२।१ (उपासना बोध-१८)

५. वही, विवेकतरग, १४

६. वही, ज्ञानयोग, अनहदनाद प्रकरण-५

७. "भागवत में कृष्नजू सों ईस्वर कहत हैं। रामायन में रामजू सों ईस्वर कहत हैं। बिष्नुपुरान में विष्नु सों ईस्वर कहत हैं। सिवपुरान में महादेवजू सो ईस्वर कहत हैं। जु जाकी भक्ति और सु ताही मिले। अरु जु आसंका होइ के इन सब सो ईस्वर काहे तें कह्यो सु जैसे अपने-अपने देस के राजा तैसे अपने-अपने लोक के देवता। ता लोक की सोई ईस्वर है। अरु या लोक मे सबकी ही भक्ति है। कोउ काहू को भक्त कोउ काहू को भक्त। जु जाको भक्त है, सु ताही मिलत है।"
—वही, अष्टांग योग, पृ० ५००

८. "देवता सों अवतार सो मनुष सों पाथर सों जासो मानि लीजे के येही हमारे इष्ट हैं, ईस्वर है तो वही ईस्वर फलदाता है। जो यह मानि लीजे के सब ही में है तो वही है। जो एक में मानो तो एक भयो अरु सब में एक मान्यो तो एक भयो। वह तो एक है, मानि भलो।" —वही, अष्टांग योग, पृ० ५९६

क्योंकि इन सबमें वही एक परिव्याप्त है।[१] एक से अनेकत्व भाव तो उसकी लीला है।[२] ज्ञानियों को तो अनेकत्व में भी एकत्व परिलक्षित होता है[३] फिर वेद-वेदान्त में भी तो एक का ही प्रतिपादन है।[४] वह तत्वस्वरूप तो एक ही है।[५]

सहजोबाई

सहजोबाई ने 'सतगुरु महिमा का अंग' में अपनी गुरु-परम्परा बताते हुए 'हरि तें गुरु की विशेषता' शीर्षक अंग में अपने गुरु चरनदास को भगवान् से भी अधिक प्रिय माना है। वे हरि को त्यागने के लिए तैयार हैं, परन्तु गुरु को नहीं।[६] गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने चरनदास को ज्ञान, योग तथा भक्ति-तीनों में निष्णात बताया है। जिस प्राणी की जैसी अभिरुचि होती है, उसको वे वैसी ही शिक्षा देते हैं।[७] गुरु-भक्त सहजो ने चरनदास के चरणों में बैठकर योग तथा भक्ति दोनों का उपदेश प्राप्त किया था। यही कारण है कि उनकी रचना में दोनों मार्गों का वर्णन मिलता है। दुष्टों के तानों द्वारा योग और भक्ति की दृढ़ता होने का विश्वास करने से उनकी इन दोनों के प्रति आस्था प्रकट होती है।[८] एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है—

जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्ति सूँ, जाके प्रेम अधार।।[९]

योग की दृष्टि से सहजो ने जिह्वा और तालु के बिना ऐसा जाप करने का आह्वान किया है जिसमें 'सहज' से ध्यान लगा रहे।[१०] उनका कहना है कि निर्वाण प्राप्ति के लिए मन और इन्द्रियों को बस में करके धैर्यपूर्वक अनहद नाद की

---

१. वही, ज्ञान पंचासिका, ५०
२. वही, विवेकतरंग, ४
३. वही, ज्ञानतरग, ७-८
४. वही, अनन्य प्रकाश, ४४
५. वही, अष्टांग योग, पृ० ४८७
६. चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ।
—सहजोबाई की बानी, हरि तें गुरु की विशेषता १२।६
७. वही, सतगुरु महिमा का अंग—६ मिश्रित पद, पृ० ४६, राग मलार १
८. वही, दुष्ट लक्षण—१८
९. वही निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग ११
१०. वही, अजपा गायत्री का अंग, १

साधना करनी चाहिए ।[१] इसके लिए अष्टांग योग का पालन आवश्यक है ।[२] इस पिपीलिका मार्ग से सहजो स्वयं शून्य में पहुँच चुकी हैं,[३] जहाँ बिना बिजली के जगमग ज्योति तथा बिना सीप के मोती उत्पन्न होते हैं[४] और वह अमृत-रस का पान करती हैं। यहाँ के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।[५] इस शून्य-समाधि की दशा में दिन और रात कुछ भी नही होता है ।[६] परन्तु सहजो को एकमात्र योग ही स्वीकार्य नहीं। वे शून्य-समाधि निद्रा के लिए ग्रहण करती हैं। जागते समय तो निष्काम भक्ति और भगवद् नाम का जाप ही श्रेष्ठ है ।[७] उनकी योग-साधना भी भक्तिमय है । इसके अन्तर्गत देह ही मन्दिर है जिसमें हृदय-स्थल पर धूप देनी चाहिए और समता के बन्धन, क्षमा के फूल तथा मधुर वाणी के भोग के साथ अनहद का घण्टा बजाना चाहिए ।[८]

सहजोबाई ने इष्ट के स्वरूप तथा भक्ति को व्याख्यायित करने के लिए अलग से दो अंगों की रचना की है । 'सच्चिदानन्द का अंग' में उन्होंने बताया है कि वह नित्य, शाश्वत तथा अनादि है ।[९] उसका कोई रूप, वर्ण, देह, इष्ट-मित्र, गृह तथा जाति-पाँति भी नही है ।[१०] कीड़ो से वह घटता नहीं और पानी से भीगता नही ।[११] आग जला नही सकती, शस्त्र काट नही सकते, धूप सुखा नहीं सकती तथा वायु उड़ा नही सकती ।[१२] स्पष्ट है कि सहजो का प्रस्तुत वर्णन गीता के आत्म-स्वरूप के विवरण से साम्य रखता है ।[१३] 'निर्गुन सगुन सशय निवारन भक्ति का अंग' में उन्होंने कहा

---

१. वही, सोलह तिथि निर्नय, पांचे १-२, मिश्रित पद, पृष्ठ ५३ राग असावरी, ३
२. वही, सोलह तिथि निर्नय, आठें, नौमी
३. चिउंटी जहाँ न चढ़ि सके, सरसों न ठहराय ।
सहजो कूँ वा देश में, सतगुरु दई बसाय ।। वही, गुरु महिमा, ५३
४. वही, सोलह तिथि निर्नय, छह
५. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५३, राग बसंत ५, ६
६. वही, साध लक्षण—३५; मिश्रित पद, पृष्ठ ४९, राग सोरठा २।२-४
७. वही, साध लक्षण २४
८. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५४-५५, राग बसंत, १
९. वही, सच्चिदानन्द का अंग, १, ४, ८
१०. वही, सच्चिदानन्द का अंग ३
११. वही, सच्चिदानन्द का अंग २
१२. वही, सच्चिदानन्द का अंग ५
१३. २ २०, २३ आदि

है कि उसके स्वरूप, नाम, कौतुक तथा वेश अनेक हैं।[1] वह निराकार और निर्गुण ही नहीं साकार तथा सगुण भी है।[2] भक्तिवश भक्तों के उद्धार तथा दुष्टों के संहार हेतु उसने अयोध्या और व्रज में अवतार लिए थे।[3] चौबीस अवतारों में राम कृष्ण पूर्ण अवतार थे, जिनकी महिमा अवर्णनीय है।[4] वेद जिसे नेति-नेति कहते हैं, ब्रह्मा आदि जिसका ध्यान करते हैं, जो संयम साधन आदि से भी अगम्य है तथा जो अनन्त लोकों का निर्माण और संहार करता है उस आदि निरंजन ने कृष्ण रूप में मुरली-वादन, सखियो के साथ रास-लीला तथा ग्वालो के साथ खेल किया था। नन्द, यशोदा और व्रजमण्डल धन्य हैं जहाँ भगवान् ने गोपाल का वेश धारण किया।[5]

सहजोबाई का मन को उद्‌बोधन है कि वह मोह-निद्रा मे लीन क्यों है और गोविन्द का गुण-गान तथा हरि-भक्ति क्यो नही करता। गुण-गान करने से कितने ही पतियों का उद्धार हुआ और कितनो की ही विपत्ति नष्ट हो गई। बहुत से प्राणी आवागमन के भव-जाल से मुक्त होकर मोक्ष पा गए।[6] यदि सत्संगति की नाव को चलाने के लिए दृढ़ भक्ति की (बल्ली) पतवार उपलब्ध हो जाये तो सहज ही संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है।[7] चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर मनुष्य का जन्म मिला है, यदि अब भी भक्ति न की तो पुनः उन योनियों में भटकना पड़ेगा।[8] भक्ति विहीन मानव-जीवन व्यर्थ है,[9] इसलिए सहजोबाई की यही कामना है कि दृढ़तापूर्वक भक्ति कर सकें।[10]

---

१. सहजोबाई की बानी, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग, ८ तथा अजपा गायत्री का अंग ८
२. वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग, १
३. वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग, ७, ६, ४, १३।६
४. वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग, ५
५. वही, निर्गुन-सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग, १२, १३।१-५
६ वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ६१, राग बिलावल
७ वही, साध महिमा, ७
८. वही, कर्म अनुसार योनि ६५
९. वही, बैराग उपजावन का अङ्ग, ४९, जन्मदशा ७६; वृद्ध अवस्था ८७, सोलहतिथि निनय पड़िवा
१०. और साधन परनाम करि, कर जोड़ूँ सिर नाय।
यही दान मोहिं दीजिये, भक्ति करूँ चित लाय॥
—वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग २५

नवधा भक्ति में सहजो की पूर्ण आस्था है क्योंकि इसके द्वारा स्वय ही न अन्यों को भी तारा जा सकता है।[१] भक्ति-मार्ग में पैठने के लिए नाम-कीर्तन सीढ़ी है जिसके द्वारा आवागमन से भी मुक्ति हो जायेगी।[२] राम का स्मरण प्रकार करना चाहिए कि स्मरणकर्ता और इष्ट के अतिरिक्त किसी अन्य को उस आभास तक न हो। बैठे-चलते, खाते-पीते, सोते-जागते प्रत्येक समय स्मरण करे पुराणों तथा वेदों में भी कहा है कि किसी भी क्षण उससे विस्मृत नहीं होना चाहिए इसी प्रकार पाद-सेवन[४], अर्चन[५], वन्दन[६], आत्म निवेदन[७], साधु-सगति की महत्त्व आदि विविध स्थितियाँ सहजो की रचना में विद्यमान है।

---

१. सहजो नवधा भक्ति करीजे, आप तिरो औरन कू तारो।
—वही, मिश्रित पद, पृ० ६१, राग बिलावल,

२. गर्भवास संकट मिटे, जठर अगिन की आंच।
राम नाम ले सहजिया, मुख सू बोलो सांच।।
सील छिमा सतोष गहि, पाचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीति।।
काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चे सहजो मुक्ति ह्वै, लहै अमरपुर धाम।।
—वही, नाम का अग २४-२६ तथा ४, ५,
सोलह तिथि निर्णय: मावस; सात वार निर्णय : दोहा २;
बैराग उपजावन का अंग, १ आदि,

३. बैठे लेटे चालेत खान पान ब्योहार।
जहाँ तहाँ सुमरन करे, सहजो हिये निहार।।
जागत में सुमिरन करे, सोवत में लो लाय।
सहजो इकरस हीं रहे, तार टूटि नहि जाय।।
आठ पहर सुमिरन करे, बिसरे ना छिन एक।
अष्टादस और चार में, सहजो यही विवेक।।
—वही, नाम का अंग १८-२० तथा १०, १२, १७, २१-२३, २७, बेराग उपजावन का अग : २४, सात वार निर्णय; ३।६;६।१ आदि

४. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५६, राग ललित १, सात वार निर्णय, ७
५. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५४, राग बसंत १
६. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५७, राग बिलावल,
७. वही, नाम का अंग, १, मिश्रित पद, पृष्ठ ५७, राग-बिलावल
८. वही, सोलह तिथि निर्णय, पड़िवा आदि।

सहजो ने एक पद में ससार की नश्वरता का स्मरण दिलाते हुए सत्संगति और हरिहर के नाम-जाप का प्रबोधन दिया है। उनका कहना है कि जो समय बीत रहा है वह पुनः वापिस नही आयेगा। कुटुम्ब-परिवार वास्तविक हितैषी नहीं है और अन्त समय कोई भी उपयोगी सिद्ध नही होगा। केवल सत्सगति और हरिहर के जाप से ही कल्याण सम्भव है।[1] प्रस्तुत पद में आराध्य के लिए हरिहर शब्द का प्रयोग उस परम्परा का प्रमाण है जिसके अन्तर्गत हरिहर को विष्णु का ही एक रूप माना गया है। सहजोबाई ने एकेश्वर मे विश्वास करते हुए[2] उसके विविध अवतारों को मान्यता दी है। इनमें से उन्हें कृष्णावतार ही अधिक प्रिय है, क्योंकि उन्होने —

१. अवतार के कारणों और परमात्मा के स्वरूप का वर्णन गीता से प्रभावित होकर किया है;[3]

२. कृष्णावतार का विस्तृत विवरण दिया है;[4]

३. गीता के उस कथन को मान्यता दी है कि समस्त चराचर में कृष्ण का ही निवास है अर्थात् कृष्ण ही परब्रह्म हैं,[5]

और वे स्वय कहती हैं—

क. गुविन्द-गुन क्यो नहि गावो।
× × ×
ताकी अस्तुति सेस करत है, सिव ब्रह्मादिक सीस नवावै ।।

ख. परो मन हरि गुन गावत बान।
बिन गोपाल और जो भाखै, तौ नोहि गुर की आन ।।

---

१. हरिहर जप लेनी औसर बीतो जाय।
जो दिन गये सो फिर नहि आवे, कर विचार मन लाय ।।
या जग बाजी साच न जानो, तामे मत भरमाय।
कोइ किसी का है नहि बौरे, नाहक लियो लगाय ।।
अत समय कोइ काम न आवै, जब जम देहि बोलाय।
चरनदास कहे सहजोबाई, सत सगत सरनाय ।।
—वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५४, राग काफी

२ सहजो बाई की बानी, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अग, १३।७, १४ आदि;

३. वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अग ४, ६, ७; सच्चिदानन्द, अग १ ४, ५ आदि;

४ वही, निर्गुन सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग १२, १३ आदि;

५. वही, निर्गुन, सगुन संशय निवारन भक्ति का अंग ६

ग. मेरे एक मिर गोपाल और नहीं को भाई ।।[१]

इस प्रकार सहजोबाई के इष्टदेव श्रीकृष्ण हैं और उनके प्रति प्रगाढ़ अनन्यती के कारण उन्हें कहना पड़ता है —

हरि की भक्ति माहिं चित देवै । पद पंकज बिन और न सेवै ।।
आन धरम कूँ संग न लेवै । फलन कामना सब परिहरै ।।[२]

प्रस्तुत पद मे आराध्य के लिए हरिहर शब्द का प्रयोग इसका प्रमाण है कि वे हरिहर को कृष्ण का ही एक स्वरूप समझती हैं।

निर्गुण काव्य के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें शैव और वैष्णव प्रवृत्तियों का समन्वय तथा एकेश्वरवाद की भावना आद्योपान्त परिव्याप्त है। यदि उसमें एकेश्वरवाद की स्थापना के लिए निर्गुण-निराकार के अवतारों में आस्था प्रकट की गई है तो साधना-मार्ग में शैव योग तथा वैष्णव नारदी भक्ति—दोनों का आश्रय लिया गया है। सहिष्णुता तथा समन्वय की यह दीर्घकालीन भावना गुरु-परम्परा से विकसित होती रही है। सहजोबाई ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख सुकदेव से किया है। यह उनके गुरु चरणदास के गुरु अर्थात् सहजो के 'दादा गुरु' थे। सहजोबाई ने बताया है कि उनके गुरु चरणदास भक्ति तथा योग दोनों मे निष्णात थे और पात्र की अभिरुचि अथवा अनुकूलता के अनुसार उसे इनमे से किसी को भी शिक्षा देते थे।[३] चरणदास को भक्ति तथा योग की यह नौका अपने गुरु सुकदेव से मिली थी।[४] हम देख चुके हैं कि स्वयं सहजोबाई को इन दोनों नौकाओं का आश्रय प्राप्त था। चरणदास ने जहाँ ब्रजचरित्र या ब्रजचरित्तवर्णन, भक्तिपदार्थवर्णन, भक्ति-सागर आदि भक्तिपरक कृतियों का प्रणयन किया वहीं अष्टांगयोगवर्णन, योगसन्देह-सागर, ज्ञानस्वरोदय आदि योग के ग्रन्थ भी रचे। योग, भक्ति तथा ज्ञान की समन्वय-साधना के विषय मे चरणदास ने स्वयं कहा है—

योगयुक्ति हरिभक्ति करि, ब्रह्मज्ञान दृढ़ करि गह्यो।
आतम तत्व विचारि के, अजपा में सनि मन रह्यो ।।[५]

---

१. सहजो बाई की बानी, मिश्रित पद, क्रमशः पृष्ठ ६१, राग बिलावल; पृष्ठ ६०, राग सारग; ३, पृष्ठ ६२, राग जैजैवन्ती २
२. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५६, राग ललित १
३. वही, सतगुरु महिमा का अंग ६; मिश्रित पद, पृ० ५०, रागमलार १।३
४. वही, सतगुरु महिमा का ५।१-३
५. वही, पृ० ६०३ पर भक्तिसागर-ज्ञानस्वरोदय (१६११) पृ० १५६ से उद्धृत।

चरणदास ने तो चरणदासी सम्प्रदाय का भी प्रवर्तन किया । इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की उपासना होने के कारण इसे वैष्णव समझा जाता है परन्तु रामदास गौड ने योग की प्रमुखता मानकर इसे योगमत का एक पथ माना है ।[१] अन्ततः यह योग और भक्ति दोनों का समन्वय है ।

अन्य निर्गुण भक्त-कवियों में **धना** प्रारम्भ में मूर्तिपूजक और बाद में एकेश्वरवादी हो गए ।[२] **धरमदास** प्रारम्भ में शालग्राम तथा गोपाल के भक्त थे जब कि आगे चलकर एकेश्वरवादी कबीर के अनुयायी तथा उनके शिष्य बने ।[3] सन्त **बाबालाल** विशुद्ध एकेश्वरवादी थे और उन्होंने राम या हरि के रूप में सभी धर्मों या सम्प्रदायों के उपास्यदेव परमात्मा को स्वीकार किया था ।[४] **यारी साहब** ने एकेश्वर में आस्था प्रकट की है[५] तथा **किनाराम अघोरी** ने भक्त शिवाराम और कालूराम दोनों गुरुओं के मर्यादा-पालन हेतु मारुफपुर, नयीडीह, परानापुर व महुवर मे वैष्णव मत तथा रामगढ़ एवं कृमिकुण्ड (वाराणसी), देवल (गाजीपुर) व हरिहरपुर (जौनपुर) मे अघोरमत के मठो को स्थापित किया । उनकी वैष्णव भावनाओं वाले पद रामरमाल, रामचपेटा तथा राममगल में संग्रहीत हैं जबकि विवेकसार एक योगपरक ग्रन्थ है ।[६] इसी प्रकार **भीखा** ने ईश्वर को अधिकतर राम तथा हरि कहा है परन्तु उनकी रचना मे अनहद की गूँज रही है ।[७]

● ●

१. हिन्दुत्व, पृ० ७०७
२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २२२
३. वही, पृ० २६९
४ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५२६
५. अलिफ एक अविनासी देव ।
—सन्त-साहित्य, पृ० ४०७ पर यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ ७ से उद्धृत
६. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ६३१-६३२
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८६

परिशिष्ट ग

सन्दर्भ तथा आधार-ग्रन्थ

वैदिक और संस्कृत

यजुर्वेद

श्वेताश्वतर उपनिषद्

बृहदारण्यक उपनिषद्

अपराजितपृच्छा : भुवनदेव
  ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५० ई०

कथासरित्सागर
  बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६० ई०

कुमारसम्भव (कालिदास ग्रन्थावली)
  भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, २०१९ वि०

कूर्मपुराण
  संस्कृत संस्थान, बरेली

पातंजल योगसूत्रम्
  गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२८ वि०

भविष्यपुराण
  संस्कृति संस्थान, बरेली

मत्स्यपुराण
  हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००३ वि०

लिंगपुराण
  नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८९७ ई०

वायुपुराण
  हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग २००७ वि०

शिवपुराण
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

स्कन्दपुराण
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९०८ ई०

हिन्दी : काव्य

अक्षरअनन्य (ग्रन्थावली)
मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, प्रथम संस्करण, २०२६ वि०

कबीर-ग्रन्थावली
हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग वि० वि०, १९६१ ई०

कवित्त-रत्नाकर
हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग वि० वि०, १९३६ ई०

कवितावली
गीता प्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ सस्करण, २०१६ वि०

कीर्तिलता : सं० डॉ० उमेश मिश्र
मैथिली साहित्य समिति, इलाहाबाद, १९६० ई०

कुम्भनदास (पद सग्रह)
विद्या विभाग काँकरौली, २०१० वि०

केशव कौमुदी (रामचन्द्रिका)
रामनारायणलाल बेनीमाधव, २०१८ वि०

कृष्णदास (पद संग्रह)
विद्या विभाग, काँकरौली, २०१९ वि०

गीतावली
गीता प्रेस, गोरखपुर, दशम् सस्करण, २०१९ वि०

गोविन्दस्वामी (पद सग्रह)
विद्या विभाग, काँकरौली, २००८ वि०

गोसाईं-चरित
वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, २०११ वि०

घनआनन्द ग्रन्थावली
वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, २००९ वि०

चांदायन
प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६७ ई०

छीतस्वामी (पद संग्रह)
विद्या विभाग, कांकरौली, २०१२ वि०
जानकीमंगल
गीता प्रेस, गोरखपुर, २०२० वि०
जायसी-ग्रन्थावली
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१७ वि०
तुलसी ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) : सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी
अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी, २०२८ वि०
दादूदयाल की बानी
बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, १९६३ ई०
देव-सुधा
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, २०२० वि०
दोहावली
गीता प्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ संस्करण, २०१९ वि०
नन्ददास ग्रन्थावली (२ भाग)
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, १९४२ ई०
नानकवाणी
मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद
पद्मावत : स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त
भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६३ ई०
परमानन्दसागर
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ
पार्वतीमंगल
गीता प्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ संस्करण, २०१८ वि०
पुरुष-परीक्षा
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८४ वि०
बरवैरामायण
गीता प्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण, २०१९ वि०
बिहारी-रत्नाकर
ग्रन्थकार, शिवाला, वाराणसी, १९६० ई०
मधुमालती
मित्र प्रकाशन इलाहाबाद १९६१ ई०

मलूकदासजी की बानी
बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, १९७१ ई०
मीरा पदावली
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ग्यारहवाँ संस्करण
मृगावती
प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण, १९६८ ई०
रसखानि ग्रन्थावली
वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, २०२१ वि०
रामचरितमानस
१. इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद
२. गीता प्रेस, गोरखपुर, बारहवाँ संस्करण, २०२१ वि०
रामललानहछू
रामनारायणलाल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९५७ ई०
रामाज्ञा-प्रश्न
गीता प्रेस, गोरखपुर, चौथा संस्करण, २०२१ वि०
विद्यापति : सं० मित्र तथा मजूमदार
८५, ग्रे, स्ट्रीट, कलकत्ता, नवीन संस्करण, २०१० वि०
विद्यापति की पदावली
पुस्तक भण्डार, पटना, तृतीय संस्करण
विद्यापति गीत संग्रह
मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९५४ ई०
विद्यापति पदावली (दो भाग)
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पहला भाग १९६१, दूसरा भाग १९६७ ई०
विनयपत्रिका
१. गीता प्रेस, गोरखपुर, उन्तीसवाँ संस्करण, २०१८ वि०
२. साहित्य सेवा सदन, वाराणसी, आठवाँ संस्करण, २०१५ वि०
वीरसिंहदेवचरित
मातृभाषा मन्दिर, दारागञ्ज, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०१३ वि०
वेलि क्रिसन रुकमिणी री
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, १९६६ ई०
वैराग्य-संदीपनी
गीता प्रेस, गोरखपुर, छठा संस्करण, २०२१ वि०

श्रीकृष्णगीतावली
रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १६४७ ई०
सहजोबाई की बानी
बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, दसवाँ संस्करण, १६६७ ई०
सुदामाचरित
वाणी-वितान प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, २०२६ वि०
सुदामाचरित्र
भारती भवन, पटना, प्रथम संस्करण, १६६६ ई०
सुन्दरविलास
बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण
सूरसागर
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम भाग २०२१, द्वितीय भाग २०१८ वि०
सूरसारावली
रीगल बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १६७० ई०
हनुमानबाहुक
गीता प्रेस, गोरखपुर, तेईसवाँ संस्करण, २०२० वि०

हिन्दी : आलोचनात्मक

अष्टछाप-परिचय : प्रभुदयाल मीतल
अग्रवाल प्रेस, मथुरा, २००४ वि०
उत्तरी भारत की सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी
कबीर : सं० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६६५ ई०
कबीर : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
कृत्तिवास बँगला रामायण और रामचरितमानस : डॉ० रमानाथ त्रिपाठी
गोसाईं तुलसीदास : विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, २०२२ वि०
तुलसी : सं० डॉ० उदयभानुसिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, १६७२ ई०
तुलसी के चार दल (प्रथम भाग) : सद्गुरुशरण अवस्थी
इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १६३५ ई०

तुलसी-दर्शन : डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००५ वि०
तुलसी-दर्शन-मीमांसा : डॉ० उदयभानुसिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, २०१८ वि०
तुलसी-दल : डॉ० उदयनारायण तिवारी, शुकदेव दुबे
साहित्य सुमन माला, दारागञ्ज, प्रयाग, १९५० ई०
तुलसीदास और उनका युग : डॉ० राजपति दीक्षित
ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी प्रथम संस्करण, २००६ वि०
तुलसीदास और उनका साहित्य : डॉ० विमलकुमार जैन
साहित्य सदन, देहरादून
तुलसी-सन्दर्भ : माताप्रसाद गुप्त
विवेक कार्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९३४ ई०
तुलसी-साहित्य की भूमिका : डॉ० रामरतन भटनागर
रामनारायणलाल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९५८ ई०
नाथ सम्प्रदाय : हजारीप्रसाद द्विवेदी
ब्रज-साहित्य का इतिहास : डॉ० सत्येन्द्र
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०२४ वि०
भक्ति का विकास : डॉ० मुन्शीराम शर्मा
भारतीय कला : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, १९६६ ई०
मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव : डॉ० कमला भण्डारी
पञ्चशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, १९७१ ई०
मानसपीयूष
अयोध्याकाण्ड (पूर्वार्द्ध), किष्किन्धा, लंका तथा उत्तरकाण्ड, द्वितीय संस्करण,
भाग २ क, ख, ३ क, ख, अरण्य तथा सुन्दरकाण्ड, तृतीय संस्करण;
शेष चतुर्थ संस्करण
मानस : बालकाण्ड के स्रोत : श्रीशकुमार
हेमाभ प्रकाशन, वाराणसी, १९५७ ई०
मीराँबाई : डॉ० प्रभात
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, प्रथम संस्करण, १९६५ ई०
मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति, कलकत्ता, १९५९ ई०

रामकथा : डॉ० फादर कामिल बुल्के
हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१ ई०
रामचरितमानस : तुलनात्मक अध्ययन : डॉ० नगेन्द्र, डॉ० रम
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७४ ई०
वाराणसी का आधिदैविक वैभव : कुबेरनाथ सुकुल
काल भैरव, वाराणसी, २०२५ वि०
विद्यापति : प्रो० आनन्द मिश्र
बुक सेन्टर, पटना, प्रथम संस्करण
विद्यापति ठाकुर : डॉ० उमेश मिश्र
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९६० ई०
विद्यापति पर्व अंक
मिथिला सांस्कृतिक परिषद्, कलकत्ता, १९५९ ई०
विनयपत्रिका में अन्तर्कथाएँ : सन्तोष सघी
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, १९७३ ई०
वीर-भूमि चित्तौड़ : रामवल्लभ सोमानी
मातेश्वरी प्रकाशन, गंगापुर, भीलवाड़ा, १९६९ ई०
वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत : माहेश्वरीप्रसाद
भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६७ ई०
सूर और उनका साहित्य : डॉ० हरवंशलाल शर्मा
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, तृतीय संस्करण, २००० ।
सूरदास : डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा
हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९५९
सूर-सौरभ : डॉ० मुन्शीराम शर्मा
ग्रन्थम्, कानपुर, १९७० ई०
हरिहर-उपासना : उद्भव तथा विकास . डॉ० क्षेत्रपाल गंगवार
हिन्दी और मलयालम में कृष्ण-भक्ति-काव्य : डॉ० के० भास्करन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६० ई०
हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन . डॉ
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २०२५ वि०
हिन्दी कथा-कोश
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९५४ ई०

हिन्दी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वाणी-वितान प्रकाशन, वाराणसी, २०१५ वि०
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा
रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९५४ ई०
हिन्दी साहित्य कोश
ज्ञानमण्डल, वाराणसी, २०१५ वि०

अंग्रेजी

एलीमेन्टस् ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी : गोपीनाथ राव
दि लॉ प्रिंटिंग हाउस, माउण्ट रोड, मद्रास
कल्चर एण्ड सिविलिजेशन ऑफ ऐन्शिएन्ट इण्डिया : डी० डी० कोसाम्बी
रूलेज एण्ड केगान पॉल, लन्दन, १९६५ ई०
कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया (भाग ४)
रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता, १९५६ ई०
डेवलेपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी : जे० एन० बनर्जी
यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १९५६ ई०
साउथ इण्डियन इमेजेज ऑफ गाड्स एण्ड गाडेसेज : हरेकृष्ण शास्त्री
मद्रास सरकार, १९१६ ई०

पत्र-पत्रिकाएँ

कल्पना
अप्रैल, १९७३ ई०
नवम्बर, १९७३ ई०
कल्याण
वर्ष २५, अक २, फरवरी, १९५१ ई०
वर्ष ४७, अक १, जनवरी, १९७३ ई०
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
वर्ष ६०, अक १, २०१२ वि०
वर्ष ७१, अक २
विश्वभारती पत्रिका
जनवरी-मार्च, १९६७ ई०
राजस्थान भारती
लोक संस्कृति अंक, मार्च, १९७१ ई०

परिशिष्ट घ

चित्र-परिचय

फलक		प्राप्ति स्थान	समय	छायाचित्र सौजन्य
मन्दिर				
१.		हरिहरेश्वर मन्दिर, हरिहर	१२२४ ई०	भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
		विष्णु मन्दिर, ओसियाँ	८ वी शती ई०	विभाग
मृण्मुद्रा तथा सिक्का				
२.	क	स्वर्ण सिक्का	प्रथम शती ई०	
	ख	निर्कोलो मोहर	गुप्तकाल	
	ग	स्वर्ण सिक्का	प्रथम शती ई०	
	घ	अभिमुद्रा	गुप्तकाल	प्रयाग संग्रहालय
प्रस्तर मूर्तियाँ				
	ङ	मथुरा	गुप्तकाल	पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा
३.		मध्यप्रदेश	५वीं शती ई०	राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली
४.		ओसियाँ मन्दिर सं० १	८वीं शती ई०	भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग
५.		विष्णु मन्दिर ओसियाँ	उक्त	उक्त
६		विरूपाक्ष मन्दिर, पट्टडकल	उक्त	फ्रेंच इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, पौण्डिचेरी
७.		बृहदेश्वर शिव मन्दिर, त्रिची	११वीं शती ई०	उक्त
८.		चाँदा, नागपुर	१२वीं शती ई०	नागपुर संग्रहालय, नागपुर
९.		पुरन्दर	उक्त	प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई
१०		कीर्तिस्तम्भ, चित्तौड़	१५वीं शती ई०	स्वयं

कांस्य मूर्ति

११.	शकरनारायण मन्दिर, शकरनकोविल	उक्त	फ्रेंच इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, पाण्डिचेरी

काष्ठ मूर्ति

१२.	तिरुनारायणपुरम्, त्रिची	१८वी शती ई०	राजकीय सग्रहालय, मद्रास

लघु चित्र

१३.	जम्मू शैली	आधुनिक	एस पी० एस० सग्रहालय, श्रीनगर

कम्बुज . प्रस्तर मूर्ति

१४.	प्रसात अन्देत	७वीं शती ई०	